श्रीश्यामदेवोपासना

श्रीकिशोरमिश्र

श्रीश्यामदेवोपासना

(श्रीश्यामदेवकथा—हिन्दी अनुवाद, स्तोत्र, पूजाविधि,
देवयात्राविधि, माहात्म्य आदि का संग्रह)

लेखक
श्रीकिशोर मिश्र
संस्कृतविभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

आचार्यगोपालचन्द्रमिश्रग्रन्थमालायाः
नवमं पुष्पम्

संस्करण : २०५८ वि०
मूल्य : रू० २५.००
© सर्वाधिकार लेखकाधीन

पुस्तक-प्राप्तिस्थान—
विद्यानिलय
सी० के० ३२/१७ ब्रह्मनाल
वाराणसी-२२१ ००१ (उत्तर प्रदेश)
E-mail–shreemishra @ yahoo. co. in

मुद्रक
विजयप्रेस
सरसावली, वाराणसी

श्रीश्यामदेवाय नमः

प्रस्तावना

शास्त्रों के अनुसार परमेश्वर ने न केवल इस सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माण किया है, अपितु इस सृष्टि के प्राणियों में आत्म-चैतन्य के रूप में वह विराजित भी है। प्राणी सुख एवं दुःख के क्षणों में जब ईश्वर का स्मरण करता है, तब वह अपने अनुग्रह से उसका अभ्युदय करता है एवं संकट से उबारता है। भगवान् श्रीश्यामदेव का प्राकट्य भी इसी उद्देश्य से हुआ है। भगवान् श्रीश्यामदेव राजस्थान के अतिप्रसिद्ध देवता हैं और लाखों घरों के कुलदेव, इष्टदेव हैं। इनकी महिमा तथा भक्त-वत्सलता की विशेषता विख्यात है। प्रायः सभी भक्त इनके इतिहास को जानते हैं, पर वह लोकपरम्परा से उनको मिला है। सत्य होते हुए भी लोकप्रसिद्ध इतिहास श्रद्धा की स्थिरता के लिए एक प्रामाणिक मूल-स्रोत चाहता है।

देवकथा मानव की परतत्त्व के सम्बन्ध में स्वाभाविक जानकारी की उत्कण्ठा की शान्ति का एकमात्र उपाय है। मानव का स्वभाव है कि वह किसी को जानने के लिये उसको मूल से समझना चाहता है। श्रीश्यामजी की पूजा-वन्दना-स्मरण करते हुए भी श्रद्धा की दृढ़ता के लिए उनका पूरा इतिहास जानना सभी भक्तों के लिये आवश्यक है। श्रीश्यामदेव की कथा संस्कृतसाहित्य के अनुपम निधि पुराणों में उपलब्ध हैं। श्रीश्यामप्रभु की विस्तृत कथा महर्षि वेदव्यास-रचित अष्टादश महापुराणों में से अन्यतम, प्रधान स्कन्द-पुराण के कौमारिका-खण्ड में मिलती है। यह कथा पाँच अध्यायों (३४५ श्लोकों) में है, जो अतीव सुन्दर, रोचक एवं उपदेशप्रद है। इसके अतिरिक्त भारतसार में भी संक्षिप्त श्रीश्यामदेवकथा दो अध्यायों (४६ श्लोकों) में किञ्चित् रूपान्तर से उपलब्ध होती है।

राजस्थान एवं अन्य प्रान्तों के निवासी भक्तगणों को यह चिरकाल से अभिलाषा थी कि सर्वाभीष्टप्रदाता भगवान् श्रीश्यामप्रभु की कथा, उनकी उपासना एवं इतिहास से सम्बन्धित एक प्रामाणिक ग्रन्थ लिखा

जाय। इस अभिलाषा की पूर्त्ति हमारें पूज्य श्रीपितृचरण विद्वत्तिलक आचार्य गोपालचन्द्र मिश्र जी ने वि० सं० २००८ (सन् १९५१) में एक महनीय पुस्तक—'खाटू के श्रीश्यामजी' लिखकर की थी। यह पुस्तक भक्तजनों एवं सनातन धर्मानुयायियों में अत्यन्त लोकप्रिय हुई तथा अत्यल्प समय में ही दुष्प्राप्य हो गयी। पुस्तक की लोकप्रियता के दो मुख्य कारण थे। एक तो यह पुस्तक खाटू (श्यामजी) के मूलस्थान-निवासी मिश्रकुलावतंस विद्वद्वरेण्य आचार्य श्री मिश्रजी के द्वारा लिखी गई थी तथा दूसरे यह कि इसमें प्रामाणिक शास्त्रीय बातें एवं इतिहास-विवेचन निबद्ध था।

यह उल्लेखनीय है कि दिव्यधाम खाटू में जब से भगवान् श्रीश्यामप्रभु का प्राकट्य हुआ है तभी से भगवान् श्रीश्यामदेव ने मिश्र-कुल को अपनाया है तथा ग्रन्थ-लेखक के पूर्वजों पर श्रीश्यामप्रभु का अत्यन्त अनुग्रह रहा है। इस कुल में विद्वान् एवं सदाचारी व्यक्ति थे। अतः भगवान् श्रीश्यामदेव ने इस मिश्रकुल को पुराण-प्रवचन सुनाने का आदेश दिया तथा प्रत्येक शुक्लपक्ष की द्वादशी को अपनी ओर से मिश्रकुल द्वारा पूजन का क्रम निश्चित किया, जिसका पालन आजतक होता आ रहा है। मिश्र-घराने के सम्मानार्थ उस समय यह भी निश्चित किया गया कि श्रीश्यामजी के भेंट चढानेवालों एवं जात-जडूला करने वालों को यात्रा की सफलता केलिये आवश्यक होगा कि वे भागवतजी (मिश्रघराने की श्रीमद्भागवतपुराण) के लिये भेंट चढावें। अतएव आज भी यात्रासफलता के लिये भक्तजन भागवतजी की भेंट चढाते हैं। कालान्तर में ग्रन्थ-लेखक एवं उनके पूर्वजों की त्याग-तपस्या, विद्वत्ता एवं भगवद्भक्ति से प्रभावित होकर श्रीश्याममन्दिर के सेवकों ने गुरुघराने के रूप में इस परिवार को स्वीकार किया तथा भक्तशिरोमणि आलूसिंहजी ने जीवनपर्यन्त श्री पं० भगवत्प्रसादमिश्रजी एवं पं० गोपालचन्द्रमिश्रजी को गुरुवत् सम्मान प्रदान किया। सेवक-परिवार के श्रीबनेसिंहजी श्रीसज्जनसिंहजी, श्रीप्रेमसिंहजी आदि ने भी पूज्य पिताजी से मन्त्रोपदेश (दीक्षा) लेकर उस परम्परा को आगे बढाया। देश के विविध प्रान्तों के भी अन्य श्यामभक्तों में अनन्य श्रीश्यामभक्त श्रीश्यामबहादुर जी की परम्परा के अन्तर्गत श्रीसीताराम जी कविरत्न (सरदारशहर),

श्रीसत्यनारायण शर्माजी दाधीच (रामगढ, शेखावाटी), श्री छोटेलाल जी (देहली), श्री काशीराम जी शर्मा (हिसार) आदि ने भी पुण्यक्षेत्र खाटू की इस गुरुपरम्परा का सर्वदा सम्मान किया तथा सभी श्यामभक्त काशी में आकर निरन्तर विचार-चर्चा करते थे। 'अखण्डज्योति' नामक प्रसिद्ध रचना के लेखक श्रीगंगानगर-निवासी भक्तजी ने वाराणसी आकर पूज्य मिश्रजी से विचार-विमर्श के बाद यह रचना की थी, इसका उन्होंने अपनी पुस्तक की भूमिका में उल्लेख किया है। तथा रचना के बाद वाराणसी आकर पूज्य मिश्रजी के निवास पर स्वयं अखण्डज्योति का पाठ भगवान् श्रीश्यामदेव को सुनाया था। मातृस्वरूपा पूज्या श्यामादेवी जी (कलकत्ता) का वात्सल्य भी निरन्तर प्राप्त हुआ है।

धर्मसम्राट् ब्रह्मलीन स्वामी करपात्री जी महाराज ने भी श्रीश्याम-महोत्सव के अनेक प्रवचनों में भगवान् श्री श्यामदेव की उपासना-पद्धति के मर्मज्ञ के रूप में पूज्य पितृचरण आचार्य मिश्रजी को समादृत किया था। पं० गोपालचन्द्रमिश्र जी ने मई-जून १९६७ में खाटू मन्दिर में श्रीश्यामभगवान् के सम्मुख श्रीमद्भागवत के ग्यारह सप्ताह पारायण स्वयं किये थे। इसकी पूर्णाहुति का विराट् यज्ञ आज भी स्मरणीय है।

पूज्य पितृचरण के ग्रन्थ के दुष्प्राप्य हो जाने पर मेरे अनुज डा० श्रीकिशोर मिश्र (प्रोफेसर-संस्कृत विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) ने भक्तजनों की मांग पर 'श्रीश्यामदेवोपासना' नामक यह अभिनव ग्रन्थ प्रकाशित किया है, जो नितान्त हर्ष का विषय है। यह पूर्वापेक्षया अधिक समृद्ध तथा शास्त्रीय विवेचनों से युक्त है। ईश्वर की आराधना वेद-शास्त्रोक्त विधि से करने पर ही फलदायी होती है, यह सन्त-महात्माओं का कथन है। भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥

अर्थात् जो व्यक्ति शास्त्रविहित पद्धति को छोड़कर मनमाने ढंग से देवोपासना में प्रवृत्त होता है, वह न तो सिद्धि को प्राप्त करता है और

न ही सुख-शान्ति एवं मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। अतः इस ग्रन्थ में श्रीश्याम-प्रभु की शास्त्रीय पूजा-पद्धति दी गई है, जो भक्तों की मनोकामना शीघ्र पूर्ण करने वाली है तथा श्रीश्यामप्रभु की अनुकम्पा एवं सिद्धि प्रदान करने में समर्थ है।

यह ध्यातव्य है कि इस ग्रन्थ में श्रीश्यामप्रभु की पूजा-पद्धति का शास्त्रीय द्विविध क्रम है। यह दोनों आचार्य गोपालचन्द्र मिश्रजी के द्वारा शास्त्रों का अनुशीलन कर प्रतिपादित है। प्रथम 'श्यामार्चाविधान' के रूप में राजोपचार-पूजा तथा दूसरी स्कन्द-पुराणान्तर्गत कथा में प्रारम्भ एवं अन्त में विहित है। ये दोनों ही पूजा-क्रम अनुभूत एवं सिद्धिदायक हैं। अत: भक्तजनों को इसी के अनुसार श्रीश्यामप्रभु की पूजा करनी चाहिये। कथाविधि के अन्तर्गत श्रीश्याम भगवान् की पूजा के पौराणिक श्लोक बृहन्नारदीयपुराण से विशेषत: लिये गये हैं। बाहरी श्लोकों के लिये प्राय: (   ) इस कोष्ठक में ग्रन्थ का सङ्केत है, तथा शुक्लयजुर्वेद माध्यन्दिनीय संहिता के वेदमन्त्रों का प्रतीक से निर्देश [   ] इस कोष्ठक में दिया गया है। भारत के विभिन्न स्थानों में प्रतिष्ठित श्रीश्याममन्दिरों में पुजारी, अर्चकगण यदि इन पूजाविधियों का प्रयोग श्रीश्यामप्रभु की पूजा में करेंगे तो विशेष उपादेयता होगी।

इस ग्रन्थ के प्रथम परिच्छेद में श्रीश्यामदेवोपासना की महिमा के साथ स्कन्दपुराण में वर्णित श्रीश्यामकथा, भारतसार में उपलब्ध कथा और अन्य परम्परागत भक्तकथाओं को संक्षेप में न केवल दिया गया है, अपितु श्रीश्यामकथाओं का मनोरम समन्वय, सन्देह तथा जिज्ञासाओं का निराकरण, श्रीहनुमान् जी का स्वरूप तथा उनकी आराधना का महत्त्व, राजस्थानीय परम्परा में प्रचलित जात-जड़ूला की शास्त्रीय विधि, खाटूधामयात्रा का विधान, मन्दिर में सम्मार्जन (झाड़ू बहारने) का शास्त्रोक्त फल, ज्योतिर्दर्शन (जोत) का विधान, ध्वज-छत्र-चँवर चढाने का शास्त्रीय विधान एवं महत्त्व भी प्रतिपादित है। पुराणों की अनादि परम्परा का विचार, ढुण्ढार देश का प्राचीन इतिहास तथा माहात्म्य तथा शालग्राम-शिला पर श्रीश्यामप्रभु का पूजन आदि ऐसे विषय वर्णित हैं जो शास्त्रीय वैदुष्यपूर्ण एवं तर्कसम्मत भी है।

द्वितीय परिच्छेद में श्रीश्यामदेव की अर्चन की विधि, हवनविधि, कथा, सिद्धिदायक एवं सब कामनाओं के पूर्ण करने वाले स्तोत्र आदि का संग्रह है। इनमें श्रीश्याम-अष्टोत्तरशतनाम स्तोत्र एवं श्रीश्यामस्तोत्र विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। इन स्तोत्रों के पाठ से सद्यः फलप्राप्ति होती है। श्रीश्यामदेवकथा की श्रवणविधि तथा हिन्दी—अनुवाद सहित कथा भी इस परिच्छेद में दी गयी है।

शास्त्रों में तीर्थ के स्वरूप के लिये बतलाया गया है कि—

प्रभावादद्भुताद् भूमेः सलिलस्य च तेजसा।
परिग्रहान्मुनीनाञ्च तीर्थानां पुण्यता स्मृता ॥

इस वचन के अनुसार ढुण्ढारभूमि के पौराणिक वैशिष्टय, श्रीश्यामकुण्ड के जल की महत्ता तथा भगवान् श्रीश्यामदेव और प्रह्लाद आदि भक्तों के सान्निध्य से खाटूधाम राजस्थान के पुण्यतीर्थों में प्रमुख है। यात्रा की विधि के निरूपण के द्वारा यह पुस्तक पुण्यतीर्थ खाटू के यात्रियों के लिये भी अत्यन्त उपयोगी है।

इस प्रकार श्रीश्याम प्रभु की उपासना के सर्वाङ्गीण निरूपण के कारण यह ग्रन्थरत्न सभी के लिये परम उपादेय एवं प्रत्येक घर में संग्रहणीय हैं। मैं इस श्रेष्ठ ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु डा० श्रीकिशोर मिश्र का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ तथा साधुवाद देता हूँ। आशा करता हूँ कि श्रीश्यामभक्तगण इससे भगवदनुग्रह प्राप्त कर अपना जीवन धन्य करेंगे।

युगलकिशोर मिश्र
प्रोफेसर एवम् अध्यक्ष-वेदविभाग
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी

अक्षयतृतीया
वि० सं० २०५८

विषयानुक्रमणी

प्रथम परिच्छेद— स्वरूपवर्णन तथा यात्रामाहात्म्य १-९४

दैव और देवता १, देव शब्द का अर्थ तथा देवाराधन ३, आराधन-शब्दार्थ ४, देवाराधना की आवश्यकता ४, उपासना के आवश्यक ज्ञातव्य तत्त्व ६, श्रीश्यामदेव के आराधना-मन्दिर ७, 'श्रीश्याम' नाम के कारण ६, श्रीश्याम-देव के धाम और नाम की महिमा ११, भगवन्नाम-कीर्तन १२, भजन-गायन १२, नामजप की शक्ति १३, नामजप का फल १४, श्रीश्यामजी की कथायें १६, स्कन्दपुराणान्तर्गत श्रीश्याम-कथा १६, भारतसार की संक्षिप्त कथा १७, श्रीश्यामजी की प्रसिद्ध कथा १६, दूसरी प्रसिद्धि २१, प्रसिद्धि का मूल २१, विरोध-परिहार २२, महाभारत और श्रीश्यामदेव २२, महाभारत का उद्भव २२, व्यास के पूर्व में महाभारत २५, महाभारत का रचनाकाल २५, भारतकाल २६, महाभारत ग्रन्थ का परिमाण २७, महाभारतग्रन्थ में श्रीश्यामकथा के अभाव का कारण २६, व्यास की अन्य रचनाओं में श्रीश्यामदेव का प्रकाश २६, श्रीश्याम-कथाओं का समन्वय ३०, शीर्षदान का आधिदैविक तथा आध्यात्मिक रहस्य ३३, शीर्षदान लेने का पौराणिक रहस्य ३६, पूर्व-इतिहास की गौणता ३८, श्रीश्यामदेव की श्रीकृष्ण-स्वरूपता ४०, हनुमान्जी का साहचर्य ४०, श्रीहनुमान्जी की आराधना ४१, हनुमान् नाम का कारण ४३, हनुमान्जी की जाति ४४, हनुमान्जी का प्रादुर्भाव ४४, कलियुग में श्रीश्याम-स्वरूप का लीलाधाम ४५, ढुण्ढार क्षेत्र का महत्त्व ४६, श्यामदेव का पुण्यक्षेत्र खाटूधाम ५०, श्रीश्यामकुण्ड से विग्रह की प्राप्ति ५०, श्रीश्याममन्दिर ५२, मन्दिर-दर्शन का महत्त्व ५३, श्रीश्याममूर्त्ति ५४, श्रीश्यामदेव के विग्रह ५५, देवप्रतिमा के भेद ५७, गृहस्थ-भक्तों के पूजनार्थ श्रीश्याममूर्ति ५८, प्रतिमा का श्रृङ्गार तया ज्योति की आराधना ५६, श्रीश्यामोत्सव का शास्त्रीय उल्लेख ६१, श्रीश्याम-जयन्ती ६२, पूर्णदेह का ध्यान ६२, विशेषतिथि द्वादशी की मान्यता ६३. एकादशी-तिथि की मान्यता ६४, ज्योतिर्दर्शन की परम्परा ६५, खाटूधाम की तीर्थयात्रा ६६, खाटू की

यात्रा का क्रम ६६, श्रीश्यामक्षेत्र के अन्य देवस्थान ६८, जात (देवयात्रा) की परम्परा ६९, जात की प्रचलित रीति ७०, जात की शास्त्रीय पद्धति ७०, साधारण जात ७१, विवाह की जात ७१, जडूला ७३, जडूला (चूडाकरण) का फल ७५, चूडाकरणमुहूर्तविचार ७६, चूडाकरणविधि ७६, स्वतन्त्र जडूलाविधि ८०, कथाश्रवण की विधि ८१, श्रीश्यामदेव की प्रसन्नता ८२, देवपूजा में उपचार-समर्पण का कारण ८२, भगवत्प्रार्थना तथा कार्यसिद्धि ८३, धर्मादाय (धर्मार्थ) ८६, धर्मार्थद्रव्य का आवश्यक उपयोग ८९, श्रीश्यामदेव से सम्बन्धित साहित्य ९०, श्रीश्यामदेव कथा ९१, श्रीश्यामदेवेतिवृत्त ९२, श्रीश्यामजी के स्तोत्र ९२, श्रीश्यामदेवाष्टोत्तर-शतनामस्तोत्र ९३, श्रीश्यामार्चाविधान ९३, उपसंहार ९३।

द्वितीय परिच्छेद— आराधनाविधि तथा स्तोत्र-कथा ९५-२११

श्रीश्यामार्चाविधानम् ९५, सङ्कल्पः ९५, प्रधानपूजनोपक्रमः ९६, सर्वतो-भद्रपीठदेवतास्थापनम् ९६, श्रीश्याममण्डलपूजनम् ९९, अग्न्युत्तारणम् १०१, प्राणप्रतिष्ठा १०२, श्रीश्यामपूजनम् १०२, ध्यानम् १०२, आवाहनम् १०२, आसनम् १०३, पाद्यम् १०३, अर्घ्यम् १०३, आचमनम् १०३, मधुपर्कः १०४, अभ्यङ्गम् १०४, उद्वर्तनम् १०४, पञ्चामृतस्नानम् १०४, शुद्धोदकस्नानम् १०५, वस्त्रम् १०५, यज्ञोपवीतम् १०५, गन्धः १०५, अलङ्करणम् १०६, तुलसी १०६, पुष्पम् १०६, परिमलम् १०६, धूपः १०७, दीपः १०७, नैवेद्यम् १०७, आचमनम् १०७, फलम् १०८, ताम्बूलम् १०८, दक्षिणा १०८, शय्या १०८, आदर्शः १०९, आन्दोलनम् १०९, छत्रम् १०९, चामरम् ११०, पादुका ११०, वाहनम् ११०, व्यजनम् ११०, वाद्यम्, १११, गीतम् १११, नृत्यम् १११, नीराजनम् १११, शङ्खभ्रामणम् ११२, प्रदक्षिणा ११२, नमस्कारः ११२, प्रार्थना ११२, पुष्पाञ्जलिः ११३, पूर्णता ११३, होमः ११३, श्रीश्यामस्तवः ११५, श्रीश्यामस्तोत्रम् ११७, हिन्दी अनुवाद ११७, श्रीश्यामसंस्तवः १२२, श्रीश्यामदेवाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम् १२३, नामपारायणमाहात्म्यम् १२४, श्रीहनुमत्पूजाविधिः १२५, भारतसारीयमिति-वृत्तम् १२९, कथाश्रवणविधिः १३४, ध्यानम् १३४, आसनम् १३४, पाद्यम् १३४, अर्घ्यम् १३५, आचमनीयम् १३५, मधुपर्कः १३५, पुनराचमनीयम् १३५, तैल-स्नेहम् १३५, पञ्चामृतस्नानम् १३५, शुद्धोदकस्नानम् १३६, अभिषेकः १३६, परिधानीयवस्त्रम् १३६, उत्तरीयवस्त्रम् १३६, यज्ञोपवीतम् १३६, गन्धः १३६, पुष्पम् १३७, तुलसीपत्रम् १३७, शमीपत्रम् १३७, परिमल (इत्र)–द्रव्यम् १३७,

धूपः १३७, दीपः १३७, नैवेद्यम् १३८, ताम्बूलम् १३८, दक्षिणा १३८, पुष्पाञ्जलिः १३८, नमस्कारः १३८, ब्रह्मार्पणम् १३८, पुस्तके सरस्वतीपूजनम् १३९, व्यासपूजनम् १३९, श्रीश्यामदेवकथा—हिन्दी अनुवाद १४०, प्रथमोऽध्यायः १४१, द्वितीयोऽध्यायः १४६, विजय की सहायता द्वारा परोपकार १५३, तृतीयोऽध्यायः १५६, प्रथम विघ्न–महाजिह्वा का अभयदान १५६, द्वितीय विघ्न–रेपलेन्द्रवध १५८, तृतीय विघ्न–दुहद्रुहा का प्राणवियोग १६०, चतुर्थ विघ्न–पलाशी को प्राणदण्ड १६२, सिद्ध ऐश्वर्य की प्राप्ति १६५, चतुर्थोऽध्यायः १७१, भीमसेन-पराजय १७१, पञ्चमोऽध्यायः १८५, बलप्रदर्शन तथा शीर्षदान १८५, पूजनीयता का वरदान १९७, वरदान की पुनरावृत्ति २००, कथाश्रवणविधौ उत्तराङ्गानि २०७, दीपनीराजनम् २०७, कर्पूरनीराजनम् २०७, शङ्खभ्रामणम् २०७, आरतीगायनम् २०७, प्रार्थना २०८, नामसङ्कीर्तनम् २०९, जयघोषः २०९, साष्टाङ्गप्रणामः २०९, प्रदक्षिणा २१०, क्षमापनम् २१०, ईश्वरार्पणम् २११, तुलसीग्रहणम् २११, चरणामृतग्रहणम् २११, पञ्चामृतग्रहणम् २११, नैवद्यग्रहणम् २११, गमनम् २११, विसर्जनम् २११ ।

परिशिष्ट **२१२-२१६**

श्रीश्यामदेव कथा के लिए आवश्यक वस्तुसूची २१२, चूडा (जडूला) विधि के उपयोगी मन्त्र २१३, स्कन्दपुराणान्तर्गत श्रीश्यामदेवकथा से उद्धृत सुभाषित और धर्मोपदेश २१३, श्रीश्यामदेव कथा में आये हुए विशेष पदों की सूची २१५ ।

श्रीः

श्रीश्यामदेवोपासना

गणपतिमीशं करुणावरुणालयमन्तरायपूगहरम् ।
श्रीश्यामं भगवन्तं भवभयखेदच्छिदं वन्दे ॥

या विष्णोर्भुवनैकपालनकला भक्ताभिलाषां मुहुः,
सम्पूर्य प्रविराजते कलियुगे दिव्या शिलाविग्रहे ।
सच्छत्रैर्मुकुटेन रत्नखचितैराशाप्रभा कामधुक्,
खाटूधामनिवासिनी विजयते श्यामाभिधा देवता ॥

प्रथम परिच्छेद

स्वरूपवर्णन तथा यात्रामाहात्म्य

दैव और देवता

प्रत्येक प्राणी को सर्वदा सुखमय जीवन बिताने की अभिलाषा रहती है। इसके लिए प्राणी अपनी बुद्धि-शक्ति के अनुसार अनेक प्रकार के कार्य भी करता है। परन्तु किये हुए कार्य की सफलता और सुखलाभ प्रधानतया प्राणी के पूर्वजन्म के किये कर्तव्य—जो कि 'प्रारब्ध' या 'दैव' नाम से कहे जाते हैं—के ही आधीन रहता है। इस दैव द्वारा किये जाने वाले अपने मनोरथ की असफलता के निवारण के लिए वेदभगवान् एवं उनके अनुयायी महर्षियों ने अनेक प्रकार के कर्तव्यों का उपदेश दिया है। महर्षि गर्ग ने कहा है—

सुरार्चनेन दानेन साधूनां सङ्गमेन च ।
शुश्रूषया च विप्राणां दैवारिष्टं विनश्यति ॥

अर्थात्—'सुरार्चन' (देवताओं के पूजन) से, दान से, सत्पुरुषों की संगति से, और ब्राह्मणों की सेवा करने से दैवकृत अरिष्ट शान्त हो जाता

है। देव की अनुकूलता के लिए किसी भी देवता का पूजन ('सुरार्चन') किया जा सकता है, तथापि अपने कुलदेव और इष्टदेव का स्मरण-पूजन विशेष महत्त्व रखता है। मनु भगवान् (४।१७८) ने कहा है—

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः।
तेन यायात् सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यति॥

अर्थात् जिस मार्ग का पिता पितामहादि ने अनुसरण किया हो उस मार्ग से ही चलना चाहिए। ऐसा करने से किसी प्रकार का अनिष्ट नहीं होता है। अपने पितृ-पितामहादि से स्वीकृत मार्ग को सन्मार्ग या 'सदाचार' कहा जाता हैं। मनु-याज्ञवल्क्यादि स्मृतिकारों ने धर्म के निर्णय में सदाचार को भी प्रमाण बतलाया है। महर्षि जैमिनि ने भी—

शिष्टाकोपेऽविरुद्धमिति चेत्। न, शास्त्रपरिमाणत्वात्।
अपि वा कारणाग्रहणे प्रयुक्तानि प्रतीयेरन्॥
(पूर्वमीमांसादर्शन १।३।५-७)

इन सूत्रों द्वारा सदाचार को प्रमाण माना है। साक्षात् भगवती श्रुति भी—

'यदेवाग्रे तत् करवाणि' (शतपथ ब्राह्मण १।१।२।५)

'जो पहले था उसे ही अब मैं करूँ' द्वारा सदाचार-परिपालन के विषय में पूर्ण आदेश देती है। इसीलिए प्रत्येक धार्मिक कृत्य में पूजनीय मातृकागण में कुलदेवता का पूजन करना बतलाया गया है*। उपासकों के लिए कुलदेवता की उपासना विशेष अच्छी एवं शीघ्र फलप्रद होती है। यदि किसी अन्य देवता की उपासना की जाय तब भी अपने कुलदेवता का त्याग नहीं करना चाहिए। श्रीश्यामजी महाराज भारत के विशेषतया राजस्थान प्रान्त के लाखों घरों के कुलदेव या इष्टदेव हैं। इनका पूजन-स्मरण राजस्थान में बहुत होता है। स्मरण-पूजन-मनौती के कार्य की सफलता भी

* 'आत्मनः कुलदेवता'—कर्मप्रदीप १।१२।

बहुत अनुभूत है। श्रीश्यामजी के मानने वालों के लिए श्रीश्यामदेव का प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में स्मरण तथा स्वतन्त्रतया या दूसरे दैविक कर्तव्यों के साथ भी अर्चन करना परम कर्तव्य है। स्मरण या पूजन, चरित अथवा स्वरूप के ज्ञान के विना नहीं हो सकता है। इसलिये श्रीश्यामदेव का भी इतिहास जानना चाहिए। इतिहास की प्रामाणिकता किसी प्रामाणिक ग्रन्थ या उल्लेख के द्वारा ही मानी जा सकती है। श्रीश्यामदेव का इतिहास केवल किंवदन्ती मात्र में ही सीमित नहीं है, अपितु वेदविभागकर्त्ता भगवान् कृष्ण-द्वैपायन व्यास के विरचित बृहत्तम पुराण—श्रीस्कन्दपुराण में मिलता है। विश्वविश्रुत 'महाभारत इतिहास' के सारस्वरूप 'भारतसार' में भी श्रीश्यामदेव भगवान् का इतिहास मिलता है।

देव शब्द का अर्थ तथा देवाराधन

देव और देवता दोनों शब्दों का एक ही अर्थ होता है। हिन्दी में देवी-देवता दो पदों का जहाँ प्रयोग होता है वहाँ देवी से स्त्री-देवता तथा देवताशब्द से पुरुषदेवता समझते हैं। संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से देव पुल्लिग शब्द तथा देवता स्त्रीलिङ्ग शब्द है। भारतीय भाषाविज्ञान के प्रमुख आचार्य यास्क ने देव-देवता के सम्बन्ध में लिखा है—

देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा। यो देवः सा देवता। (नि० ७।१५)

अर्थात्—दानशक्ति की विशेषता, किसी पदार्थ की शक्ति को उद्दीपित करने, वर्तमान पदार्थशक्ति का प्रकाशित करने, द्युलोक-स्वर्ग-निवासी होने के कारण देवशब्द का प्रयोग होता है। जो देव है वही देवता पद का भाव है।

यह देव शब्द का निर्वचन है। निर्वचन का अर्थ है—पदार्थगत गुण को जानने के लिए शब्दविश्लेषण करना। आचार्य यास्क ने देव शब्द के जो चार निर्वचन किये हैं, उनका भाव देवता में एक साथ नहीं भी देखा जा सकता है।

अर्थात् किसी भी एक निर्वचन से देव शब्द का प्रयोग हो सकता है, अतः चारों निर्वचन विकल्प रूप हैं। फिर भी यह निश्चित है कि 'देव' में चारों निर्वचनों के गुण अवश्य रहते हैं। भले ही किसी समय किसी एक गुण का प्रकाश होता है।

आराधन-शब्दार्थ

जिस प्रकार देव और देवता एकार्थवादी भिन्न लिंग के दो शब्द हैं, उसी प्रकार आराधन और आराधना भी एकार्थवाची भिन्नलिङ्ग के दो शब्द हैं। आराधना का अर्थ किसी को अपनी लक्ष्यसिद्धि के लिए सर्वतोभावेन अनुकूल बनाने की क्रिया है। यदि किसी से फल लेना है तो उसे प्रसन्न करना आवश्यक है। देवताओं को प्रसन्न करने की क्रिया ही आराधना है। प्रत्येक देवता की अपनी स्वतन्त्र रुचि है। मनुष्य को भी देवताओं की शैली के अनुकूल विचार का होना चाहिये। अतः कहा गया है—

'देवानां वै विधामनु मनुष्याः' (श० ब्रा० ६।७।४।९ तथा ९।१।१।१९) इसलिए प्रत्येक देवता या मनुष्य को अनुकूल या प्रसन्न करने के विभिन्न प्रकार हैं। यही देवताओं की पूजा या यज्ञक्रिया की विभिन्नता का रहस्य है। यही क्रिया उपासना कहलाती है।

देवाराधना की आवश्यकता

सृष्टि के प्रारम्भ में देवता और मनुष्य एक साथ रहते थे—'उभये ह वा इदमग्रे सहासुर्देवाश्च मनुष्याश्च' (श० ब्रा० २।३।४।४)। देवताओं में देने की शक्ति थी, मनुष्य उनसे चाहता था। क्रमशः मनुष्यों का लोभ इतना बढ़ गया कि अपनी छोटी-मोटी सभी इच्छाओं की पूर्ति के लिये वे देवताओं को तंग करने लग गये। तव देवताओं ने इनसे दूर रहना पसन्द किया। इसीलिए जो देवता की निवासभूमि 'द्युलोक' है, उसे देवताओं ने दूर कर लिया। पहले तीनों लोक एक दूसरे से इतने समीप थे कि हाथ से छुए जा सकते थे—

'समन्तिकमिव ह वा इमेऽग्रे लोका आसुरिति उन्मृश्या हैव द्यौरास। ते देवा अकामयन्त कथं नु न इमे लोका वितरां स्युः, कथं न इदं वरीय इव स्यादिति।' (श० ब्रा० १।४।१।२२-२३) इसी प्रकार देवता भी मनुष्यों की भाँति मर्त्य थे, परन्तु वे संवत्सररूपी समय के सदुपयोग तथा ब्रह्म (वेद-शास्त्र) की प्राप्ति के कारण अमर्त्य अर्थात् अमर बन गये—'मर्त्या ह वा अग्रे देवा आसुः। स यदेव ते संवत्सरमापुरथामृता आसुः' (श० ब्रा० ११।१।२।१२) 'स यदेव ते ब्रह्मणापुरथामृता आसुः। (श० ब्रा० ११।२।३।६)

उक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट है कि देवता बहुत अंशों में मनुष्यों के समान थे, पर मनुष्य अपने लोभ और अनियमितता से देवताओं से दूर हो गया। फिर भी देवता उदार हैं, वे दूसरों का उपकार करना नहीं छोड़ते। यह समस्त जगत् देवताओं के ही अधीन है—'देवाधीनं जगत्सर्वम्'। मनुष्य सीमितशक्तिवाला है। देवताओं को अपरिमित शक्ति है। उन्हें यदि आराधना से प्रसन्न कर लिया जाय तो उनसे मनोवाञ्छित कार्य पूरा हो जाता है। क्योंकि—'यद्वै मनुष्याणां प्रत्यक्षन्तद् देवानां परोक्षम्, अथ यन्मनुष्याणां परोक्षं तद् देवानां प्रत्यक्षम्।' (ता० ब्रा० २२।१०।३) अर्थात् मनुष्यों के प्रत्यक्ष की बात देवताओं के लिए परोक्ष है। किन्तु जो मनुष्यों के लिए परोक्ष अर्थात् अपरिज्ञेय है वह देवताओं के लिए प्रत्यक्ष है। फलतः हमारे कार्य की सिद्धि, इच्छा की पूर्ति के लिए जो उपाय, साधन या तन्त्र अपेक्षित है, और हमें ज्ञात नहीं हो सकता वह देवता के लिए आँखों देखी सी बात है। कार्यसिद्धि के अनुकूल उपायों का बताना देवताओं के लिये अत्यन्त सरल है। इसीलिए हमें देवताओं की आराधना करना आवश्यक होता है। बिना देवाराधना के मनुष्य की सफलता सन्दिग्ध या भ्रमपूर्ण है।

यहाँ यह जिज्ञासा होना स्वाभाविक है कि देवाराधन से देवता कार्य कैसे सिद्ध करते हैं। इसके समाधान के लिए शास्त्रकारों ने कहा है कि—'मनो ह वै देवा मनुष्यस्याजानन्ति' (श० ब्रा० १।१।१।७, तु० ३।४।२।६)

अर्थात् देवता मनुष्य के मनोगत भावों को ठीक-ठीक जान लेते हैं। इसलिए मनुष्य को देवाराधन में छलछिद्र-कपट नहीं करना चाहिये। जब वे मानव के मानसिक भावों को जानकर उसकी प्रार्थना सुनते हैं तो—

'न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्धया संयोजयन्ति तम्॥'

अर्थात् देवता चरवाहे की भाँति डण्डा लेकर व्यक्ति को नहीं चलाते हैं, अपितु जिसकी रक्षा करना चाहते हैं उसे कार्यसिद्धि के अनुकूल बुद्धि दे देते हैं। फलतः आराधक व्यक्ति के मन में कार्यसिद्धि के अनुकूल उपाय, साधन सूझने लगते हैं। अव्यर्थ उपाय की सूझ के लिए ही देवताओं की आराधना, उपासना आवश्यक हो जाती है।

उपासना के आवश्यक ज्ञातव्य तत्त्व

देवाराधन में कतिपय आवश्यक ज्ञातव्य तत्व हैं, उनको सर्वदा ध्यान में रखना चाहिये। वे ये हैं—

१. 'इतः प्रदानाद्धि देवा उपजीवन्ति' (श० ब्रा० १।२।५।२४) देवता इस पृथ्वीतल के दिये हुए पदार्थों से प्रसन्न होते हैं। देने से ही ग्रहण करते हैं, विना दिये नहीं लेते।

२. 'स यदेव यजेत, तेन देवेभ्य ऋणं जायते। तद्धि एभ्य एतत्करोति, यदेनान् यजते, यदेभ्यो जुहोति' (श० ब्रा० १।७।२।२) अर्थात्—देवता के उद्देश्य से जो दिया जाता है, यज्ञ या हवन-पूजन (कीर्तन भजन) किया जाता है उससे देवता अपने को ऋणी मानते हैं और उसके बदले में वे मानव की इच्छापूर्ति करते हैं।

३. 'न ह वा अनार्षेयस्य देवा हविरश्नन्ति' (कौ० ब्रा० ३।२) देवता ऋषियों के सम्बन्ध—उनकी सन्तान या उनके समादृत मार्ग, विधि—के विना दी गई हवि (भाग) को नहीं अपनाते है। अतः शास्त्र तथा भारतीय सदाचार के अनुसार देवाराधन करना चाहिये।

४. 'न ह वा अव्रतस्य देवा हविरश्नन्ति' (ऐ० ब्रा० ७।११ कौ० ब्रा० ३।१)—देवता नियमरहित व्यक्ति के हवि (भाग) को ग्रहण नहीं करते हैं। अतः आराधना के नियमों का पालन करना चाहिये। एतदर्थ व्रत रखते हुए, शास्त्रोक्त आहार ही लेकर, उच्छिष्ट भोजनादि का परहेज रखकर उपासना, कीर्तन, यात्रा आदि करनी चाहिये।

५. 'एकं ह वै देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यं, तस्माद् सत्यमेव वदेत्।' (श० ब्रा० १४।१।१।३३) देवताओं का सत्य बोलने का नियम है, अतः देवाराधन में सत्य बोलना चाहिये।

देवाराधन के कतिपय ज्ञातव्य तत्त्व जो उपरिलिखित हैं, उनके अतिरिक्त विभिन्न देवताओं के लिए विभिन्न नियम गुरु परम्परा या विद्वानों से समझ लेने चाहिये। शास्त्रीय एवं परम्परानुकूल विधि से देवाराधन सर्वथा और सर्वदा कल्याणकारी है।

श्रीश्यामदेव के आराधना-मन्दिर

श्रीश्यामजी कलियुग के दयालु देवता हैं। सृष्टि के मूलभूत तत्त्वों में सत्वगुणप्रधान केन्द्र ही देव या देवता कहलाते हैं। पूर्वोक्त निर्वचन के अनुसार १. देने की शक्ति २. पदार्थ या तत्त्व में तेजस्विता ला देना ३. सामान्यजन से सम्पर्क रखते हुए भी उनकी भावना, मनोवृत्ति, उपभोगस्थान आदि के ऊपर और अलग रहना—इन देवगुणों के विकास के स्तर के आधार पर मानव भी देवता बन जाता है। स्वाभाविक देवता अर्थात् जन्मतः देवता में अनेक विशेषतायें होती हैं। जैसे—१. विग्रह (स्वरूप) पर अवस्थाकृत प्रभाव न पड़ना, २. अपनाये गये शब्द और क्रिया को अव्यर्थ बनाये रखना, ३. पंचमहाभूतों की समष्टि या व्यष्टि में भी अबाध गति रखना (व्यापकता), ४. सृष्टि के नियामक कर्म-स्वभाव आदि बन्धनों का उन्मूलन न करते हुए मध्यमार्ग निकालकर भक्त की प्रार्थना को पूर्ण करना, ५. अपनी व्यापकता, शक्तिमत्ता को केन्द्रों की विशेषता के आधार पर प्रकट करना आदि देवत्व की विशेषतायें हैं।

भगवान् श्री श्यामजी देवता हैं। उनमें उक्त सभी गुणधर्म विद्यमान हैं। प्रत्येक देवता का प्रकाश-काल निश्चित है। कलियुग श्री श्यामजी का प्रकाश या प्रभावकाल है। इसमें इनकी आराधना अधिक प्रभावकारी है। भक्तिरस में निमग्न सूर, मीरा आदि भक्तजन भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति श्याम, श्यामसुन्दर, सांवरिया, आदि कहकर अद्भुत भावविभोरता प्राप्त करते थे। श्रीकृष्ण ही हमारे आराध्य श्रीश्याम हैं। श्रीश्याम से ही राजस्थान की शान हैं। शान का प्रतीक निशान है, जिसे मेले के अवसर पर भक्तजन गाते बजाते बड़ी श्रद्धा से मन्दिर में ले जाते हैं।

देवताओं के निवास स्थान को मन्दिर कहते हैं। मन्दिर का अर्थ होता है—मनोगत मानवीय दुःखदायी भावों को दूर हटाने की स्वाभाविक शक्तिवाला स्थान। इसीलिए मन्दिर शब्द का प्रयोग पूज्य स्थान के लिये होता आया है। परन्तु आज के अविवेकप्रवाह के युग में रूढ़िवाद को कोसने वाले प्रवाह में शब्दों की मर्यादा भी खतरे से परे नहीं है। चित्रालयों, दुकानों, मकान-संस्थाओं के लिए भी मन्दिर शब्द जुटता जा रहा है। श्रीमद्भागवत के माहात्म्य से यह स्पष्ट है कि किसी भी सारवान् फलदायी पदार्थ की मर्यादा नष्ट करना, दुरुपयोग करना उसके सार एवं फलदायिता को समाप्त करना है। चौरासी लाख योनियों में प्रमुख, सृष्टि की सभी वस्तुओं का उपयोग करने में सक्षम मानव के द्वारा आज मर्यादा से विहीन होकर शक्ति का दुरुपयोग करने के कारण मानवता का सार प्रायः निकल गया है। यदि यही गति रही तो बचा खुचा सार भी निकल जायेगा।

यदि मानवता बचानी है, अपने को बचाना है तो हमें देवमन्दिरों की शरण लेनी चाहिये। शुद्ध हृदय, उदात्त भावना, अधिकारसीमा, समझकर देवबुद्धि से देवता से प्रार्थना करनी चाहिए। अपने नियमों, अधिकारों

में दृढ़ रहना चाहिये। देवता का सान्निध्य सर्वत्र है, पर जहाँ जितनी देवता के मूलरूप की मूर्ति में समानता, आराधना-क्रिया में प्रबलता, आराधना के साधनों की बहुलता रहेगी, वहाँ देवतत्त्व, उतना ही प्रगट जाज्वल्यमान एवं भक्तवांछाकल्पतरु बनेगा।

भगवान् श्रीश्याम जी के मन्दिरों की संख्या बढ़ती जा रही है, यह प्रसन्नता का विषय है। परन्तु संख्या बढ़ाना ही देवता के प्रति भाव बताना नहीं है। भाव का तो मन-वाणी से सम्बन्ध है। इनकी यथार्थता के आधार पर जो क्रिया होगी वही भौतिक आराधना है। अतः सभी श्याम-मन्दिरों में पवित्रता, पूजा, पूजक एवं पूजासाधनों की सुव्यवस्था तथा मर्यादा को बढ़ाकर ही श्रीश्यामजी की देवकला का सान्निध्य प्राप्त कर जीवन सफल बनाया जा सकता है।

'श्रीश्याम' नाम के कारण

पौराणिक कथाओं से यह स्पष्ट है कि वीरवर बर्बरीक अपनी लोकोत्तर वीरता के कारण भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा अपनाये गये 'श्रीकृष्ण-स्वरूप' देवता है। वर्तमान समय में इनकी प्रसिद्धि 'श्रीश्याम' नाम से है। श्रीश्याम नाम होने के कई कारण हैं, और हो सकते हैं। उनमें प्रधानतया निम्नलिखित कारण हैं—

१. संस्कृत साहित्य में कृष्ण और श्याम दोनों शब्द काले रंग के बोधक हैं (अमरकोष १।५।१४)। भगवान् श्रीकृष्ण बिलकुल काले नहीं थे, परन्तु उनमें यह शब्द विशेष अर्थ से प्रयोग किया जाता है। महाभारत में बतलाया गया है कि—'कृष्' यह सत्तावाची शब्द है। 'ण' यह आनन्दवाची शब्द है। इन दोनों के योग से सनातन विष्णु (व्यापक=चित्) 'कृष्ण' (सच्चिदानन्द) शब्द से कहे जाते हैं—

'कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः।
विष्णुस्तद्भावयोगाच्च कृष्णो भवति शाश्वतः॥' (उद्योगपर्व)

कूर्मपुराण के मत से भगवान् विश्व को नियमन करते हुए खींचते है। इस कारण वेदवक्ता मुनिगण भगवान् को 'कृष्ण' कहते हैं—

'यतः कर्षसि देवेश नियम्य सकलं जगत्।
अतो वदन्ति मुनयः कृष्णं त्वां ब्रह्मवादिनः॥'

भगवान् भक्तजनों के पाप का कर्षण (हरण) करते हैं इसलिये 'कृष्ण' कहे जाते हैं।

भगवान् श्रीकृष्ण साँवले रंग के थे, अतः उन्हें 'श्याम' भी कहा जाता है। श्यामरंग का कालापन कोयल के समान काला नहीं होता, किन्तु नवीन मेघ के समान नीला होता है। श्यामरंग का वास्तविक स्वरूप भक्तवर सन्त तुलसीदास जी के निम्नलिखित दोहे से बहुत स्पष्ट होता है—

'नील सरोरुह, नीलमणि, नील नीरधर=श्याम।
लाजहि तनु शोभा निरखि कोटि कोटि शत काम॥'

'भगवान् के नीले कमल, नीलम मणि, और नीले जलपूर्ण बादल के समान कोमल प्रकाशमय सरस श्यामवर्ण शरीर की शोभा देखकर कोटियों कामदेव भी लजा जाते हैं।'

हिन्दीसाहित्य में भगवान् श्रीकृष्ण के लिए भक्तजन 'श्याम' 'श्याम सुन्दर' 'साँवरिया' शब्द अधिकमात्रा में प्रयोग करते हैं। संस्कृत-साहित्य में भी श्रीकृष्ण के लिए 'घनश्याम' 'श्यामसुन्दर' (श्रीमद्भागवत १०।२२।१५) शब्द मिलते हैं।

लोकपूज्य वर्वरीक की शिरोमूर्त्ति भी श्रीकृष्ण का स्वरूप है। अतः इसकी 'श्रीश्याम' नाम से प्रसिद्धि समुचित ही है।

२. श्रीश्यामदेव कथा (अ० ५ श्लो० ७४) में भगवान् श्रीकृष्ण ने वरदान देते समय वर्वरीक को 'श्याम' शब्द से संबोधन किया है।

३. श्रीश्यामदेव कथा (अ० १ श्लोक १०) में वर्वरीक के शरीर का रंग 'नीलमेघचयप्रख्यः' नीले मेघ की घटा के समान अर्थात् श्याम बताया गया है।

इन्हीं प्रधानतम कारणों से पूज्य इष्टदेव की 'श्रीश्याम' नाम से प्रसिद्धि हुई है।

श्री श्यामदेव के धाम और नाम की महिमा

हमारे इष्टदेव प्रभु सर्वव्यापक हैं। व्यापक वही कहलाता है जिसकी सत्ता सर्वत्र अनुभूत हो सके। व्यापक पदार्थ के लिए यह अनिवार्यता नहीं है कि वह प्रतिक्षण सर्वत्र बिजली की तरह दृष्टिगोचर या प्रकाश की तरह अनुभूत होता रहे। वस्तुतः व्यापकता का भाव यह है कि वह विशेष प्रकार के साधनों और क्रियाओं से सर्वत्र प्राप्त किया जा सके। जैसे—पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पाँचों तत्त्व शरीर में व्यापक हैं। इनकी व्यापकता का अनुभव तत्त्वों के प्रभाव या शक्ति से अनुभूत होता है। प्रत्येक तत्त्व का पृथक्करण साधना या देवादि के अनुग्रह के द्वारा दिव्य शक्ति प्राप्त होने पर किया जा सकता है। काष्ठ में अग्नि सर्वदा वर्तमान है किन्तु उसका दर्शन तथा जाड़े को दूर करना, जलाने आदि का प्रभाव केवल काठ में नहीं होता। काठ में अग्नि की ज्वाला चाहे दियासलाई की हो या अङ्गारे की हो, सम्पर्क करने पर ही दिखाई देती है। इसी प्रकार प्रभु सर्वत्र व्याप्त होने पर भी अपने में शक्ति और आचार-सम्पन्न गुरु की कृपा से, मूर्ति में प्रतिष्ठा-कर्म की शुद्धता और वेद-मन्त्रों के प्रभाव से, किसी विशेष स्थान में उपासना की अधिकता या साधना की तीव्रता या भगवान् के सहज अनुग्रह से प्राकट्य हो पाता है। भगवान् श्रीश्यामदेव का नित्य प्राकट्य खाटू की मनोहर मूर्ति में है। इस खाटू स्थान और मूर्ति में भगवान् अपनी सहज भक्तवत्सलता से प्रकट हुए थे और तब से अब तक निरन्तर भक्तों की भावना को पूर्ण करने के लिए सर्वदा वर्तमान हैं। इस मूल स्थान खाटू में भगवान् श्री श्यामदेव की जो मूर्ति है इसकी अनोखी छटा और दान-शक्ति अनन्त है।

संप्रति भगवान् श्यामदेव जी के मन्दिर, भक्तगण जगह-जगह बनाते हैं, वहाँ सविधि प्रतिष्ठा कराकर आराधना करते हैं, फल भी पाते हैं। किन्तु भगवान् के देवत्व का दिव्य स्रोत और भक्तवत्सलता का प्रभाव जो खाटू में देखा जाता है वह अन्यत्र दुर्लभ है। इसका एकमात्र कारण भगवान् श्यामदेव की स्वतन्त्र इच्छा और खाटू धाम को सर्वप्रथम अपनाना है।

भगवन्नाम—कीर्तन

भगवान् श्रीश्याम के लीलाधाम खाटू की जितनी महिमा है उससे अधिक महिमा भगवान् के नाम की हैं। भगवान् का नाम जितनी भावभक्ति से जपा जायेगा उतना ही अनुग्रह प्राप्त होगा। नाम-जप में अद्‌भुत शक्ति है। किसी सोते हुए आदमी को हम उसका नाम लेकर दूर से भी बुला सकते है, उसी भाँति भगवान् श्री श्यामदेव हमसे चाहे जितने (हमारे असामर्थ्य के कारण) दूर हों नाम-जप के प्रभाव से हम उन्हें बुला लेते हैं और भाव-भक्ति सहित नामजप के अनन्तर प्रार्थना करते हैं तो भगवान् उसे अवश्य सुनते हैं। नामजप का ऊँचे स्वर से समयबद्ध अनुष्ठान ही कीर्तन है।

अकेला मनुष्य भी नामजप कर सकता है किन्तु उसे आलस्य, असावधानी, निद्रा, नित्य के संकल्प से विघ्न आ जाते हैं। इस कारण अनेक भक्तजन इकट्ठे होकर जो समय की सीमा बाँधकर ऊँचे स्वर से नामजप करते हैं वह सामूहिक कीर्तन है।

जन-गायन

नाम की प्रधानता देकर भगवान् की लीलाओं का पुट दिया जाता है तो यह नाम—जप भजन बन जाता है। भजन का सस्वर प्रयोग गान है। भजन का गायन अकेले भी हो सकता है, किन्तु यही कीर्तन-भजन-गायन सामूहिक होता है तो एक अनुपम भाव अपने तथा दूसरे अपरिचित

सहृदय के भी मन में आता है। इसकारण सामूहिक भजन-कीर्तन का विशेष प्रभाव पड़ता है और भक्तों की इस सामूहिक गायन-कुशलता में भगवान् स्वयं प्रकट होने के लिए बाध्य हो जाते हैं। जैसा कि शास्त्रों में स्पष्ट बताया गया है—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

भगवान् स्वयं कहते हैं कि—मैं वैकुण्ठ या योगियों के हृदय में निवास नहीं करता, किन्तु जहाँ मेरे भक्त (शुद्ध हृदय के भाव-भक्ति-संपन्न व्यक्ति) मिलकर गायन करते हैं वहाँ प्रकट रहता हूँ।

नामजप की शक्ति

नामोच्चारण की अनन्त शक्ति के लिये शास्त्रों में कहा गया है कि—

नाम्नोऽस्य यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।
तावत् कर्त्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः॥

भगवान् के एक नाम के उच्चारण में पापनाश करने की जितनी शक्ति है उतना पाप एक पातकी (सर्वदा पापरत व्यक्ति भी) नहीं कर सकता है।

नाम की इस महिमा को जानने के बाद यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि आज-कल नामसंकीर्तन, अखण्ड रामधुन, नाना भजन-भक्तियों के कार्य और देवताओं के उत्सव, महोत्सव की धूम रहते हुए भी देश एवं व्यक्ति में अशान्ति का साम्राज्य क्यों फैला हुआ है। इसका कारण यह है कि हम नामापराधों की ओर ध्यान नहीं देते। नामापराधों के रहते हुए नाम-जप का वास्तविक फल मिलना दुर्लभ है। इसीलिए तो भगवान् ने गीता में कहा है—

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः॥ (गीता ९।१२)

अर्थात् अनधिकार की व्यर्थ आशाओं तथा शास्त्र के अनुमोदन से विहीन होने के कारण निरर्थक कर्म करने वाले, तथा कुतर्क के आग्रह से व्यर्थ ज्ञान बघारने वाले, नासमझ व्यक्ति, तमोगुणप्रधान राक्षसी प्रकृति या रजोगुणप्रधान आसुरी प्रकृति तथा केवल बाहरी सजावट, ढोंग से मोहने वाली प्रकृति का आश्रय लेकर (जनता को भुलावा देकर) आराधना नहीं, अपितु मेरी अवज्ञा मात्र करते हैं। और भी कहा है—

"अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ॥
आत्मसंभाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम्॥"
(गीता १६।१६-१७)

अर्थात् नानाविध मनोरथों में जिनका मन भटक रहा है, मोहमाया के जाल से जो घिरे हुए हैं, काम-विलासिता के भोग साधनों में जो लिपटे हुए हैं, वे व्यक्ति अपने आप अपनी पूज्यता को मानकर अविनीतता से धन-सम्मान और घमंड से युक्त होकर छल-कपट से आयोजित नामयज्ञ के द्वारा भगवन्नाम का अविधिपूर्वक जप करते हैं। वे अपवित्र नरकों में गिरते हैं।

इसलिए जप, भजन, कीर्तन, गायन करने वाले भक्तों को नामापराधों से बचते हुए भगवदाराधना सफल करनी चाहिये। कीर्तन-गायन में भजन के शब्दों के श्रवण, उच्चारण तथा मनन पर ध्यान रखना चाहिये, नृत्य-वाद्यों पर विशेष जोर नहीं होना चाहिये।

नामजप का फल

भगवन्नाम–जप से सभी कामनायें पूर्ण होती हैं। लौकिक कामनाओं के मुख्य रूप से तीन वर्ग होते है। प्रथम वर्ग—पापविनाश का है। इस वर्ग में हम उन सभी कामनाओं का सन्निवेश करते हैं जो हमारे इस जन्म या पूर्व जन्म के ज्ञात, अज्ञात दैवी प्रतिबन्ध, ग्रहादि अरिष्ट-

रूप से प्रकट करते हैं। क्योंकि यह प्रतिबन्ध पापकर्म का ही फल है। द्वितीय वर्ग—भयनिवृत्ति का है। अपनेपन का भाव या उदासीनता का भाव नहीं रहता है तब व्यक्ति दूसरे के ऊपर स्वार्थ-भावना से आक्रमण करता है। यह आक्रमण स्वार्थ की मात्रा एवं शक्ति की स्थिति के अनुसार हल्के या भारी रूप से दूसरे के ऊपर किया जाता है। आक्रमणकारी का विपक्षी अपनी कमजोरी का अनुभव करता है तो यही आक्रमण उनके लिए भय हो जाता है। इसप्रकार के छोटे-बड़े भयों को निवृत्ति के लिए भी भगवन्नाम जप बहुत बड़ा साधन है। कामनाओं का तीसरा वर्ग है—भूतिप्राप्ति। भूति का अर्थ सामान्य आवश्यकता से अधिक सुख-सुविधा के साधनों का संकलन है। जो धन, संतान, स्थायी-अस्थायी संपत्ति, पशु-खेती आदि विभिन्न आकांक्षाओं का रूप है। मानव का स्वभाव है कि वह जीवन को सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के अनन्तर उच्चाभिलाषा में ऐश्वर्यसम्पन्न बनना चाहता है। मानवेतर सभी प्राणी जीवन की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति में ही अपने को कृतकृत्य समझ लेते हैं। किन्तु मानव यदि सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति से ही अपने को कृतकृत्य समझ लेता है तो वह अपनी बुद्धि-शक्ति और मानवता का पूर्ण उपयोग नहीं करता है। इसलिए महाकवि माघ ने स्पष्ट उपदेश दिया है कि—

"कृतकृत्यो विधिर्मन्ये न वर्धयति तस्य ताम्"

अर्थात् कृतकृत्य आलसी व्यक्ति की समृद्धि को विधाता भी नहीं बढ़ाता। भूति की इच्छा असंतोष में तब परिणत होती है जब भगवत्कृपा से प्राप्त साधनों में जीवन की आवश्यकता के अभाव की तरह सुख-साधनों को प्राप्ति के लिए घबराहट बनी रहती है। यदि अभाव की घबराहट न रहे और सुख-समृद्धि धन-धान्य, पशु, आदि प्राप्त साधनों में आनन्दानुभव के साथ भगवान् के अनुग्रह का ध्यान बना रहे तो यही संतोष है और परम शान्ति है। इसलिए व्यक्ति को अपनी बुद्धि-शक्ति का सदुपयोग करते हुए सुख-समृद्धिरूपी भूति की प्राप्ति के लिए अनासक्त एवं भगवान् के अनुग्रहप्राप्ति के रूप से कार्य करते रहना ही उसकी मानवता है।

पूर्व कथित तीनों प्रकार की कामनाएँ भगवन्नामजप से पूर्ण होती हैं। इसका स्पष्ट उल्लेख विष्णुसहस्रनाम के आरम्भ में—

विष्णोर्नामसहस्रं मे शृणु पापभयापहम्....।
ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये॥

इन पंक्तियों में बताया गया है।

अतः प्रत्येक व्यक्ति को यथाशक्ति भगवन्नाम-जप करके अपनी आवश्यकता की पूर्ति एवं समृद्धि में सफलता प्राप्त करनी चाहिए।

श्रीश्यामजी की कथायें

भगवान् श्री श्यामदेव की अवतारसम्बन्धी कथायें प्राचीन पौराणिक साहित्य में उपलब्ध होती हैं। प्रसिद्ध स्कन्दपुराण के कौमारिका खण्ड में तथा भारतसार में मुख्यतः श्री श्यामदेव का ऐतिह्य वर्णित है। इनके अतिरिक्त भक्तजनों की मान्यता के अनुसार श्री श्यामजी की अन्य कथायें भी प्रचलित हैं। इनका परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

स्कन्दपुराणान्तर्गत श्रीश्याम-कथा

एक समय महर्षि शौनक ने उग्रश्रवा से श्रीश्यामचरित की कथा सुनाने का अनुरोध किया। उग्रश्रवा ने उनको द्वैपायन द्वारा उपदिष्ट कथा इस प्रकार सुनाई—भीम के पुत्र प्रतापी राजा घटोत्कच की भार्या ने समयानुसार नीलकमल के समान द्युति वाले पुत्र को जन्म दिया। देवयोनि होने के कारण वह बालक तत्काल युवावस्था को प्राप्त हुआ* तथा बर्बर (घुंघराले)

---

* अष्टानां देवयोनीनां यतो जन्म च यौवनम्।
सद्य एव भवेत् तस्मात् सद्योऽस्यासीच्च यौवनम्॥ (स्क० पु० कौ० ख० ५९।३०)
आठों देवयोनियों का जन्म और युवावस्था तत्काल ही होते हैं। देवयोनियों का नाम अमरकोष (१।११) में इस प्रकार है—
विद्याधराप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः॥ आठ देवयोनियों में स्कन्दपुराण (कौ० ख० ५६।९१) के अनुसार गन्धर्व और अप्सरस का ग्रहण नहीं है।
शास्त्रीय विवेचन से बर्बरीक नाम में पवर्गीय बकार नहीं अपितु अन्तःस्थीय 'व' है, यह निश्चित होता है।

बालों के कारण उसका वर्वरीक नाम प्रसिद्ध हुआ। घटोत्कच अपने पुत्र वर्वरीक को द्वारका में भगवान् वासुदेव के पास ले गये तथा श्रीकृष्ण ने वर्वरीक को गुप्तक्षेत्र में जाकर देव्याराधन का निर्देश दिया। सुहृदय वर्वरीक ने देवी की उपासना से अपार शक्ति प्राप्त की तथा वहाँ साधना के लिए आये हुए विजय नामक ब्राह्मण की अनेक प्रकार से सहायता तथा रक्षा करते हुए रेपलेन्द्र, द्रुहद्रुहा, पलाशी आदि राक्षसों का संहार किया। देवताओं ने वर्वरीक की परोपकारी शक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें सिद्ध ऐश्वर्य का वर दिया। वनवास के समय भीमसेन भी एकबार गुप्तक्षेत्र में आये तथा तीर्थ के रक्षक वर्वरीक से परिचित न होने के कारण उनमें संघर्ष भी हुआ। तदनन्तर वर्वरीक के पराक्रम से प्रसन्न होकर समस्त पाण्डवों ने उनकी प्रशंसा की। वनवास पूरा होने पर महाभारत युद्ध के प्रारम्भ में वीर वर्वरीक ने अकेले ही एक मुहूर्त (४८ मिनट) में सम्पूर्ण कौरवसेना के संहार का प्रस्ताव किया तथा श्रीकृष्ण के कथनानुसार एक बाण से सभी योद्धाओं के मृत्युमर्म के स्थानों को चिह्नित कर दिया। तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण ने उनका शीश लेकर उस पर अमृत से अभिषेक के अनन्तर उसे **अपने स्वरूप में 'श्याम' नाम** से अनन्त काल तक पूजित होने का वर दिया।

श्रीश्यामदेव ने पूरे महाभारत युद्ध को देखा तथा अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा को ही एकमात्र युद्ध में विजय का साधन मानते हुए वास्तविक स्थिति बतलाकर पाण्डवों के बल-अभिमान को समाप्त किया। भगवान् श्रीकृष्ण ने **पुनः आत्मस्वरूप श्रीश्यामदेव को** कलियुग में भक्तों की अभिलाषा पूर्ण करने का **वरदान** दिया।

भारतसार की संक्षिप्त कथा

वीर वर्वरीक अतिरथियों की गणना में गिने गये थे (भारतसार, उद्योग-५८।७)। इनके पास केवल तीन बाण थे। इसे देखकर भगवान्

श्रीकृष्ण हँस पड़े, और बोले—हे भीम अर्जुन आदि वीरों! आप लोग वर्वरीक के धनुष एवं बाणों को देखिये। इन बाणों के कट जाने पर यह क्या करेगा? क्या आप लोग बहुत से बाणों का भार व्यर्थ ही लादे रहते हैं? इस प्रकार श्रीकृष्ण के व्यङ्ग वचनों को सुनकर वर्वरीक ने कहा—भगवन्! एक बाण से ही मैं सब राजाओं को मार सकता हूँ। मेरा सब काम दो बाणों से होता है। एक बाण से योद्धाओं की मृत्यु को समझ कर दूसरे बाण से उनके प्राण निकाल दूँगा। तब श्रीकृष्ण ने कहा—तुम मेरी मृत्यु को बताओ, तब मैं तुम्हारी बात मान सकता हूँ। वर्वरीक ने एक बाण आकाश में छोड़ा। वह सब जगह घूम कर श्रीकृष्णचन्द्र के चरणारविन्द में सिन्दूर का चिह्न बनाकर वर्वरीक के पास लौट आया। श्रीकृष्ण एवं अन्य वीर इस कर्तव्य से उसे महापुरुष समझ कर चुप रहे।

दूसरे दिन पाण्डवों से भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि—विजयप्राप्ति के लिए किसी वीर के प्राणोत्सर्ग के द्वारा युद्धभूमि की पूजा करनी चाहिये। ऐसा नहीं करने से पृथ्वी पाण्डववीरों को खा जायेगी। श्रीकृष्ण के इन वचनों को सुनकर पाण्डवों ने उत्सर्ग के योग्य पुरुष बतलाने के लिए भी उन्हीं से कहा। श्रीकृष्ण ने—स्वयं को, बर्वरीक और अर्जुन को इस कार्य के योग्य बतलाया। वर्वरीक ने श्रीकृष्ण के द्वारा अपने को उत्सर्ग के योग्य सुनकर हँसते हुए सबसे कहा—श्रीकृष्ण और अर्जुन के बिना यह युद्ध निष्फल रहेगा। अतः मेरा ही शिर इस कार्य में लगना चाहिए। आप लोगों को जय हो' यह कहकर श्रीकृष्ण से युद्ध देखने की इच्छा प्रकट करके वर्वरीक ने एक हाथ से अपने शिर की चोटी पकड़ कर दूसरे हाथ से शिर काट लिया। वर्वरीक का शिर श्रीकृष्ण के चरणों में गिर पड़ा। श्रीकृष्ण ने उसे प्रेम से उठाकर, देखने के लिए पर्वत के ऊपर रख दिया। दूसरे दिन से महाभारत का संग्राम प्रारम्भ हुआ। महाभारत युद्ध में पाण्डवों की

विजय हुई। युद्ध के अन्त में श्रीकृष्ण ने वर्बरीक के वचनों द्वारा पाण्डवों के गर्व को हटाकर अपनी ज्योति से उसको ज्योति मिलाकर वर्बरीक को अपने स्वरूप में एकाकार कर लिया।

श्रीश्यामजी की प्रसिद्ध कथा

महाभारत के संग्राम के समय वीर वर्बरीक उपस्थित हुए थे। इनके पास केवल तीन बाण थे। ये पाण्डवपक्ष के अतिरथी वीर थे। और अपने विपक्षी कौरवदल से अकेले ही युद्ध करने की इच्छा रखते थे। भगवान् श्रीकृष्ण ने अन्य राजाओं के सन्देह निवारण के लिए इनसे कहा कि—आप केवल तीन बाण ही लेकर इस महासमर में उपस्थित हुए हैं और विपक्षी दल को अकेले ही परास्त करना चाहते हैं। यह तो बहुत आश्चर्य मालूम होता है। किस प्रकार आप केवल तीन बाणों से सारी सेना का विध्वंस करेंगे। इसके उत्तर में वीर वर्बरीक ने कहा—भगवन्! मैं एक बाण से ही त्रिलोकी का नाश कर सकता हूँ। दो बाण तो मेरे पास अधिक हैं। तब भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—यदि ऐसा है तो आप इस वृक्ष के सब पत्तों को एक बाण से वेध दीजिए। जिससे हम लोग आपकी बात का विश्वास कर सकें। ऐसा कहकर श्रीकृष्ण ने एक पत्ता अपने चरण के नीचे दबा लिया। वर्बरीक ने एक बाण छोड़ा। वह सब पत्तों को वेध करके जमीन में चला गया। और भीतर ही भीतर श्रीकृष्ण भगवान् के दबाये हुए पत्ते को वेधकर वापस वर्बरीक के पास आ गया। श्रीकृष्ण ने इस चमत्कार को अन्य वीरों को दिखाकर 'युद्ध में इनके द्वारा कौरव पक्ष को हार होने पर भी पाण्डव सेना का भार पृथ्वी पर वैसे ही बना रहेगा' यह सोचकर वर्बरीक से कहा—जो वीर होता है, वह दानी भी होता है। मुझे विश्वास है कि आप भी महावीर हैं तो दानवीर भी अवश्य होंगे। वर्बरीक ने कहा कि—भगवन्! मैं दानवीर तो नहीं हूँ। परन्तु आप आज्ञा दीजिये मैं सहर्ष

आज्ञापालन एवं सेवा करने के लिए उपस्थित हूँ। ववंरीक के वचन सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा—प्रिय! वीरवर! ववंरीक! रणभूमि के पूजन के लिए वीरबलि की आवश्यकता है। इसलिए आप से मैं आप के शिर को ही माँगता हूँ, आप मुझे दीजिए। वर्वरीक इस आत्मोत्सर्ग की प्रार्थना सुनकर जरा भी नहीं विचलित हुये, अपितु हर्ष से उन्होंने कहा कि—भगवन्! मैं आप को अपना शिर दे रहा हूँ। इससे आप वीरभूमि का पूजन कीजिये। महाभारत का महायुद्ध देखने की मेरी इच्छा है। यदि उचित हो तो आप इसे पूर्ण कीजियेगा। श्रीकृष्ण ने युद्ध दिखाने के लिए वचन दिया, और वर्वरीक ने अपना शिर शरीर से अलग करके भगवान् के हाथ में रख दिया। भगवान् श्रीकृष्ण ने शिर को प्रेमदृष्टि से देखकर संजीवित किया और उसके निर्विकार, प्रसन्नचित्त दान एवं वीरता पर प्रसन्न होकर वरदान दिया कि—तुम कलियुग में मेरे रूप से पूजित होकर भक्तों की मनोवाञ्छा (इच्छा) पूर्ण करोगे। यह वर देकर शिर को एक पर्वतशिखर के ऊपर रख दिया। उसके बाद महायुद्ध हुआ, जिसमें पाण्डवों की जीत हुई। वही वीर वर्वरीक श्रीश्यामजी के नाम से श्रीकृष्ण-स्वरूप में पूजे जाते हैं। यह कथा बहुत से प्रामाणिक विद्वान् एवं प्राचीन सज्जनों के मुख से सुनी गयी है।

फैजाबाद प्रान्त में उपर्युक्त कथा के पूर्ण आधार पर एक कहावत है—'तीन तिलेठी, भुल्लन पायक'। यहाँ तिलेठी बाण के लिए है, और भुल्लन यह व्यक्ति का नाम बतलाया जाता है। अर्थात् महाभारत के संग्राम में एक ओर 'तीन तिलेठी' तीन बाण वाला 'भुल्लन' नाम का व्यक्ति 'पायक' सहायक था। इस कहावत में 'भुल्लन' के 'ल' की जगह 'ज' पढ़ने से कथा एवं उपर्युक्त प्रसिद्धि से एकता हो जाती है। तब अर्थ होगा—'तीन तिलेठी' (बाण) वाला महारथी वीर 'भू'=पृथ्वी के 'जन'=मनुष्यों का 'पायक'=रक्षक हो गया।

दूसरी प्रसिद्धि

अनेक सज्जन 'बभ्रुवाहन को श्रीकृष्ण के वरदान से पूज्यता प्राप्त हुई, और वही बभ्रुवाहन श्रीश्यामजी के नाम से प्रसिद्ध हैं' ऐसा कहते हैं। परन्तु इस कथन में शास्त्र से पुष्टि अपेक्षित है।

बभ्रुवाहन अर्जुन के द्वारा चित्राङ्गदा में उत्पन्न पुत्र था। इसका राज्य मणिपुर में था। इसने महाभारत युद्ध के बाद महाराज युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को पकड़ लिया था। घोड़े को वीरता से छुड़ाने के लिए पिता-पुत्र—अर्जुन एवं बभ्रुवाहन में घमासान युद्ध हुआ। जिसमें कार्तिक शुक्ल एकादशी, सोमवार, उत्तरा नक्षत्र के सायंकाल में बभ्रुवाहन ने अपनी वीरता से अर्जुन का शिर काट दिया। बभ्रुवाहन के संजीवनमणि लाने के लिए चले जाने पर अर्जुन का शिर अन्तर्हित हो गया। भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से मस्तक आने पर संजीवनमणि के द्वारा अर्जुन को उज्जीवित किया गया। (देखिए-भारतसार, अश्वमेध पर्व अ० ८६-८८)

इस कथा में—बभ्रुवाहन की अद्भुत वीरता, कार्तिक शुक्ल एकादशी का उल्लेख, श्रीकृष्ण द्वारा पुनः संजीवन—की बातों मात्र का ध्यान रखने से ही बभ्रुवाहन को श्रीश्यामजी के नाम से प्रसिद्ध बताने का भ्रम स्पष्ट प्रतीत है। वस्तुतः वीरवर बर्बरीक ही श्रीश्यामजी के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं।

प्रसिद्धि का मूल

प्रसिद्ध कथा के अनुकूल तीन बाणों का उल्लेख भारतसार की कथा के मनन से आभासित होता है। उपर्युक्त स्कन्दपुराण एवं भारतसार की कथाओं के अध्ययन से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि—यह (पृ० १९) प्रसिद्ध कथा इन्हीं दोनों कथाओं का परिवर्तित एवं परिवर्धित रूप है।

विरोध-परिहार

भारतसार (एवं प्रसिद्ध कथा) में वर्वरीक के पास तीन ही बाण बतलाये हैं। परन्तु स्कन्दपुराण की श्रीश्यामदेव कथा के 'तूणीरावक्षयौ तथा' (५।२५) तथा 'अधुना पातयिष्यामि मर्मस्वेषां शिताच्छरान्' (५।४३) को देखने से मालूम होता है कि—इनके पास कई बाण थे। यद्यपि यहाँ विरोध प्रतीत होता है, तथापि गंभीर विचार करने पर विरोध नहीं रह जाता है। क्योंकि—बहुवचन तीन बाणों के लिये भी उचित है। तथा 'बाण' शब्द शब्दार्थक 'बण' (भ्वादि) धातु से सिद्ध होता है। तथा 'शर' शब्द हिंसार्थ 'शृ' (क्र्यादि) धातु से बनता है। अतः इन दोनों पदों का यौगिक अर्थ क्रम से शब्दकरने वाला, तथा मारने वाला होगा। भगवान् श्रीश्याम महाभारत के युद्धस्थल में, जहाँ सब राजा शक्ति, तोमर, भुशुण्डी आदि बहुत से आयुधों के साथ उपस्थित हुए थे—वहाँ शब्द करने एवं मारने वाले केवल तीन आयुध—धनुष, बाण, खड्ग (५।२५,२६) ही लेकर आये थे। इन शब्दकरने वाले या मारने वाले तीन शस्त्रों के कारण भारतसार (एवं प्रसिद्धि) में तीन बाणों का उल्लेख है।

महाभारत और श्रीश्यामदेव

भगवान् श्रीश्यामदेव का महाभारतयुद्ध से घनिष्ठ सम्बन्ध है। फिर भी महाभारत ग्रन्थ में श्री श्यामदेव का या वर्वरीक का नाम या चरित-संकेत नहीं मिलता है। इसके रहस्य को जानने के लिये हमें महाभारत ग्रन्थ की उत्पत्ति-कथा आदि जान लेना आवश्यक है।

महाभारत का उद्‌भव

एक समय द्वापर युग में ब्रह्माजी की सभा में महर्षिगण इकट्ठे हुये। ब्रह्माजी ने सबका यथायोग्य स्वागत किया और आनन्दपूर्वक बैठ

जाने पर कहा कि—पहले मैंने भविष्य-विषय को कहने वाले रामायण को बनाया (मन में स्मरण किया) था। उसे मेरे कथनानुसार महर्षि वाल्मीकि ने २४ हजार श्लोकों में संग्रह कर दिया। उसके बाद मैंने महाभारत तथा १८ पुराण एवं उपपुराण बना (स्मरण कर) रखे हैं, परन्तु वे संक्षिप्त है तथा श्लोकबद्ध नहीं है। इसलिए आपलोगों में जो समर्थ हो वह महाभारत १८ पुराण एव उपपुराण ग्रन्थों को बनावे। इस प्रकार ब्रह्माजी के कहने पर किसी मुनि ने कोई उत्तर नहीं दिया। तब नारदजी ने कहा—भगवन्! आपको आदिकवि वाल्मीकि ने पहले हो कह दिया था कि—द्वापरयुग में वेदव्यास नाम से भगवान् का कलावतार होगा वही महाभारत, पुराण एवं उपपुराणों का कर्ता होगा। इसलिए वेदव्यास ही आपकी आज्ञा का पालन करेंगे। यदि अन्य महर्षि इस कार्य में समर्थ हों तो वे बोलें। तब मुनियों ने कहा—ब्रह्मन्! हम सब लोग पुराण बनाने में समर्थ हैं। आप अलग-अलग पुराण बनाने का आदेश दीजिये। अकेले व्यास ही आपकी आज्ञानुसार कार्य करेंगे, यह बात नहीं है। हम सब आपके आज्ञानुसार काम करेंगे। मुनियों के इस प्रकार आपस में विरोधी वचन सुनकर ब्रह्माजी ने कहा—यद्यपि आपलोग सब ही पुराण बनाने में समर्थ हैं, परन्तु महर्षि वाल्मीकि ने व्यास के लिए हो आज्ञा दी है। अतः इस विवाद को निपटाने के लिए जनक राजा के पास जाइये, वह आपके इस विवाद को ठीक निपटा देगें। ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर सब मुनि राजा जनक के पास गये। राजा के द्वारा सत्कार पाकर पूछने पर सबने अपने आने का कारण बतला दिया और सबके प्रतिनिधि महर्षि पराशर को बतला कर राजा जनक से निर्णय के लिए कहा। राजा जनक ने बात सुनकर परीक्षार्थ मुनियों के प्रतिनिधि पराशर तथा व्यास से कहा कि आप दोनों भगवन्नाममाहात्म्य का प्रतिपादक श्लोक बनाइये।

राजा की आज्ञा पाकर पराशर ने कहा—

हरेस्तु मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्त्तते।
भस्मीभवन्ति राजेन्द्र महापातककोटयः॥

व्यासदेव ने कहा—

नाम्नोऽस्य यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।
तावत्कर्तुं न शक्तः स्यात् पातकं पातकी जनः॥

इस प्रकार दोनों की रचना सुनकर जनक ने निर्णय किया कि—महाभारत के तो कर्ता वेदव्यास ही होंगे। किन्तु आप सब लोग व्यास को लेकर महर्षि वाल्मीकि के पास जाइये और उनसे काव्य के बीज सीखिए, जिससे पुराणों की रचना सफल हो सके। जनक के द्वारा इस प्रकार कहने पर सब ऋषि, तपानिधि वाल्मीकि के पास गये और उन्होंने ब्रह्मसभा एवं जनक के निर्णय को सुनाकर काव्यबीज सिखाने के लिए प्रार्थना की। वाल्मीकि ने कहा—३६ पुराणों तथा भारत के रचयिता व्यास ही होंगे। परन्तु आप लोगों को भी कहने, लिखने, अथनिरूपणादि के द्वारा पुराण बनाने में सहायता रहेगी। परन्तु सब पुराणों का श्लोक बनाने वाले व्यास ही रहेगें। महाभारत तो अकेले व्यास ही बनायेगें। आप सब लोग पधारिये। मैं काव्यबीज व्यास को ही दूँगा। व्यास के प्रताप से यह बीज आप लोगों को भी प्राप्त हो जायेगा। जिसके द्वारा आप लोग धर्म-ग्रन्थों का तथा व्यास महर्षि से अकथित रहस्यों का प्रकाश करेंगे। इस प्रकार आदिकवि वाल्मीकि के कहने पर सब मुनि प्रसन्नतापूर्वक लौट गये। अकेले व्यास वाल्मीकि के पास रहे। वाल्मीकि ने विष्णु के मुख, बाहु, जांघ, पैर से चारों वर्णों की उत्पत्ति एवं उनके धर्म बतलाते हुए कहा कि—पतित द्विजों आदि को वेद पढने का अधिकार नहीं है*। अतः उनको वेदार्थज्ञान कराने के लिये भगवान् नारायण के द्वारा भारत का

* स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनाम्।

निर्माण हुआ है। उसको श्लोकबद्ध विस्तृत बनाने के लिए आप नारायण के द्वारा नियुक्त हैं। मेरी रामायण में केवल नारायण की लीला है, परन्तु आपके भारत में नर-नारायणात्मक लीला का वर्णन रहेगा। यह रामायण से भारत की विशेषता होगी। पुनः आदिकवि वाल्मीकि ने भारत की प्रशंसा करते हुए व्यासजी को भारत-कवच का उपदेश दिया और रामायण पढने के लिए आदेश दिया। व्यासजी ने वाल्मीकि को नमस्कार करके रामायण का अध्ययन किया और अध्ययन समाप्त होने पर भारत एवं छत्तीसों पुराणों के विग्रहरूप में दर्शन किये। तदनन्तर महात्मा व्यासदेव ने महाभारत ग्रन्थ का निर्माण किया।

व्यास के पूर्व में महाभारत

वृहद्धर्मपुराण के पूर्वांश (अध्याय ३०) के अध्ययन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि भगवान् नारायण ने अपने मुखादि अवयवों से ब्राह्मणादि चातुर्वर्ण्य की सृष्टि करके स्त्रीशुद्रादि वेदानधिकारियों को वेदप्रतिपाद्यविषय के परिज्ञान के लिए भारत की रचना की। इसीलिए भारत को पाँचवाँ वेद माना जाता है। जिसप्रकार शौनक के चरणव्यूह आदि में प्रसिद्ध है कि—

लक्षन्तु चतुरो वेदान् लक्षं भारतमेव च।
लक्षं व्याकरणं प्रोक्तं चतुर्लक्षन्तु ज्यौतिषम्॥

चारों वेदों में एक लाख मन्त्र हैं। महाभारत में एक लाख श्लोक है। व्याकरण में व्याडि के संग्रह में एक लाख श्लोक हैं। चार लाख श्लोकों का विस्तृत ज्योतिष शास्त्र हैं।

महाभारत का रचनाकाल

सत्यव्रत सामश्रमी ने निरुक्तालोचन में महाभारत को व्याकरण के पातञ्जल महाभाष्य से परवर्त्ती माना है।

उनका हेतु है कि (८ अध्या० २ पा० १ आ० में) भाष्यकार लिखते हैं—

वृद्धकुमारीवाक्यवदिदं द्रष्टव्यम्, तद्यथा—वृद्धकुमारी इन्द्रेणोक्ता वरं वृणीष्वेति। सा वरमवृणीत पुत्रा मे मधु क्षीरं घृतमोदनं कांस्यपात्र्यां भुंजीरन् इति। न तावदस्याः पतिर्भवति, कुतः पुत्राः, कुतो गावः, कुतो धान्यं तत्रानया एकेन वाक्येन पतिः पुत्रा गावः धान्यमिति सर्वं संगृहीतं भवति।

यहाँ भाष्यकार जिस रूप से वृद्धकुमारी-वाक्य लिखते हैं उस रूप का वृद्धकुमारी का इतिहास प्रचलित महाभारत में नहीं है। इस कारण महाभारत भाष्यकार पतञ्जलि से परकाल में संग्रह किया है। परन्तु सामश्रमी महोदय का लेख विचारणीय है कि उन्होंने भाष्यकार पतञ्जलि (४५० ई० पूर्व) से पाणिनिको अनेक शताब्दी से पूर्ववर्त्ती मानते हुए भी उनके महान् व्रीह्यपराह्णगृष्टीष्वासजाबालभारभारतहैलिहिलरौरवप्रवृद्धेषु, (६।२।३८) सूत्र से निष्पन्न होने वाले महाभारत शब्द एवं पाणिनि के विरचित गणपाठ के विष्वक्सेनार्जुनौ (२।२।३१)सात्यकिः (२।४।५९) जरत्कारुः (४।१।१२) गाण्डीवम् (२।४।३१) श्वाफल्किः (२।४।६१) प्रभृति महाभारतीय शब्दों पर बिल्कुल ही ध्यान नहीं दिया है। इसके अतिरिक्त महाभाष्य के–कालः पचति भूतानि, (३।३।१६७) त्रीणि यस्यावदातानि (४।१।४८) यस्मिन्दश सहस्राणि (१।४।३) तथा श्लोकों, यावक्रीतिकः, यायात्मिकः (४।२।६०) आदि उदाहरणों से भी महाभारत का पतञ्जलि से पूर्ववर्त्ती होना सिद्ध होता है।

भारतकाल

प्राचीन भारतीय इतिहास में (पृ० १८२) पार्जिटर ने लिखा है कि भारतयुद्ध काल इससे ९५० वर्ष पहिले था। पौराणिक वंशावलियों को अपने अभिप्रायानुकूल बनाकर उन्होंने यह परिणाम निकाला है। उन्हीं वंशावलियों के आधार पर श्री जायसवाल का यह परिणाम है कि भारतयुद्ध ईसा से १४२४ वर्ष पूर्व हुआ। ये दोनों महाशय अत्यन्त यत्नशील होने पर भी तथ्य को नहीं देख सके।

नारायण ने ब्रह्मा की सृष्टि करके उनको वेदों का परिज्ञान कराया तथा उसी प्रकार रामायण एवं महाभारत भी ब्रह्मा को दिया। ब्रह्माजी को रामायण की प्राप्ति के अनन्तर भारत की प्राप्ति हुई। ब्रह्माजी को जो रामायण, महाभारत भगवान् नारायण से मिला था यह श्लोकबद्ध नहीं था। इसीलिए ब्रह्माजी ने आदिकवि वाल्मीकि के द्वारा रामायण को २४००० श्लोकों में बनवाया। रामायण के श्लोकबद्ध होने पर भी महाभारत श्लोकरूप में नहीं था। द्वापरयुग में भगवान् कृष्णद्वैपायन व्यास के प्रादुर्भूत होने पर ब्रह्माजी ने उनके द्वारा भारत एवं पुराणों की श्लोकबद्ध रचना करवाई। महाभारत ग्रन्थ के प्रादुर्भाव के पूर्व प्राचीन समय में राजाओं की प्रशंसा या कथा मौखिक ही प्रचलित होती आती थी। जो प्रशंसात्मक कथा होती थी उसकी चर्चा नाराशंसगाथा के नाम से आती है। महाभारत में इनकी चर्चा—

'अप्यत्र गाथा गायन्ति ये पुराणविदो जनाः'

इत्यादि वाक्यों के द्वारा मिलती है। भागवतादि में भी—

तस्यानुगुणान् श्लोकान् गायन्ति (५।६।१३) तस्येदमुपगायन्ति, (५।१४।४२) आदि वाक्यों द्वारा मिलती हैं।

महाभारत ग्रन्थ का परिमाण

सन् १०३० के समीप का यवन ऐतिहासिक अलबेरूनी, सन् १००० के लगभग होने वाले शैवागम के अद्वितीय विद्वान् आचार्य अभिनवगुप्त (गीताभाष्य भूमिका श्लो० २ में) सन् ९२० के समीपवर्त्ती शिशुपालवध महाकाव्य पर टीका करने वाले वल्लभदेव (शिशुपालवध २।३८), सन् ९०० के सन्निकट के काव्यमीमांसाकार राजशेखर तथा सन् ४४५ के महाराज सर्वनाथ के ताम्रपत्र आदि के लेखों से यह स्पष्ट है कि महाभारत की श्लोक संख्या एक लाख है। इन प्रमाणों से यह भी निष्कर्ष

निकलता है कि महाभारत का लक्षश्लोकात्मक वर्तमान रूप दो हजार वर्षों से सुरक्षित है और उसके बाद इसमें कुछ पाठान्तरों के अलावा कोई अधिक हेर-फेर नहीं हुआ। इस विषय में एक प्रबल प्रमाण यह भी है कि भण्डारकर इन्स्टीच्यूट, पूना का जो शतशः पुराने कोषों के आधार पर श्लाघनीय संस्करण निकला है वह भी मुद्रित चारों—कलकत्ता बम्बई, कुम्भकोण, पूना के संस्करणों से विशिष्ट भेद नहीं रखता है। इससे ज्ञात होता है कि महाभारत के अनेक पर्व अब भी सम्भवतः वैसे ही है जिस प्रकार आज से सहस्रों वर्ष पूर्व थे। विक्रम से पूर्व जबकि आर्यपरम्परा सुदृढ़ थी उस समय इन ग्रन्थों में न्यूनाधिक करने का कोई साहस नहीं कर सकता था। फलतः यह कहा जा सकता है कि निःसन्देह कृष्णद्वैपायन भगवान् व्यास द्वारा विरचित यह लक्षश्लोकात्मक महाभारत आर्य इतिहास का एक प्रामाणिक ग्रन्थ है।

महाभारत के लक्षश्लोकात्मक होने में यह भी एक ध्यान देने योग्य तथ्य है कि भागवतादि प्रायः सभी पुराणों से यह सिद्ध है कि भारत वेदानधिकारी स्त्रीशूद्रजनों के कल्याणार्थं बना है। अतः जिसप्रकार वेदों का एक लक्ष मन्त्रात्मक प्रमाण बतलाया जाता है उसी प्रकार इतर वर्ग के लिये वेदस्थानापन्न भारत का लक्षश्लोकात्मक होना भी युक्तियुक्त है।

भाषाविज्ञानशास्त्र के आदिग्रन्थ यास्कीय निरुक्त में देवताओं की पुरुषविधता, अपुरुषविधता का विचार करते हुए कहा है—एष चाख्यान-समयः। इसकी व्याख्या करते हुये आचार्य दुर्ग लिखते है—भारते चाख्यानसमयः। इसमें दुर्ग ने महाभारत के कई उपाख्यानों की ओर संकेत किया है। दुर्ग के लेख से यह सिद्ध होता है कि निरुक्तकार महामुनि यास्क आख्यान सहित महाभारत से परिचित थे। यदि दुर्गाचार्य का यह विश्वास है तो मानना पड़ेगा कि महाभारत का वर्तमान आकार-प्रकार भारतयुद्ध के तीन सौ वर्ष के अन्दर ही प्रचारित हो गया था।

महाभारत ग्रन्थ में श्रीश्यामकथा के अभाव का कारण

महर्षि वेदव्यास को महाभारत ग्रन्थरचना का उत्तरदायित्व तथा उसके विषय-निरूपण का निर्देश मिला। अतः उन्होंने उस आदेश को परिधि में ही रहकर सम्बद्ध चरित्रों का प्रकाश किया। यह प्रसिद्ध है कि महाभारत के पात्रों में अर्जुन नर तथा कृष्ण नारायण हैं। महर्षि वाल्मीकि ने नर-नारायण की महिमा ही महाभारत ग्रन्थ में वर्णित करने का आदेश दिया था। भगवान् श्रीश्यामदेव के बर्बरीकविग्रह की अजेयता, गिनती के तीन शस्त्रों से सृष्टि को या महाभारत युद्ध को समाप्त करने का सामर्थ्य, अकेले ही कुछ क्षणों में कौरव सेना को ध्वस्त करने की क्षमता एवं शिरोदान जैसे त्याग का इतिहास नर अर्जुन के चरित्र को क्षीण बना रहा था। ऐसे प्रतिद्वन्द्वी नायक का उल्लेख काव्यकला के सर्वथा विपरीत होता है। यही कारण है कि महर्षि वेदव्यास ने महाभारत में बर्बरीक के नाम का स्मरण नहीं किया।

व्यास की अन्य रचनाओं में श्रीश्यामदेव का प्रकाश

भारतसार महाभारत ग्रन्थ का सारांश है तथा इसके संवाद, पात्र महाभारत के पात्रों के वंशज हैं। वंशजों को महाभारत की उन व्यक्तियों के इतिहासों का जनश्रुति की परम्परा से परिज्ञान था। अब व्यास तथा अन्य महर्षि भी वाल्मीकि की नरनारायण-महिमा में आबद्ध नहीं थे। अतः भारतसार में भगवान् श्रीश्यामदेव का इतिहास स्पष्ट रूप से प्रकाशित हुआ है। व्यास से अकथित किन्तु रहस्यात्मक विषयों के प्रकाशन में वाल्मीकि ने अन्य ऋषियों को वर्णन का अधिकार दिया था। इसलिए स्कन्दपुराण में अधिक विस्तार से भगवान् श्यामदेव का चरित वर्णित है। आज के समय में श्रीश्यामदेव की महिमा घर-घर एवं जन-जन में प्रभावशाली हो रही है। यह श्यामजी की कृपा है।

श्रीश्यामकथाओं का समन्वय

भगवान् श्रीश्यामदेव के चरित एवं इतिहास के सम्बन्ध में दो धारायें प्रचलित है। पहली धारा भगवान् के उन भक्तों की है जो बाबा की महिमा एवं उनके अनुग्रह से प्रभावित होकर समय-समय पर भजन या वाणियों द्वारा भगवान् का गुणानुवाद करते हैं। इन भक्तों का साहित्य निरन्तर बढता रहता है। यद्यपि श्यामदेव के अनेक दिव्य स्थान एवं सत्संग-कीर्तनप्रचारक मण्डल देश के कोने-कोने में बने हुए हैं और बन रहे हैं। परन्तु इस भक्तप्रणीत भजनादि साहित्य को एकत्र करने का सम्भवतः योजनाबद्ध प्रयास नहीं हुआ है। बिखरा हुआ श्रीश्याम-भजनसाहित्य इतना विशाल हो चुका है कि पुराना साहित्य संकलित करना अब सरल कार्य नहीं है। यदि प्रयास किया जाय तो नवीन साहित्य का संग्रह हो सकता है। धीरे-धीरे पुराना साहित्य भी एकत्रित किया जा सकता है।

भक्तप्रणीत श्रीश्यामसाहित्य में अहिलवती नागकन्या के पुत्र-रूप से भी इनका विशेष वर्णन है। इसी भक्तसाहित्य के अन्तर्गत भगवान् श्री श्यामदेव श्रीकृष्णचैतन्यज्योति से अभिन्न होने के कारण बर्बरीक या बभ्रुवाहन नाम से बताये गये हैं। अखण्डज्योति पुस्तक भी भक्तसाहित्य है, क्योंकि उसका आधार संस्कृतसाहित्य के किसी भी ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं है। कुछ विचारकों का तो कहना है कि अखण्डज्योति वस्तुतः श्री श्यामचरित्र नहीं हैं। क्योंकि नवनिर्मित अखण्डज्योति (गंगानगर के भक्त द्वारा बिरचित) में भगवान् श्रीश्यामदेव की महिमा, शौर्य या बुद्धि का उतना प्रभाव ज्ञात नहीं होता जितना उनकी माता की महिमा, शौर्य या प्रतिभा का अथवा भगवान् शिव की महिमा का विशेष महत्त्व जाना जाता है। कुछ भी हो इसे भक्तसाहित्य कहना अनुचित नहीं है। अतिप्राचीन

भक्तवाणियों में तो अहिलवती-पुत्र पर जोर न देकर नोले घोड़े के सवार साँवरिया के सर्वांग-विग्रह का चिन्तन किया गया है।

दूसरी धारा संस्कृतवाङ्मय पर आधारित हैं। इसकी दो शाखायें हैं। एक इतिहासशाखा तथा दूसरी पुराणशाखा। इतिहासशाखा का अर्थ है महाभारत के इतिहासग्रन्थ के प्रभाव से विरचित संस्कृतग्रन्थ। इस सम्बन्ध में इतिहासशाखा का केवल भारतसार नामक ग्रन्थ मिलता है। जिससे वर्वरोक का शोशदान प्रमाणित होता है। भारतसार का यह अंश इस ग्रन्थ में अविकल रूप से प्रकाशित है।

पुराणशाखा से वर्णन स्कन्दपुराण के कौमारिका खण्ड में उपलब्ध है। इसका पाँच अध्यायो में वर्गीकरण एवं मूलसहित अनुवाद 'श्री श्याम-देव कथा' के नाम से प्रकाशित हुआ है। स्कन्दपुराण की कथा का सर्वप्रथम संकेत सरदारशहर के पं० श्री सीताराम मिश्र जो कविरत्न ने अपनी 'श्यामपूजा पद्धति प्रकाश' पुस्तक में किया है। इस कथा के अनुसार भगवान् श्री श्यामदेव का पूर्ववृत्त भीम के पौत्र के रूप से वर्णित है।

उभयविध धाराओं तथा विभिन्न शाखाओं को देखने से जिज्ञासु भक्तों में शङ्का होना स्वाभाविक है। परन्तु शङ्का का अवसर इसलिए नहीं है कि भारतवर्ष का इतिहास सृष्टि से सम्बद्ध होने के कारण अनादि और अनन्त है। भगवान् श्रीश्यामदेव सहज वैष्णवदेवधर्मसम्पन्न अमर-तत्व हैं। इनका जन्म नहीं होता। वे भक्तों के मनोग्राह्य बनने के लिए लीला करते हैं। लीला यदि एक रूप को होती है तो उसमें मानव को नीरसता को अनुभूति होने लगती है। लीला में वास्तविकता छिपी रहती है। लीला का इतिहास से सम्बन्ध हो सकता है पर वह स्वयम् इतिहास नहीं होती। ऐसी स्थिति में प्रादुर्भाव एक लीला है। कलियुग में मानवों की नास्तिकता को देवत्व की ओर उन्मुख करने के लिये एवं सहज अनुग्रह के लिये भगवान् श्री श्यामदेव अपनी प्राकट्यलीला

प्रत्येक कलियुग में करते हैं। जिस प्रकार वेदों के विभाजन के लिये इस वैवस्वत मन्वन्तर में अट्ठाईस वेदव्यास हो चुके उसी प्रकार यदि भगवान् के प्राकट्य के अठाईस कथानक भी मिलें तो कोई विरोध या शङ्का नहीं करनी चाहिये। सभी चतुर्युगी भेद से सम्भव है*। किसी भी रूप से आस्था रखकर भगवान् की आराधना करनी चाहिये। चरित्र या इतिहासज्ञान तो आराधना स्थिर करने के लिये अक्षरलेखन कला के लिये स्लेटपट्टी पर अभ्यास मात्र है। आराधना में जो तत्व दिव्यतेज, शक्तिमान् प्रभाव जाग्रत् होता है उससे इतिहास या पूर्वचरित से कोई सम्बन्ध नहीं है। हमें तो भगवान् के सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् समस्त कल्याणगुणसम्पदा-विभूषित, बिना कारण के अपार करुणा के सागर, करने, न करने, विपरीत करने के निग्रहानुग्रह-सम्पन्न देवतत्त्व का स्मरण-अर्चन-कीर्तन करना चाहिये। इसीलिये श्रीमद्-भागवत में कहा है —

प्रपञ्चं निष्प्रपञ्चोऽपि विडम्बयसि भूतले।
प्रपन्नजनतानन्दसन्दोहं प्रथितुं प्रभो॥

अर्थात्—हे भगवन् आप पूर्णतः प्रपंचरहित है। फिर भी इस पृथ्वीतल पर नानाविध अवतारों और लीलाओं को उलझन से, प्रपंच को भी विडम्बना, तिरस्कृत कर देते हैं। यह इसलिये नहीं कि इससे आपको कुछ सुख-आनन्द मिलता हो अपितु शरणागत भक्तों के आनन्दसागर को बढाने के लिए आपकी यह लीला है। क्योंकि सभी अपने कर्म-संस्कारवश किसी एक भाव को पकड़ने से असमर्थ है। विभिन्न भावों को समृद्ध करने के लिये आप भी नानाविध अचिन्त्य अपरिमेय रूप एवं लीलाओं में अभिव्यक्त होते हैं।

---

* इतिहासपुराणानि व्यासव्याजेन शङ्करः।
करोति कल्पकल्पेषु प्रतिमन्वन्तरं स्वयम्॥
(काशीकेदारमाहात्म्य १।४४)

शीर्षदान का आधिदैविक तथा आध्यात्मिक रहस्य

भारतीय परम्परा में जन्म का भी महान् आदर है। आत्मा को अजर अमर समझते हुए भी हम जन्म और मृत्यु से आत्मा का एक शरीर से दूसरे शरीर का सम्बन्ध समझते हैं। जन्म अर्थात् शरीरसम्बन्ध की विशेषता का महत्त्व है। तदनुसार हमें शिरोमूर्ति के पूजन में कुछ विचार होना स्वाभाविक है, इसलिए यहाँ कुछ लिखना आवश्यक है। वास्तविक तथ्य यह है कि रक्षस् योनि के 'बर्बरीक' ने अपना शरीर छोड दिया, अतः उस शरीर से आत्मा का संबन्ध छूट गया। उसके बाद अमृत के अभिषेक से केवल सिर का संजीवन-संस्कार किया गया। यह दूसरा जन्म हुआ। यह जन्म देवता-तत्त्व का है। इसका आधार भगवान् श्रीकृष्ण और देवियों की मानसिक इच्छा है। इसलिए इस सिर के हिस्से में प्रकट देवतातत्त्व का संसार में व्यवहार के लिए 'श्रीश्याम' नाम रखा गया। इसीलिए पुराने शरीर के सभी नाम और संस्कार लुप्त हो गये। यही कारण है कि भक्तगण श्यामजी को देवता या भगवान् मानते हैं। इसीलिए श्यामजी की पूजा एक सत्वगुणसम्पन्न देवतत्त्व की पूजा है। इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिए।

इसी तथ्य को हम दूसरी रीति से इसप्रकार भी समझ सकते हैं कि—सत्ता, चैतन्य और आनन्द-मूर्ति किसी परमतत्त्व की इस लीलामय सृष्टि में बहुत से भौतिक पदार्थ हैं। गीता (१६।६) में इनको दो सर्गों में बाँटा गया है, जो देवसर्ग और आसुरसर्ग के नाम से उल्लिखित हैं। भगवान् ने गीता में सर्ग की सम्पत्ति (निर्णयोपयोगी गुण-गरिमा) बताई है, वह चेतन जगत् में स्पष्ट दिखाई दे सकती है। इन दोनों सम्पत्तियों का अधिक स्पष्ट रूप सांख्यदर्शन के ३ भौतिक सर्ग और उसके भेद-प्रभेद, सब मिलाकर १४ योनि-सर्गों में वर्तमान है। पुराण तथा तदनुगामी श्रद्धालुओं ने जड,

चेतन सब पदार्थों को ८४ लाख योनियों की प्रसिद्धि में कहकर गुणों का अत्यधिक स्पष्ट विवेचन कर रखा है। संक्षेप और सरलता से समझने के लिए सांख्यदर्शन की सर्गनिरूपण-प्रक्रिया उपयोगी है। तदनुसार तीन सर्ग हैं जो देव, मानुष और तिर्यग्योनि सर्ग नाम से हैं। आज का विज्ञान मानुष सर्ग तथा तिर्यग्योनिसर्ग के ५ भेदों तक ही दृष्टिपात कर पाया है। देवयोनिसर्ग के ८ भेद अभी आधुनिक विज्ञान से अछूते हैं। परन्तु आर्ष विज्ञान ने इन पर पूरा प्रकाश डाला है। तदनुसार देवयोनिसर्ग की एक मुख्य विशेषता है—जन्म के साथ ही स्थिर युवावस्था। इन आठ देवयोनिसर्गों में एक 'रक्षस्' सर्ग भी हैं। इस रक्षस् और पुराणों में अत्यधिक प्रसिद्ध राक्षसों में भेद है। किसी भी योनि का व्यक्ति, तमोगुण के विशेष आश्रय से राक्षस हो सकता है, परन्तु 'रक्षस् नहीं हो सकता। क्योंकि रक्षस् एक स्वतन्त्र देवयोनि है, जो जन्मना होती है। यदि कहीं साहित्य में तमोगुणप्रधान व्यक्ति या कर्म के लिए 'रक्षस्' शब्द मिलता है तो वह गौण है। ज्ञातव्य है कि असुर 'पूर्वदेव' अर्थात् देवताओं के बड़े भाई कहलाते हैं। सुर (देवता), असुर (पूर्वदेवता) दोनों ही वैदिकी सृष्टिप्रक्रिया में प्रजापति के सन्तान हैं। दोनों बराबरी के हकदार हैं। परन्तु देवता अपने गुण, परिश्रम, बुद्धि और सन्मार्ग पर चलने से छोटे होते हुए भी आदरपात्र और पूज्य हाते हैं। यही कारण है कि उन्नति के पक्षपाती भारत में देवताओं की महिमा, अनुकरण और देवत्व-प्राप्ति की इच्छा अधिक विकसित हो गई। इस सिद्धान्त के आधार से यह तत्त्व निकलता है कि 'बर्बरीक' का शरीर रक्षस् नाम की देवयोनि में था। इसीलिए बर्बरीक जनमते ही युवा हो गये थे। यद्यपि रक्षस्योनि में तमोगुण की स्थिति रहती है, परन्तु पाण्डवों के रक्तसम्बन्ध से इनके पिता घटोत्कच और इनमें तमोगुण की अधिकता नहीं थी। बर्बरीक में भगवान् श्रीकृष्ण ने गुप्तक्षेत्र की सात्त्विक तपस्या द्वारा सत्त्वगुण बढ़ा दिया था। अब बर्बरीक

सत्त्वप्रधान होने के कारण सोम या अमृत पाने के पूर्ण अधिकारी थे। परन्तु वर्वरीकशरीर से देवभाग अमृत मिलने का अधिकार नहीं था, इसलिए भगवान् ने ब्रह्माजी के वचन को सत्य करने के लिए तथा अपने आदेश-पालक वीर को अमर बनाने के लिए उसका शिर उस शरीर से अलग कर दिया। तदनन्तर अपने भगवदैश्वर्य की महिमा बढ़ाने के लिए केवल शिर के अंश में ही देवतातत्त्व का सञ्चार और अमृतसिञ्चन कराया तथा वरदान से उन्हें अपना रूप दे दिया। इसलिए भगवान् श्रीश्यामदेव, जो हमारे पूज्य देवता हैं, वे वस्तुतः सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण के ही स्वरूप हैं। भगवान् ने कृपा करके वरदान द्वारा इनको अपना रूप दे दिया, जिसका निर्देश श्रीश्यामदेवकथा (अ० ५।६५, ७४-७५, ११०) तथा भारतसार के श्रीश्यामदेवेतिवृत्त (अ० २।१५) में स्पष्ट है। भगवान् श्रीकृष्ण का 'श्रीश्याम' यह नाम प्रेमी गोपिकाओं तथा अनन्य भगवद्भक्तों ने अपनाया है। वही भगवान् का प्रेमाधार नाम इनको प्राप्त हुआ है। श्यामजी के जितने स्तोत्र है उनमें श्यामजी की स्तुति श्रीकृष्णरूप से ही है। केवल स्कन्दपुराण का 'श्रीश्यामस्तव' ही एक ऐसा है, जिसमें वरदान के पूर्व-इतिहास का पूरा सङ्केत है। इसलिए श्रीश्यामजी की महिमा के हम दो भाग कर सकते हैं। प्रथमतः वरदान के पूर्व की महिमा और दूसरी वरदान के बाद की महिमा। वरदान के पूर्व की महिमा इनके पूर्वजन्मों का इतिहास है, क्योंकि वर्वरीक-शरीर—जो जन्मना देवयोनि में था—को पूर्णतया छोड़ने के बाद देवियों के प्रयत्न से पुनः पहले शरीर के एक मुख्य अंश में सत्त्वप्रधान देवता-तत्त्व प्रकट हुआ। और उस प्रगट देवतत्त्व को भगवान् श्रीकृष्ण ने वरदान के द्वारा इतना अधिक विकसित कर दिया कि उसमें भगवत्तत्त्व प्रतिष्ठित हो गया। भगवत्तत्त्व की अवस्था को प्राप्त यह देवतातत्त्व ही 'श्रीश्याम' नाम से प्रसिद्ध है। स्तोत्र, कथा और भजनों में इसी श्रीश्यामतत्त्व की महिमा का वर्णन होता है।

इससे यह स्पष्ट समझा जा सकता है कि हमारी श्रीश्यामजी की पूजा वस्तुतः परमतत्त्व के श्रीकृष्णरूपी प्रतीक की पूजा है। किसी अन्य तत्त्व या व्यक्ति की पूजा नहीं है।

वरदान के बाद की महिमा का वर्णन तो मानवशक्ति से परे है। क्योंकि भगवान् श्यामदेव के प्रत्येक भक्त को प्रतिदिन उनकी विलक्षण महिमा का कुछ अनुभव होता रहता है। उसका पूरा एक जगह सङ्कलन करना असम्भव है। यह तो यथासमय भक्तगोष्ठी में स्वयं ही सबके मुख से प्रकाशित होता रहता है।

शीर्षदान लेने का पौराणिक रहस्य

स्कन्दपुराण से ज्ञात होता है कि वर्वरीक ने भीमसेन को हरा दिया। परन्तु 'भीमसेन मेरे पिता के पिता है, इसलिए मेरे परम पूज्य हैं' यह जानने पर वर्वरीक का हृदय अकस्मात् परिवर्तित हो गया। वर्वरीक ने स्वयं समुद्र में गिरकर आत्मनाश करने का निश्चय कर लिया। क्योंकि वर्वरीक को इसका बहुत दुःख था कि उसने पूज्य पितामह पाण्डव भीमसेन को बड़ी निर्दयता से शत्रु की भांति पराजित किया है और उसको मार देने का भी विचार आया है। पितृभक्त और धार्मिक व्यक्ति के लिए इससे बढकर कोई दुःखद आत्मग्लानि की घटना नहीं हो सकती थी। वर्वरीक ने प्रतिज्ञा कर ली और घोषणा कर दी थी कि इस प्रतिज्ञा से उसे कोई विचलित न करे। वीर ने प्रतिज्ञा के द्वारा भगवान् के विभूतिस्वरूप महीसागर-संगम को अपना शरीर अपनी इच्छा से देना स्वीकार कर लिया। पर दयासागर भगवान् को इसप्रकार भक्त का शरीर लेकर उसकी इच्छा पूरी करना इसलिए नहीं उचित लगा कि इसमें भक्त की महिमा का विस्तार नहीं हो सकता था। एक सच्चा भक्त धर्म के आदर्श में अपनी प्राणहुति दे सकता है, तो क्या भक्तवत्सल धर्माधार भगवान् उसे अमर-यशस्वी बनाने में कमी रख सकते

हैं ? भगवान् ऐसे भक्तों के लिए तो अपने ऐश्वर्य को और अपने स्वरूप को भी भूल जाते हैं। उनकी मायाशक्ति ने प्रभाव किया और तत्काल ही देवी ने वर्वरीक को समझाया कि–प्रिय पुत्र ! तुम्हारी प्रतिज्ञा दृढ है। उससे कोई भी तुम्हें विचलित नहीं कर सकता। पर मेरा उस प्रतिज्ञा को पूरा करने में एक सुझाव है, जिस पर ध्यान देना आवश्यक है। परामर्श यह है कि पितृभक्ति के आदर्श में तुमने केवल अपने शरीर को छोड देने का निश्चय किया है, किन्तु इस समय दूसरा ही काण्ड होने जा रहा है। जिसप्रकार तुम्हें अपने पितामह भीमसेन की जानकारी करके अपने कर्तव्य पर पश्चात्ताप हो रहा है, उसी प्रकार भीमसेन को भी तुम्हें अपना पौत्र जानकर ममता-मोह हो रहा है। यदि इस समय तुम अपना शरीर छोड़ोगे तो तत्काल मोहवश भीमसेन भी तुम्हारे पीछे ही आत्मघात कर लेंगे। भीमसेन के आत्मघात कर लेने के बाद अन्य पाण्डवों की क्या स्थिति हो सकती है, यह बड़ा गम्भीर प्रश्न है। इसलिए प्रतिज्ञा समझदारी से पूर्ण करो। मेरा विचार है कि तुम कुछ समय की प्रतीक्षा करो। जल्दी ही वह समय आनेवाला है जिसमें इस जड महीसागर-संगम में नहीं अपितु वास्तविक मही और सागर के संगम में शरीर छोड देना तुम्हारे जैसे वीर के लिए शोभा की बात होगी। वर्वरीक ने परामर्श पर गम्भीरता से विचार किया और समझकर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने का प्रकार बदल दिया, तथा भक्त को प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने महाभारत युद्ध के प्रारम्भ में शीर्षदान ग्रहण कर उन्हें अपना स्वरूप दिया। इस कथा के अंश में यह मूल्यवान् तथ्य है। इस सारांश को ही मुख्यता देकर भारतसार की कथा में वर्णन किया गया है कि महाभारतयुद्ध के आरम्भ में अपने पिता, पाण्डवों को जिताने के लिए पृथ्वी के कोने-कोने से आये हुए वीरों (मही) और दयासागर भगवान् के सम्मेलन (सागर-संगम) के अवसर पर वीर वर्वरीक ने अपना शिर अपने आप दे दिया।

पूर्वोक्त तथ्य पर ध्यान देने से भारतसार और स्कन्दपुराण की कथा का जो कहीं-कहीं भेद दिखलाई पड़ता है वह समाप्त हो सकता है। क्योंकि दोनों की वर्णनशैली भिन्न है। स्कन्दपुराण बर्बरीक का विस्तृत इतिहास बताता है, और भारतसार वीर बर्बरीक के इतिहासगत सारांश को महिमा-रूप से कहता है। यह स्वाभाविक है कि एक ही विषय को एक व्यक्ति अनेक बार कहे, या अनेक व्यक्ति भिन्न-भिन्न कहें तो शब्दों में भेद तो होता ही है, वर्णनशैली में भी भेद हो जाता है। इसलिए दोनों कथाओं में भेद नहीं समझना चाहिये।

श्यामजो की कथा के सम्बन्ध में यह प्रश्न होना भी स्वाभाविक है कि ऐसे वीर भक्त को भगवान् ने युद्ध के पहिले पृथ्वी पर से क्यों उठा लिया। प्रश्न गंभीर होते हुए भी सरल है। भगवान् को पृथ्वी का भार उतारना था। यदि यह वीर रहता तो एक पक्ष के वीरों का भार पृथ्वी पर बना ही रहता। इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने सबसे पहले ऐसे वीर भक्त को उत्तमोत्तम सद्गति क्या, अपना रूप ही देकर अपना लिया और प्रेमी गोपिकाओं तथा अनन्य भक्तों का प्रेमाधार अपना 'श्याम' नाम देकर भक्त को अजर, अमर बना दिया।

जिसप्रकार कामाख्या आदि पचास शक्तिपीठों में देवता के विविध अवयवों के सम्बन्ध से तीर्थ में पूर्ण-देवता का सान्निध्य तथा आराधन शास्त्रोक्त तथा प्रत्यक्ष है, उसी प्रकार शीर्षदान के अनन्तर भगवान् श्रीश्यामदेव के पूर्ण स्वरूप की आराधना शास्त्रसम्मत तथा फलद है।

पूर्व-इतिहास की गौणता

श्रीश्यामदेव श्रीकृष्णस्वरूप मुक्त जीव हैं। इसलिए इनमें जाति या सृष्टि की योनि का कोई सम्बन्ध नहीं है। जीव की मुक्ति उसके किये हुए अपने कर्तव्यों से होती है। इसलिए जब तक वह भगवल्लीनतारूपी

एकत्व की मुक्ति प्राप्त नहीं करता तब तक उस जीव के पूर्वजन्म का इतिहास तथा एकत्व से अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की मुक्तियों में सुलभ भगवद्गुणानुबन्धी भक्तजनों से अनुभूत महिमा की चर्चा का विषय अवश्य रहता है। अतएव भक्तों के स्तुति-पदों में पूर्वजन्म की ऐतिहासिक चर्चा तथा भगवान् श्रीश्यामजी की प्राप्त कृपा की महिमा के वर्णन विभिन्न प्रकार से होते है। स्कन्दपुराण की श्रीश्यामदेवकथा में इनके दो पूर्वजन्मों का इतिवृत्त मिलता है। भारतसार में केवल एक जन्म का ही इतिहास है। पूर्वजन्म के इतिहास में माता-पिता के नामों का जो अन्तर है वह इसलिए अगणनीय है कि भक्ति के प्रवाह में कवि की वर्णना में भेद और आकस्मिक शब्दप्रयोग होना स्वाभाविक हैं। श्यामजी महाराज के गुणानुवाद में भी भक्तों के आकस्मिक शब्दप्रयोग से यह विविधता उत्पन्न हो गयी। भक्तजन अपने भक्ति के पदों में आराध्य देव के इतिहास को नहीं लिखते, किन्तु वे भगवान् के औदार्य, कृपा, वत्सलता में विभोर होकर अटपटी भाषा में भी अपने भाव प्रकट करते हैं। इसलिए भगवान् श्रीश्यामदेव के पूर्वजन्म के भक्तवर्णनों में नागकन्या अहिलवती माता हो या मुरु की पुत्री कामकटङ्कटा माता हो, कोई अन्तर नहीं पड़ता। वास्तविक तथ्य तो यह है कि प्रभु का पूर्वजन्म का इतिहास इसलिए नहीं गाया जाता कि वह एक तथ्य-वर्णन है, किन्तु इतिहास का स्मरण इसलिए होता है कि हम उनके चरित्र की विशुद्धता के आदर्श को लेकर अपने जीवन को निर्मल बनावें। श्रीश्यामजी की उपासना में उनके भगवद्गुणों का ध्यान करना चाहिये, न कि वे कौरवकुल की सन्तान हैं, घटोत्कच के पुत्र हैं या दानवकुल के दौहित्र हैं, इसका निरूपण करना चाहिए। क्योंकि अपना शीर्षदान देकर भगवत्स्वरूपता प्राप्त करके श्रीश्यामदेव दानव-मानव, रक्ष-यक्ष योनियों से निर्मुक्त हैं।

अतः हमें पूर्ववृत्त की उलझन को छोडकर भगवान् श्री श्यामदेव के नित्य निरतिशय, आनन्ददायी, मधुर, भावग्राह्य रूप पर विश्वास स्थिर करके आराधना करनी चाहिये। इसी में जीव का कल्याण है।

श्रीश्यामदेव की श्रीकृष्ण-स्वरूपता

सृष्टि के प्रमुख तीन देवताओं में भगवान् विष्णु के स्वरूप श्रीश्यामजी महाराज हैं। इसकारण इनकी स्तुति एवं भजन-पदावलियों में श्रीविष्णु के पूर्णावतार भगवान् श्रीकृष्ण के समस्त लीलागुणों का वर्णन किया जाता है। श्रीश्याम नाम भी श्रीकृष्ण का ही प्रसिद्ध है। श्यामजी श्रीकृष्ण के स्वरूप हैं किन्तु कायव्यूह के भेद से श्रीकृष्ण से भिन्न हैं। इसलिए इनके लीलावैभव का दिव्य धाम मथुरा, वृन्दावन, द्वारका नहीं है, किन्तु राजस्थान की पवित्र भूमि में खाटू-ग्राम है। अवतार में अवतारी का स्वयं लीलावैभव होता है, किन्तु स्वरूप में अवतारी के समस्त भगवद्गुणों के विकसित होने के साथ उसकी स्वतन्त्र सत्ता रहती है। यह सत्ता मूल अवतारी से भिन्न नहीं की जा सकती। अतएव स्वरूप—श्रीश्यामदेव की स्तुति अवतारी—श्रीकृष्ण के रूप से ही होती है। स्वतन्त्र सत्ता के कारण भगवान् श्रीश्यामदेव का भक्तों की उपासना में दिव्य मंगलमय भक्तानुग्रहकारी पृथक् रूप है, जिसमें नीले घोड़े पर प्रौढ अवस्था का दिव्य मोहक राजाओं के वेश-भूषा-गुणों से परिपूर्ण वीर विग्रह है। श्रीकृष्ण का स्वरूप होना सृष्टि की चौरासी लाख योनियों के आवागमन-चक्र से छुटकारा पाकर निग्रह-अनुग्रहशक्तिसम्पन्न शाश्वतमुक्ति का एक भेद है। जिसमें भगवद्-गुणों का पूर्ण सन्निधान रहता है। फिर भी वे अपनी पूजा में मूल रूप श्रीगोपीनाथजी का सान्निध्य रखते हैं।

हनुमान्जी का साहचर्य

श्रीश्यामजी महाराज के दर्शन—जात-जडूला के समय हनुमान्जी की भी पूजा की जाती है। दिव्यधाम खाटू के मन्दिर में भी सर्वप्रथम

हनुमान्‌जी का स्थान है। सामान्यविचार से श्रीकृष्ण और हनुमान्‌जी का कोई साहचर्य नहीं है। तथापि श्रीराम के एकनिष्ठ भक्त हनुमान् श्रीकृष्णावतार में अर्जुन के रथ पर ध्वजा में विद्यमान थे, उसीप्रकार श्रीकृष्णस्वरूप श्यामदेव के साथ उनका साहचर्य स्वाभाविक है। श्यामजी के साथ हनुमान् की ध्यान-पूजा क्यों होती है, इसका रहस्य यह भी है कि जिस ऐतिहासिक शरीर का शीर्षदान देकर भगवद्रूपता इन्होंने पायी उस शरीर के साथ वायुपुत्र भीम का सम्बन्ध था। भीम के रूप से मानवीय जीव का देवता के साथ पूजा-ध्यान नहीं हो सकता। देवता के साथ देवतारूप का ही योग रहता है। इसीकारण श्रीराम के साथ दशरथ आदि की मूर्ति तथा श्रीकृष्ण के साथ वसुदेव आदि की मूर्तियां पूजा में नहीं रहती हैं। जिस प्रकार वायु के पुत्र भीम हैं, उसी प्रकार वायु के पुत्र श्रीहनुमान्‌जी महाराज हैं। अर्थात् भीम और हनुमान्‌जी में मानव और देवता-रूप का अन्तर है। बल, उदारता, सत्यवाक्य आदि में दोनों की एकरूपता है। देवता के साथ दूसरे देवतत्त्व का ही साहचर्य रह सकता है। इसलिए श्यामजी के साथ वायुपुत्र श्रीहनुमान् देव का साथ रहता है। श्यामदेव ने हनुमान् जी का साथ इसलिए रखा है कि सर्वाधिक उन्नति होने पर भी सृष्टि की प्रक्रिया में प्रत्येक मानव को अपने माता-पिता, गुरु आदि अभिभावकों को कथमपि नहीं भूलना चाहिए।

भगवान् श्रीश्याम प्रभु के साथ हनुमान्‌जी की दयालुता का हम सेवकजन जीवन में कई बार अनुभव करते रहते हैं। वे हमारे कुलदेव और इष्टदेव हैं। इसलिये प्रत्येक कार्य में श्यामजी के साथ हनुमान्‌जी का स्मरण, पूजन, भजन सर्वथा लाभकारी है।

श्रीहनुमान्‌जी की आराधना

विश्व के सभी धर्मों में अलौकिकशक्तिसम्पन्न सजीव साकार सर्वविध-ज्ञानविज्ञानसम्पन्न विशुद्ध जीवतत्त्व की मान्यता है। भारतीय

हिन्दू धर्म में ऐसे दिव्य आत्मा को देवता कहा जाता है। देवता महाभाग्य अर्थात् भग की पूर्णता से सम्पन्न हैं[१]। संस्कृत वाङ्मय में ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान और वैराग्य इन छः तत्त्वों के समन्वित रूप को भग कहते हैं।[२] यही कारण है कि हम सृष्टि के सामान्य अपेक्षित ऐश्वर्यादि की प्राप्ति उनके परमस्रोत देवताओं से आराधना द्वारा करते हैं। विश्व के जीवों, उनमें भी मानवों की रुचि-प्रवृत्ति नानाविध है।[३] प्रवृति के अनुकूल उपदेश या आराधना का क्रम प्राप्त होता है, तो उसमें हमारा मन लगता है। कष्ट भी स्वभाव में परिणत रहता है, इससे इच्छा की पूर्ति शीघ्र सम्भव होती है। भारत के तत्त्वज्ञ महर्षियों ने इसीकारण एक परतत्त्व में अन्य देवतारूपों की नानाविध आराधना का अपने ग्रन्थों में वर्णन किया है[४]। युग के वातावरण, कुल के आचार-विचार तथा सङ्गति से भी रुचि प्रभावित रहती है। वर्तमान कलियुग की प्रकृति में चंचलता है। आचार-विचार मानवता की परिधि में ही सीमित नहीं है। रहन-सहन में दमन या उग्रता की अधिकता है। ऐसी स्थिति में देवता, हनुमान् जी की आराधना जनसाधारण में बहुतों के लिये अधिक आकर्षक, सरल एवं शीघ्रफलदायी है। क्यों कि भगवान् हनुमान् का प्रादुर्भाव चञ्चलता के मूर्तस्वरूप वानरयोनि में हुआ है तथा वे मानव, अमानव दोनों की परिधि में ही समान रूप से सम्मानित हैं। आवश्यक परिस्थिति के अनुसार दमन या उग्रता तो उनकी प्रसिद्ध ही है। यही कारण है कि आज दक्षिण

---

१. महाभाग्याद् देवतायाः (निरुक्त ७।४।८)।

२. ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चापि षण्णां भग इतीरणा ॥

३. रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम्, नृणाम् ॥
शिवमहिम्नः स्तोत्र

४. एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति (ऋग्वेद १।१६४।४६)।

और उत्तर भारत में समान रूप से वैष्णव, शैव आदि विभिन्न उपासक भी हनुमान्‌जी के प्रति श्रद्धावनत रहते है। भगवान् हनुमान्, श्रीरामचन्द्रजी के दूत, सखा या दास होने के कारण वैष्णव परिवार में प्रसिद्ध हैं।❀ साथ ही रुद्रावतार होने से शैव परिवार में भी प्रमुख हैं। इनकी उपासना सरल से सरल एवं कठिन भी है। भक्त की सात्त्विक इच्छा, भावना, ध्यान की स्थिति में इनकी आराधना सरल है, तो राजस, तामस इच्छा, भावना-ध्यान की स्थिति में इनकी उपासना भयंकर या कठोर भी है। उक्त गुणों के द्वारा उपासना की समन्वित दृष्टि से श्रीहनुमान्‌जी विष्णु की भाँति शान्त एवं रुद्र की भाँति क्रूर न होने से एकांगी नहीं हैं। एक ओर यह महामूर्ति वरदमुद्रा में सात्त्विकों को अभयदान देती है तो दूसरी ओर इच्छा की उग्रता में भक्तों को भयंकर विपत्तियों को दूर करने के गदाधृत मुद्रा में वरदान देती है।

हनुमान् नाम का कारण

भक्तवत्सल भगवान् हनुमान्‌जी का नाम सार्थक है। संस्कृतभाषा में ओष्ठ के नीचे मुखसम्बन्धित उभरे हुए बाहरी भाग को हनु (ठुड्डी) कहते हैं। 'मान्' यह पद मतुप् प्रत्यय का है। 'मतुप्' अपने पूर्ववर्ती शब्द से प्रतिपादित पदार्थ की दृढ़ता अर्थात् अन्य सशक्त प्राणियों की तुलना में दृढ स्थिति बताने के अर्थ में आता है। इनका हनु दृढ़ था, अतः हनु होने के कारण हनुवाले हैं, इसीलिये हनुमान् हैं। हनु और हनू दोनों शुद्ध तथा एकार्थक शब्द हैं। अतः हनुमान् या हनूमान् दोनों ही शास्त्रसम्मत नाम है।

इस नाम की प्रसिद्धि के मूल में एक कथा है कि इनके द्वारा बचपन में सूर्य को निगल जाने का प्रयास करने पर इन्द्र ने अपना वज्र इनकी हनु पर मारा। परन्तु महामूर्ति हनुमान् के ऊपर वज्र का कोई प्रभाव नहीं रहा। इस विनाशक्षम शस्त्र के प्रतिपक्ष में भी इनकी हनु बनी रही इसलिये ये हनुमान् नाम से प्रसिद्ध हुए।

❀ तुम मम प्रिय भरतहि सम भाई (हनुमान् चालीसा)।

हनुमान्‌जी की जाति

भगवान् हनुमान् वानरजाति के हैं, यह इतिहासपुराण-प्रसिद्ध तथ्य है। पर यह वानरजाति सम्प्रति हमलोगों के सामने दृश्य वानरजाति से सर्वथा भिन्न है। वर्तमान और उस वानरजाति में आकाश-पाताल का अन्तर है। हनुमान्, सुग्रीव आदि जिस वानरजाति के थे वह जाति किम्पुरुष या किन्नर नामक देवयोनि का उपभेद है*। देवयोनियों की गणना संस्कृत-साहित्य के लोकप्रसिद्ध ग्रन्थ अमरकोष में इस प्रकार है—

विद्याधरोऽप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः ।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ॥

अर्थात् १. विद्याधर २. अप्सरस् ३. यक्ष ४. रक्षस् ५. गन्धर्व ६ किन्नर ७. पिशाच ८. गुह्यक और ९. सिद्ध ये नौ देवयोनियाँ हैं। किन्नर और किम्पुरुष पर्यायवाची शब्द हैं। इनमें आदि की आठ देवयोनियों की यह विशेषता है कि वे गर्भ से प्रकट होते ही युवावस्था प्राप्त कर लेती हैं❀। महावीर हनुमान्‌जी किन्नर या किम्पुरुष देवयोनि में जन्म लेने के कारण जन्म होते ही युवावस्था को प्राप्त हो गये थे, और क्षुधा की प्रवलता से सूर्य को फल समझकर इन्होंने निगलने का प्रयास किया। यह सामान्य वानरजाति में सर्वथा असम्भव है। अतः महाबली हनुमान्‌जी जन्मसिद्ध देवता हैं।

हनुमान्‌जी का प्रादुर्भाव

केसरी नामक एक भाग्यशाली वानर था। इसके अञ्जना नाम की पतिव्रता पत्नी थी। सन्तान की इच्छा से इसने रुद्र भगवान् की आराधना की। आशुतोष शिव ने नियमित कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर इसको

---

* किम्पुरुषाणां हनुमान् (भा० ११।१६।२९)

❀ अष्टानां देवयोनीनां यतो जन्म च यौवनम्, सद्यः (स्कन्दपुराण माहेश्वरखण्ड)

प्रार्थना को सफल बनाते हुए अपनी एकादश मूर्तियों में से एक मूर्ति को उसके पुत्ररूप से अवतरित होने का वरदान दिया। इसी समय एक चक्रवर्ती राजा पुत्रेष्टि यज्ञ कर रहा था। उसमें जो यज्ञ का चरु बना था उसका रानी द्वारा खानेयोग्य भाग वह अपनी रानी को दे रहा था कि संयोगवश ऐसा झंझावात चला कि उसके हाथ का यज्ञशेष चरुपिण्ड उड़ गया।

उस समय अञ्जना माता अपने आश्रम में बैठी थी। वायु के प्रवाह से अञ्जना माता के मुख से यह गर्भदाता यज्ञशेष चरुपिण्ड टकराया। माता अञ्जना ने इसे अमोघ मन्त्रपूत यज्ञभाग जानकर खा लिया। इससे गर्भ रहा और भगवान् श्रीहनुमान् जी के रूप में रुद्रदेवता पृथ्वीतल पर अवतरित हुए। इसके कारण श्रीहनुमान्जी महाराज को वायुपुत्र, आञ्जनेय और केसरीनन्दन कहा जाता है।

भगवान् रुद्र आशुतोष भी हैं। अतः स्वच्छ सरल भावना से श्री हनुमान्जी महाराज का भजन, स्मरण, चिन्तन किया जाता है तो व्यक्ति का निश्चित कल्याण होता है।

कलियुग में श्रीश्याम-स्वरूप का लीलाधाम

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भगवान् श्रीश्यामदेव के विविध वर्णन लीलानरतनु योगेश्वर नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र की महिमा है। योगसामर्थ्य से एक व्यक्ति एक समय में अनेकविध स्वरूप प्रकट करके विभिन्न कार्यों को करता है। इस नानारूपव्यवस्था को कायव्यूह कहते हैं। नटवरनागर वासुदेव घनश्याम की कायव्यूह में भी विशेषता है कि कभी उनका कायव्यूह स्पष्ट रहता है तो कभी कायव्यूह अचिन्त्य और अज्ञेय रहता है। जिस समय ब्रह्माजी ने समस्त ग्वाल-बालों को अपने ब्रह्मलोक में दीर्घ निद्रा में निमग्न किया था उस समय यशोदानन्दन का व्रजभूमि में स्पष्ट कायव्यूह था। महाभारत के समय दुर्योधन की सभा में श्रीकृष्णचन्द्र को विराट्रूप

की झलक थी, तो अर्जुन को गीतोपदेश को हृदयङ्गम कराने के लिए स्पष्ट विकराल बिराट् रूप था। देवकी-वसुदेव को जन्म-समय में, अर्जुन को गीता-उपदेश के समय तथा काशीपति पौण्ड्रक राजा के लिए सर्वदा भगवान् श्रीकृष्ण चतुर्भुज थे। परन्तु ब्रजवासियों को रिझाने, रणयोद्धाओं को बल देने, द्वारकानिवासियों का आप्यायित करने के लिए द्विभुज रूप था। यह सब काव्यव्यूह की लीला एकात्मक और अद्भुत थी।

कभी प्रभु बहुरूप में रहते हैं तो कभी अनेकात्मक भो हो जाते हैं। नर-नारायण के भाव से अर्जुन-श्रीकृष्ण, भक्त-भगवान् के भाव से वर्बरीक-श्रीकृष्ण, चतुर्व्यूह के विधान से प्रद्युम्न-संकर्षण-वासुदेव-अनिरुद्ध, बन जाते हैं, जिनका ऐतिहासिक स्वतन्त्र अस्तित्व है तथा इनके साथ सर्वेश्वर नारायण की एकता है। भक्तों की अभिलाषा पूर्ण करने के लिये श्रीकृष्ण घनश्याम ने अपने को श्याम बना लिया तथा भारत के अन्य भू-प्रदेशों को त्यागकर ढुंढार (राजस्थान) की नोरस भूमि का अपना कर दिव्यधाम बना दिया।

ढुण्ढार क्षेत्र का महत्त्व

भारत की वीरप्रसविनी राजस्थान भूमि में ढुंढार नाम से कुछ भूभाग प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। ढुंढार क्षेत्र का वर्णन अभी पुराणों में स्पष्ट रूप से नहीं मिल पाया है। पर महाभारत में धुरन्धर देश (भीष्मपर्व ९।४१) तथा ब्रह्मपुराण में धुन्धुमार देश (अ० ७।६०-८८ श्लो०) के नामों से ढुण्ढार का उल्लेख है। इस नाम पर ध्यानपूर्वक दृष्टि देने से और पौराणिक कथाओं के समन्वय से यह ज्ञात होता है कि ढुंढा नाम की एक अद्भुत चमत्कारी राक्षसी थी। वह किसो भी अपने विरोधी व्यक्ति को गोद में लेकर उसे दृढ़ता से पकड़ कर जलती हुई आग में कूद जाती थी या बैठकर चारों आर लकड़ी लगवा कर आग लगवा देती थी। जिस व्यक्ति को वह पकड़े रहती थी वह कितना भी बलवान हो भाग नहीं सकता था और चारों ओर की आग की लपटों में झुलझकर

मर जाता था, भस्म हो जाता था। परन्तु वह राक्षसी भीषण आग की लपटों में भी विचलित नहीं होती थी और उसे अग्नि का ताप किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचाता था। यह ढुण्ढा राक्षसी हिरण्यकशिपु के दरबार की सदस्या थी। हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्र भगवद्भक्त प्रह्लाद को भगवत्स्मरण से छुड़ाने के लिए जितने समझ में आए छोटे से छोटे और बड़े से बड़े उपाय कर लिए। परन्तु भक्त की भगवत्स्मरण की प्रवृत्ति को किसी प्रकार रोका नहीं जा सका। भक्त प्रह्लाद को मारने के लिए जाने-सुने सभी उपाय व्यर्थ हुए। तब ढुण्ढा राक्षसी ने प्रह्लाद को जलाने के लिए अपने चमत्कार का वर्णन किया। हिरण्यकशिपु भक्त प्रह्लाद को जीवित नहीं देखना चाहता था इसलिए इन्हें ढुण्ढा को दिया गया। ढुण्ढा ने अपने विश्वस्त चमत्कार का प्रयोग किया। परन्तु फल विपरीत निकला। अर्थात् चमत्कार के अनुसार जहाँ गोद में लिये हुए व्यक्ति को भस्म हो जाना चाहिए था, वहाँ ढुण्ढा राक्षसी भस्म हो गई और भक्त प्रह्लाद का बाल भी बाँका नहीं हुआ। जिस स्थान में ढुण्ढा राक्षसी ने आत्मविश्वास के साथ अपने चमत्कार के द्वारा भक्त प्रह्लाद को भस्म करना चाहा था, वह क्षेत्र ढुण्ढार नाम से प्रसिद्ध हुआ पर भक्त की सन्निधि से मुक्त होकर उसने अपना नाम अजर-अमर कर लिया। इस विचित्र काण्ड में ढुण्ढा की मुक्ति हो गयी। भक्त प्रह्लाद ढुण्ढा के नाश कर देने के कारण 'ढुण्ढारि' कहलाये। अत एव यह ढुण्ढार प्रदेश वही है—जहाँ भक्त प्रह्लाद ने ढुण्ढा को मुक्त किया तथा भगवान् और भगवद्भक्त की गरिमा की विजयपताका फहराई। यही कारण है कि आज भी ढुण्ढार के समीपवर्ती राजस्थान के सभी क्षेत्र होलिकादहन को महत्त्व देते हैं और ढुण्ढा का भी स्मरण करते हैं।

उक्त इतिहास को सर्वथा काल्पनिक या असत्य नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि एक तो—पुराणों में भी भक्त प्रह्लाद की इस प्रकार की

महिमा वर्तमान है। दूसरे—इस स्थान का ढुण्ढार नाम भी इसकी पुष्टि करता है। तीसरे—ढुण्ढार के लिए कुछ ऐसी लोकोक्तियाँ भी प्रसिद्ध हैं जो उक्त इतिहास को बल देती हैं। यद्यपि कुछ लोग परिहासवश लोकोक्तियों के अर्थ को अन्यथा रूप में परिणत करते हैं, परन्तु वस्तुतः उसके वास्तविक अर्थ की गंभीरता में जाने पर देश का इतिहास झलकता है। उन लोकोक्तियों में मुख्य उक्तियाँ दो हैं—

१. धन्य ढुण्ढारा देश है खाटू नगर सुथान।
अनुपम छवि श्रीश्याम की दर्शन ते कल्याण।
२. आया ढंढारा .... खाटू खंडेला रींगस का।

पहली लोकोक्ति में तो स्पष्ट ही ढुण्ढार और खाटू की महिमा का वर्णन है।

दूसरी लोकोक्ति में उस समय का वर्णन है जब ढुण्ढा भस्म हो गई और भक्त प्रह्लाद के शरीर पर अग्नि का प्रभाव बिलकुल नहीं पड़ा। वे मातृगर्भजात बालक की भाँति नग्न परमहंस की स्थिति में सबके सामने दिखाई पड़े थे। जिसप्रकार भागवत के अनुसार 'पूतना' मृत्यु के बाद अपने शरीर के आकार में तीन गव्यूति (६ कोस) की दिखाई पड़ी थी, उसी भाँति यह ढुण्ढा भी मृत्यु पाकर आकार में 'खाटू खंडेला रींगस' तीन प्रसिद्ध गाँवों तक फैल गई। इसलिए प्रह्लादजी के सम्बन्ध में इस लोकोक्ति में कहा गया है कि—खाटू, खण्डेला, रींगस इन स्थानों की मध्य-भूमि में अग्नि की प्रचण्ड ज्वालाओं में निःशङ्क विहार करने वाले 'ढुण्ढारि'= प्रह्लाद 'उघाडा' अर्थात् माता के गर्भ से उत्पन्न वस्त्रहीन परमहंस बालक की भाँति भगवत्कृपा से हम सबके सामने आये हैं।

ढुण्ढार देश के लिये अन्य भी कई लोकोक्तियाँ हैं, जिसमें अनेक उक्तियों में ढुण्ढा की जीवित दशा का, कुछ में मृत्यु के बाद की दशा का वर्णन है। यहाँ तो इतना कहना ही उचित होगा कि 'ढुण्ढार देश' ढुण्ढा के उद्धारक

भक्त प्रह्लाद को महिमा का क्षेत्र या प्रतीक है। यह प्रदेश उसीप्रकार का है, जिसप्रकार पूतना का मृत्युक्षेत्र ब्रजमण्डल पवित्र और आदरणीय है। आज तो भक्त प्रह्लाद की गरिमा का यह पुण्यक्षेत्र भगवान् श्रीश्यामजी महाराज के कारण और भी महत्त्व रखता है। वृद्ध अनुभवी इतिहासज्ञों का कहना है कि ढुण्ढारिदेश की पवित्रता और महिमा का तो कहना ही क्या है, भगवान् श्रीश्यामजी महाराज के नाम से प्रसिद्ध राजस्थान की 'श्याम पांडिया को भूमि' अर्थात् श्रीश्याम-पाण्डव की भूमि भी अपनी विशेषता रखती है। इस भूमि का विस्तार प्रायः सम्पूर्ण राजस्थान है।

ढुण्ढारशब्द का मूल रूप हम ढुण्ढारि समझते हैं तो इस लोकोक्ति में बहुत हो तथ्य स्पष्ट होता है। क्योंकि संस्कृतभाषा में अरि शब्द का अर्थ नाशक या शत्रु होता है। ढुण्ढा का अरि अर्थात् ढुण्ढा राक्षसी के विरोधी भक्त प्रह्लाद कहे जा सकते हैं, क्योंकि भक्त प्रह्लाद को भस्म करने की क्रिया में वह स्वयं भस्म हो गई। इसलिए राक्षससमुदाय की दृष्टि में भक्त प्रह्लाद ढुण्ढारि के नाम से सार्थक कहे जा सके। भक्त प्रह्लाद ने जिस भूभाग में भगवत्-चिन्तन का यह फल प्रत्यक्ष जनसाधारण के सामने प्रदर्शित किया वह एक पुण्यक्षेत्र के रूप में आज भी माना जाता है। यही कारण है कि ढुंढार एवं उसके आस-पास की भूमि में ही राजस्थान के मूलनिवासी परिवारों के कुलदेव और कुलदेवियों के मन्दिर बड़ी संख्या में वर्तमान हैं।

यद्यपि आज हरियाणा और पंजाब प्रान्त राजस्थान से अलग हैं, पर ऐसा प्रतीत होता है कि किसी समय में हरियाणा और पंजाब के राजस्थान की सीमा से सटे हुए कई क्षेत्र राजस्थान की ही परिधि में थे। क्योंकि राजस्थान के समीपवर्ती क्षेत्र के उक्त दोनों राज्यों के निवासियों में भाषा-भेद रहते हुए भी खान-पान, वेष-भूषा की मूलतः

एकता ज्ञात होती है। तथा ब्राह्मणों में गौडजाति तथा वैश्यों में अग्रवाल वैश्यों का एक बडा समूह इन तीनों राज्यों के बहुत बड़े क्षेत्र में है। गौड ब्राह्मण तथा अग्रवाल वैश्य राजस्थान या हरियाणा को ही अपना मूलस्थान मानते हैं। सूर्य और चन्द्रवंशी क्षत्रिय राजाओं के वंश भी इसी भूभाग में विशेष उपलब्ध होते हैं और सक्रिय माने गये हैं। इसलिए उक्त क्षेत्र के ब्राह्मणों और वैश्यों में भगवान् श्रीश्यामदेव को कुलदेवरूप से माननेवाले परिवार अत्यधिक संख्या में वर्तमान हैं।

श्यामदेव का पुण्यक्षेत्र खाटूधाम

ढुण्ढार भूभाग के अन्तर्गत खाटूनामक ग्राम में भगवान् श्रीश्यामदेव का प्रधान मन्दिर है। भक्तों की शरणागति के जयनाद में 'खट्वानगरी की जय' यह पाठ मिलता है। अतः इस स्थान का प्राचीन नाम 'खट्वानगरी' ज्ञात होता है। इसके प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में अभी विशेष विवरण उपलब्ध नहीं हुआ है। पारम्परिक जनश्रुति है कि खट्वाङ्ग राजा द्वारा यह नगरी स्थापित की गयी थी। इसका पौराणिक विवरण भी ज्ञातव्य है। तथापि यह तो अवश्य ही सत्य है कि खाटूधाम एक महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिसके कारण श्रीश्यामदेव भगवान् ने इसको अपनाया है।

श्रीश्यामकुण्ड से विग्रह की प्राप्ति

भक्तराज प्रह्लाद के द्वारा संसेवित ढुण्ढारिक्षेत्र के 'खाटू' स्थान को भगवान् ने विशेष रूप से भक्तों की कामना पूर्ण करने के लिये अपना लिया तथा कलियुग में नारायण के पूर्णावतार श्रीकृष्ण की शालग्राम-मूर्ति के रूप में श्रीश्याम जी का खाटू में समागमन हुआ।

स्थानीय जनों में किंवदन्ती सुनी जाती है कि—जहाँ इससमय श्यामकुण्ड है उस स्थान पर खण्डेले के राजा की गौ नित्य आती थी। वहाँ आनेपर उसके स्तनों से अपनेआप दूध निकलता था। इस दैनिक

कर्तव्य को देखकर ग्वाले आदि बड़े आश्चर्यचकित थे। एक दिन ग्वालों ने मिलकर खण्डेले के राजा से निवेदन किया। राजा ने दूसरेदिन स्वयं इस अद्‌भुत एवं आश्चर्यजनक कार्य को देखने के लिए निश्चय किया। यह सिद्ध तथ्य है कि कोई भी लोककल्याणकारक कार्य किसी उद्भट भक्त या व्यक्ति के द्वारा ही शोभा प्राप्त करता है। इसकारण उसी रात में राजा को स्वप्न हुआ कि—'राजन्! जहाँ गौ का नित्यप्रति दूध अपनेआप गिरता है, वहाँ मैं अन्तर्हित हूँ। तुम मेरे शालग्रामशिलारूपी विग्रह को वहाँ से निकालकर शास्त्रानुसार इसीस्थान के पास प्रतिष्ठापित कर दो।' राजा प्रातः काल उठकर अपने पूर्वदिन के निश्चयानुसार बहुत से विद्वानों के साथ वहाँ उपस्थित हुआ। वहाँ गौ के अपने आप दूध देने का आश्चर्य देखकर स्वप्न के आदेशानुसार शास्त्रोयविधि से भूमिपूजनादि करके खोदना प्रारम्भ किया। खोदने पर 'श्रीश्याम' का विग्रह (शालग्राम-शिलारूप) उपलब्ध हुआ। राजा ने शास्त्रनियमानुसार उसकी प्रतिष्ठा कराई। और वर्तमान में भगवान् श्रीश्यामदेव का वह प्रधान मन्दिर खाटू में है। जहाँ मूर्ति उपलब्ध हुई थी, वहाँ पानी भर आया। वह स्थान 'श्रीश्यामकुण्ड' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस किंवदन्ती की तथ्यता में खाटू के राजकुण्ड के तटवर्ती प्राचीन खण्डेले के महलों से तथा खाटू को खण्डेले के साथ—'खाटू खण्डेला' प्रसिद्धि से बहुत सहायता मिलती है।

श्रीश्यामकुण्ड खाटू का तीर्थ जलाशय है*। यहाँ स्नान करने से बहुत पुण्य मिलता है। इसी कुण्ड से श्रीश्यामदेव का आविर्भाव

* यात्रियों को श्रीश्यामदेवकथा अ० ४ श्लोक २४ स्मरण रखना चाहिए—

मलं मूत्रं पुरीषं च श्लेष्मनिष्ठीवनाश्रु च।
गण्डूषांश्चैव मुञ्चन्ति ये ते ब्रह्महणैः समाः॥

जो जलाशयों में कपड़ा या शरीर आदि का मैल, मूत्र, बिष्ठा, कफ, थूक, आँसू, कुल्ला आदि छोड़ते हैं वे ब्रह्मघाती के समान हैं।

हुआ हैं । इसमें जल भूमि से ही निकलता है। इसकी गहराई एक पुरुष से अधिक हैं। पुराने कुण्ड की सीढ़ियाँ प्राचीन हैं, इसलिए कुछ ऊँची-नीची हैं। कुण्ड के परिसर में प्रवेश करते ही सामने एक हनुमान् जी (बालाजी) का स्थान है। हनुमान् जी के पीछे तथा कुण्ड के नैर्ऋत्य कोण में पीपल के वृक्ष हैं। परिसर में प्रवेश करने पर बायें हाथ में श्रीविष्णु भगवान् तथा गायत्री जी का मन्दिर है। दाहिने हाथ में एक महादेव जी का मन्दिर है। श्रीश्यामकुण्ड का जीर्णोद्धार करके बगल में नया कुण्ड बनाया गया है।

राजकुण्ड गांव से पूर्व की ओर है। इस कुण्ड का निर्माण खण्डेले के प्राचीननरेशों ने किया था। अतः इसकी प्रसिद्धि 'राजकुण्ड' के नाम से हुई है। इस कुण्ड के ऊपर खण्डेलेवालों का महल भी है।

श्रीश्याम-मन्दिर

खाटू ग्राम के बाजार से दक्षिण की ओर एक रास्ता है। यह गाँव के मध्य से दक्षिणी सीमा के बाहर निकलता है। इस रास्ते से पश्चिम मार्गपर १०० मीटर लगभग आगे श्रीश्याममन्दिर है। मन्दिर के बाहर अग्निकोण में 'श्यामकुई' (कूप) है। इसके पूर्व की ओर पं० श्रीश्यामलाल जी मिश्र का नोहरा (बाड़ा) है। मन्दिर के आगेके भाग में पत्थर की फर्श का चौड़ा चबूतरा है। चबूतरे के उत्तरी भाग में एक तिबारी बनी हुई है, जिसके पूर्व की ओर हनुमान् जी का मन्दिर है। इनका दर्शन श्रीश्यामदर्शन के बाद में किया जाता है। चबूतरे के पश्चिम से मन्दिर* में जाने के लिए मकराने के पत्थर की सीढ़ियाँ हैं। सीढ़ियों के दक्षिण दिशा में नौबतखाना (नगारखाना) है तथा उत्तर की ओर चौघरा है, जिसमें मुण्डन के बाल उतारे जाते हैं। सीढियों

---

* मन्दिर के अग्रमण्डप में प्रवेश करते समय दाहिने हाथ की ओर के शिलालेख से यह मालूम होता है कि मन्दिर का यह रूप सं० १७७७ में बनाया गया है।

के पूरे होजाने पर प्रधानमन्दिर (दूसरी मंजिल) में प्रवेश का दरवाजा है। इसके पीतल के किवाड़ लगे हुये हैं। दरवाजे के बाहर दो गोखे बने हैं। दरवाजे में प्रवेश करने पर खुली जमीन है। उसके पश्चिम में अग्रमण्डप (=जगमोहन) है। जिसके ऊपरी भाग (=पाटन) में चित्र हैं। मध्य का पाटन गोलाई से बना हुआ है।

अग्रमण्डप के पश्चिम की ओर प्रधानमण्डप (गर्भमण्डप) को विशाल देहली है। भेट भो इसो देहली पर चढ़ाई जाती है। प्रधानमण्डप के द्वार के विशाल तथा सुन्दर चित्रमय चाँदी के कपाट हैं। दर्शनार्थी इस द्वार के बाहर से ही दर्शन कर सकते हैं। गर्भगृह में पश्चिम को ओर श्रीश्यामजी का बहुत विस्तृत चाँदो का सिंहासन है। जिसके ऊपर श्रीश्यामजी महाराज विराजते हैं। सिंहासन के तोन दरवाजे हैं, इनमें बीचवाले में पूर्वाभिमुख मूर्ति विराजमान है।

मन्दिरदर्शन का महत्त्व

देवमन्दिर का भो दर्शन भक्तों के लिये फलप्रद होता है, क्योंकि शास्त्रों में मन्दिर को प्रतिष्ठापित देवता का स्वरूप माना गया है❀। देवतारूप में

❀ देवायतनस्य देवरूपत्वम्—

पादो पादशिलास्तस्य जंघा पादोर्ध्वमुच्यते।
गर्भश्चैवोदरं ज्ञेयं कटिश्च कटिमेखला॥

स्तम्भाश्च बाहवो ज्ञेया घण्टा जिह्वा प्रकीर्तिता।
दोप: प्राणोऽस्य विज्ञेयो ह्यपानो जलनिर्गमः।

ब्रह्मस्थानं यदेतच्च तन्नाभिः परिकीर्तितः।
हृत्पद्म पिण्डिका ज्ञेया प्रतिमा पुरुषः स्मृतः॥

पादचारस्त्वहङ्कारो ज्योतिस्तच्चक्षुरुच्यते।
तदूर्ध्वं प्रकृतिस्तस्य प्रतिमात्मा स्मृतो बुधैः॥

मन्दिर की पादशिला को पैर, गर्भगृह को उदर, स्तम्भों को हाथ, घण्टा को जीभ, दीपक को प्राण, प्रतिमा को पुरुष, खिडकियों को कान, कलश को सिर, शिलाओं को अस्थियाँ तथा ध्वज को केश आदि शरीराङ्ग मानकर दर्शन-अर्चन किया जाता है॥। अतः शिखरदर्शन से भी देवता के दर्शन का फल बताया गया है। देवायतन को देवता का रूप मानने के कारण ही मन्दिर के मार्जन-प्रोञ्छन (झाडूलगाकर सफाई करना तथा पोंछना) आदि का विशेष फल होता है। खाटू के श्रीश्याममन्दिर में झाडू लगाकर सेवा करने की परम्परा रही है तथा अनेक भक्तों ने इससे अभीष्ट फल प्राप्त किया है।

श्रीश्याममूर्ति

खाटूधाम में श्रीश्याम-विग्रह में केवल मस्तकमात्र का शृङ्गार होता है। मूर्ति के विग्रह के नीचे चन्दन का शरीर है, जो पोशाक से ढका हुआ रहता है। पोशाक १ मीटर चौड़ी होती है। लम्बाई ९ हाथ से अधिक इच्छानुसार हो सकती है। चन्दनशरीर के ऊपर शालग्राम-शिला का विग्रह है। शालग्राम-शिला के देवविग्रह बहुत कम मिलते हैं, उनमें भी यह अपनी विशिष्टता का

※जलकुम्भादधोद्वारं तस्य प्रजननं स्मृतम्।
शुकनासा भवेन्नासा गवाक्षः कर्ण उच्यते॥
कपोतपालीः स्कन्धोऽस्य ग्रीवा चामलसारिका।
कलशस्तु शिरो ज्ञेयं मज्जादिप्रदसंहितम्॥
मेदश्चैव सुधां विद्यात्प्रलेपो मांसमुच्यते।
अस्थीनि च शिलास्तस्य स्नायुः कीलादयः स्मृताः॥
चक्षुषी शिखरास्तस्य ध्वजाः केशाः प्रकीर्तिताः।
एवं पुरुषरूपं तं ध्यात्वा च मनसा सुधीः॥
प्रासादं पूजयेत् पश्चाद्गन्धध्वजादिभिः शुभैः।
(प्रतिष्ठामयूख पृ० २५)

अद्वितीय है। इस शालग्रामशिला में नेत्र-नासिकादि सब अङ्ग स्पष्ट हो जाते हैं। नीचे की तरफ मूँछ के रूप में काली शालग्रामशिला दिखाई देती है। मूँछ का ऊपरी भाग केशर-चन्दन से लिप्त रहता है, तो भी नासिकादि सब अङ्ग स्पष्ट दिखाई देते हैं। कानों में कुण्डल सुशोभित हैं। आँखें रत्न की कान्ति से चमत्कृत हैं। मूर्ति की दृष्टि उच्चगामिनी है, शिर पर सुन्दर मुकुट है। ऊपर सोने-चाँदी के रत्नजटित छत्र लगे रहते हैं। देखने से मूर्ति को प्रौढ़ अवस्था मालूम होती है। यह मूर्ति मनुष्य के शिर के तुल्य विशाल है। इस मूर्ति की कान्ति अप्रतिम है।

मन्दिर के चारों ओर खुली हुई चौड़ी परिक्रमा है। इसके दोनों ओर दालान बने हुए हैं। उत्तर की ओर परिक्रमा करते हुए दाहिनेहाथ में मन्दिर से मिली हुई एक टंकी (पादोदकी, छोटी पावड़ी) है। जिसमें बाबा के कार्य में आया हुआ जल रहता है। पाँवडी से पूर्व की ओर मन्दिर से लगा हुआ एक छोटा शिवमन्दिर है। ईशानकोण में एक तुलसी-स्थान है। पूर्व को ओर प्रवेशद्वार है। प्रवेशद्वार से दक्षिण एक छोटा मन्दिर है, जिसमें श्रीगोपीनाथ जी विराजमान हैं।

मन्दिर के तीसरी मंजिल में पूर्व की ओर दरवाजे के ऊपर शिखरदार तिबारे बने हुए हैं। मन्दिर का शिखर पर्याप्त ऊँचा है। शिखर पर ध्वजाएँ फहराती रहती हैं। पूरा मन्दिर मकराने के सफेद पत्थरों से बना हुआ है। जमीन में संगमरमर की काली-सफेद फर्श बिछी हुई है। मन्दिर में प्रवेश करते ही मन विकसित हो जाता है।

श्रीश्यामदेव के विग्रह

भक्तों की भावना भगवान् के रूप को उनकी इच्छा के अनुरूप बनाने में समर्थ हैं, क्योंकि भगवान् भक्तवत्सल या भक्तपराधीन के रूप में प्रसिद्ध हैं। अनन्तरूप होते हुए भी भगवान् श्रीश्यामदेव के जो प्राचीन मन्दिर

अथवा स्थान उपलब्ध हुए हैं, उनको देखने से तथा भक्तों की भजनरचना में भावों की अभिव्यक्ति से भगवान् श्रीश्यामदेव के निम्नलिखित रूप ध्यानयोग्य होते हैं—

१. वीररूप—बहुत से स्थानों में तथा भक्तों के भजनों में वीर-रूप की झाँकी मिलती है। इस रूप के विग्रह में भगवान् श्रीश्यामदेव हृष्टपुष्ट वीर सेनापति के प्रभाव को धारण किये हुए है। अपने दोनों हाथों में भाला तथा धनुष-बाण धारण किये हुए हैं तथा अश्व पर सवार हैं। घोड़े का रंग नीला है। इस वीररूप का दर्शन श्यामजी के अनेक स्थानों पर मिलता है। भक्तजन भी इस रूप की महिमा को गाते हैं।

२. प्रौढरूप—सम्भवतः इस रूप का पूर्ण विग्रह किसी स्थान में उपलब्ध नहीं है। परन्तु कई मन्दिरों में, विशेषतः खाटूधाम में जो भगवान् के मुखारविन्द के दर्शन होते हैं, उसमें प्रौढरूप की मनोमोहिनी आभा भक्त के हृदय में प्रविष्ट होकर बलात् श्यामबाबा के नाम से मुख से निकल पड़ती हैं। इस प्रौढरूप में शरणागतवात्सल्य का अनुभव सभी भक्तों को होता है। भक्तजन अपनी कामनाओं को भगवान् के सामने प्रकट करते हैं, और भगवान् दयालुता से कुटुम्ब के बड़े व्यक्ति की भाँति उसे सरलता से पूर्ण करते हैं। भक्तों के कई भजनों में इस प्रौढरूप के सर्वांगीण विग्रह का चित्रण मिलता है।

३. कैशोररूप—भगवान् श्यामदेव श्यामबाबा के नाम से अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। बाबा-शब्द का प्रयोग श्रद्धा से बड़ेपदवाले के लिए किया जाता है। तथापि अनेक स्थानों में भगवान् का मुखविग्रह २०-२२ वर्ष की अवस्था की झलक देता है। भक्त भी ऐसे मनोमोहक रूप को भगवान् श्रीकृष्ण के चरित्रात्मक भजनों में वर्णन करते हैं। यह रूप माधुर्य का भण्डार है। इस रूप का ध्यान और भजन भगवान् की वात्सल्यप्राप्ति तथा अपनी भावात्मक दीनता के प्रकाशन में अधिक अपनाया गया है।

देवप्रतिमा के भेद

भगवान् श्रीश्यामदेव के पूर्वकथित रूपों की प्रतिमायें मन्दिरों में तथा भक्तों की नित्यसेवा में उपलब्ध होती है। शास्त्रों में—

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता॥

—इस विधान के अनुसार ८ प्रकार की प्रतिमा बताई गयी है। भगवान् श्रीश्यामदेव की—१. शैली अर्थात् पाषाण की या शालग्राम की मूर्ति की प्रतिमा अनेक जगह वर्तमान है। २. श्यामजी की काठ की प्रतिमा अभी तक देखने में नहीं आई है। ३. लौही अर्थात् धातुमयी प्रतिमा अनेक मन्दिरों में मिलती है। भक्तों के घरों में नित्यसेवा के लिए धातुमयी प्रतिमा अभीतक नहीं दृष्टिगोचर है। ४. लेप्या प्रतिमा भी भगवान् श्रीश्यामदेव की दृष्टि में नहीं आई है। ५. लेख्या प्रतिमा अर्थात् हाथ से लिखकर आकार बनाई हुई प्रतिमा या स्याही से लिखित आकार की प्रतिमा अनेक जगह दर्शन के लिए मिली है। शास्त्रीय दृष्टि से जो हाथ से चित्रकारी की गई प्रतिमाएँ हैं, उन्हें प्रशस्त कहा जा सकता है। फोटोग्राफर के द्वारा निज-मन्दिर के श्यामविग्रह की प्रतिमा भी कई जगह उपलब्ध है। इनमें हमारी दृष्टि से यदि उस प्रतिमा का अर्थात् फोटो का एक से अधिक उपयोग नहीं हुआ हो तो उसे मध्यमरीति से शास्त्रीयप्रश्रय दिया जा सकता है। परन्तु प्रेस में ब्लाक बनाकर छपाई हुई प्रतिमाएँ पूजा के लिए बनाना अवरप्रकार लगता है। क्योंकि ब्लाक के चित्र भक्त, अभक्त सबके हाथ में पड़ते हैं, और इसके मुद्रण के समय भी पवित्रता का ध्यान रखना बहुत कठिन है। ऐसे चित्रों के घर में रखने पर कईजगह लोगों को अशान्ति का भी अनुभव हुआ है। अनेक सज्जनों ने अशान्ति का अनुभव करने के बाद मूलमन्दिर में आकर प्रतिमा का विसर्जन कर दिया है। ६. श्यामभगवान् की सैकती अर्थात् मिट्टी की प्रतिमा

देखने में नहीं आती है। ७. मानसिकपूजा के लिए या भजन-स्मरण के लिए मनोमयी प्रतिमा तो भक्तों के सात्त्विकभाव उदय होने पर स्वभावतः बन जाती है, और उसका आनन्द व्यक्ति स्वयं अकेला अनुभव करता है। उस प्रतिमा को दूसरे को नहीं दिखाया जा सकता है। ८. मणिमयी अर्थात् रत्नों से बनी हुई भगवान् श्यामदेव की प्रतिमा देखने का अभी सौभाग्य नहीं मिला है। अभीतक शैली, धातुमयी, लेख्या इन तीन प्रतिमाओं का बहुत स्थानों में दर्शन होता है। फाल्गुन में खाटू आदि में भगवान् की सवारी निकलती है तथा सम्भव है अन्यत्र भी सवारी के समय वीररूप की घोड़े पर आरूढ काष्ठ या मिट्टी की प्रतिमा भक्तों के दर्शन में उपस्थित होती है। परन्तु इसके नित्यपूजन का क्रम देखने को नहीं मिला है।

गृहस्थ-भक्तों के पूजनार्थ श्रीश्याममूर्ति

भगवान् श्रीश्यामदेव अनेक परिवारों के कुलदेवता तथा इष्टदेव हैं। अतः इन गृहस्थपरिवारों के भक्त मुख्यधाम खाटू तथा अन्य श्रीश्याममन्दिरों में विशेष अवसरों पर दर्शन-पूजन तो करते ही हैं, अपने घर में भी श्यामदेव का पूजन-आराधन नियमितरूप से करते हैं। इनमें श्रीश्यामदेव के खाटू-धाम की मूर्ति के छायाचित्र, चित्रित स्वरूप तथा मन्दिर के विग्रह आदि की प्रतिकृति की पूजा आदि की जाती है। इसके अतिरिक्त श्रीश्यामदेव भगवान् की सर्वजनसुलभ मूर्ति शालग्रामशिला है। शालग्राम-शिला पर श्रीश्यामदेव भगवान् का पूजन शास्त्रोक्त तथा भक्तों के घर में उपासना के लिये सर्वाधिक उपयुक्त है। इसमें निम्नलिखित कारण हैं—

१. मूलस्थान खाटूधाम में भगवान् श्रीश्यामदेव की मूर्ति शालग्राम-शिलारूपी है। अतः शालग्रामशिला पर उनका अर्चन करना मुख्यविग्रह के दूसरे स्वरूप का ही पूजन है।

२. छायाचित्र, अनुकृति आदि में शास्त्रीयविधि से देवता की प्राण-प्रतिष्ठा करने की अपेक्षा रहती है। प्रत्येक गृहस्थ के लिये प्रतिमा में चल-प्रतिष्ठा करना सम्भव नहीं है। देवप्रतिष्ठा के बाद नित्य-पूजा, भोग-राग की अनिवार्यता हो जाती है। गृहस्थ-कार्यों के कारण समय से आराधना के नियमों के अनुसार रहकर पूजा-भोग आदि की विधि का पालन करना कठिन होता है।

३. शालग्राममूर्ति में देवप्रतिष्ठा की आवश्यकता नहीं होती, यह शास्त्रों में निर्देश है। प्रतिष्ठा की विधि न रहने के कारण पूजा-अर्चना का अधिक प्रतिबन्ध भी शालग्राममूर्ति में नहीं होता है। मात्र जल तथा तुलसी-दल के अर्पण से ही पूजा के उपचारों का फल हो जाता है। पद्मपुराण का वचन है—**नित्यं तु श्रीहरेः पूजा केवलेन जलेन तु** (पातालखण्ड अ० ११)।

तुलसीदल का अर्पण भी आवश्यक बतलाया गया है।* अतः घर में श्रीश्यामदेव की उपासना के लिये शालग्राममूर्ति रखना अधिक उपयुक्त है।

प्रतिमा का शृङ्गार तथा ज्योति की आराधना

भगवान् श्रीश्यामदेव का प्रधान लीलास्थान खाटूधाम है। यहाँ सिंहासन के ऊपर चन्दन-कलेवर तथा शालग्राम-शिलारूपी दिव्य विग्रह है। इस विग्रह में शिर के सभी अङ्ग अपने-अपने स्थान पर भव्यरूप से आविर्भूत है। मस्तक में तिलक तथा दोनों नेत्रों में किसी विशेष आराधना के बल पर अद्भुत छविवाले रत्नों ने श्रीविग्रह का आश्रय प्राप्त किया है। भक्त-वत्सल भगवान् श्रीश्यामदेव के खाटूस्थित शालग्राम-विग्रह को अमावास्या

* तुलसीपत्रविच्छेदं शालग्रामं करोति यः।
तस्य जन्मान्तरे कान्ते स्त्रीविश्लेषो भविष्यति ।। (ब्रह्मवैवर्तपुराण प्रकृतिखण्ड १६ अ०)
शालग्रामशिला येन पूजिता तुलसीदलैः।
स पारिजातमालाभिः पूज्यते रमणीगणैः ।। (काशीखण्ड, प्रो० ता० ६९०)

तथा विशेष पर्व-तिथि में स्नान कराया जाता है। तब मूलस्वरूप शृङ्गार-तिलक होने के पूर्व कुछ घण्टे या दो-एक दिन सिंहासन पर विराजमान रहता है। स्नान के बाद भगवान् का तुरत या कुछ विलम्ब से शृङ्गार किया जाता है। तब इस श्रीविग्रह में शिला पर अङ्कित सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गों की प्रभा अधिक मनोमोहनी होकर प्रकाशित लगती है, और यह दिव्य विग्रह अपरिचित व्यक्ति के लिए भी अत्यन्त आकर्षक रूप से प्रकट होता है।

अनेक भक्तगण मान्यता के जागरणों में भगवान् श्रीश्यामदेव का ध्यान और उनका पूजन भगवान् श्रीकृष्ण के किसी भी लीला के चित्र को संमुख रखकर करते हैं, और दीपक की ज्योति में भी भगवान् का स्मरण करके आराधना करते हैं। इस ज्योति में ध्येय विग्रह को हम व्यवहार के लिए ज्योतीरूप का नाम दे सकते हैं।

भगवान् श्यामदेव अपनी प्रतिमाओं में या अपने मन्दिरों में ही विराजमान हैं और वहाँ ही हमारी प्रार्थना सुनते हैं, यह नहीं है। वे सर्वत्र व्यापक हैं और भक्त की आर्त्तप्रार्थना को सर्वदा, सबजगह सुनते हैं। बहुतों की प्रार्थना का उत्तर शब्दात्मकरूप से मिलता है तथा कई बार मानसिकप्रेरणा के रूप से मिलता है। कभी श्रीश्यामभक्तों के मुख के वचनों से प्राप्त होता है। अधिकतर हमारी प्रार्थना वे सुन लेते हैं और प्रायः हमें पूर्वलिखित प्रकार के तीनों ही उत्तर नहीं प्राप्त होते, फिर भी हमारी ज्ञानसीमा के बाहर रहकर ही भगवान् ऐसा विधान बैठा देते हैं कि हमारी इच्छाएँ अत्यन्त सरलता से पूर्ण हो जाती हैं। यदि हमारी प्रार्थनाशैली में कमी रहे या हमारी कामना अनधिकार चेष्टा की हो अथवा हमारे पूर्वजन्म के संस्कार या इस जन्म के कार्य जो काम में बाधक है तथा जो स्वार्थान्धता के कारण हमें नहीं दीख पड़ते हैं, समझ में नहीं आते हैं, उनके कारण प्रार्थना की सफलता में कमी समझनी चाहिए।

भगवान् श्यामदेव तो परमदयालु हैं। वे अपने सभी भक्तों को प्रार्थना सुनकर उचित व्यवस्था करनेवाले हैं। इसलिए किसी भो प्रार्थना करनेवाले को विलम्ब, रूपान्तर या सफलता की कमी में कथमपि घबड़ाना नहीं चाहिए, क्योंकि वे हमारे कल्याण की स्थिति के लिए सर्वदा सचेष्ट है। भले ही हम उसकी कल्पना या विचार कर सकें या न कर सकें, परन्तु हमारा कल्याण तो निश्चित रूप से होता है। अतः अटूट श्रद्धा करते हुए भगवान् की आराधना करते रहना चाहिए।

श्रीश्यामोत्सव का शास्त्रीय उल्लेख

श्रीविष्णु भगवान् को मुख्यतिथि द्वादशी है। अतः खाटू में प्रत्येक शुक्लपक्ष की (चाँदनी) द्वादशी को श्रीश्यामजी के दर्शनार्थ यात्रीगण आते हैं। तथापि श्रीश्यामदेव के प्रधानतया तीन देवोत्सव (मेले) होते हैं—१. ज्येष्ठशुक्ला द्वादशी, २. कार्तिकशुक्ला द्वादशी और ३. फाल्गुनशुक्ला द्वादशी। इन तीनों मेलों में भी ऋतु अनुकूल होने के कारण फाल्गुन में विशेष मेला होता है।

श्रीश्यामदेवकथा (अ० ५ श्लो० ११५) में अन्तिम दो मेलों का निर्देश मिलता है—

> **'अनेन यः सुहृदयं श्रावणेऽभ्यर्च्य दर्शके।**
> **वैशाखे च त्रयोदश्यां कृष्णपक्षे द्विजोत्तमाः।**
> **शतदीपैः पूरिकाभिः संस्तवेत्तस्य तुष्यति।'**

अर्थात्—श्रवणनक्षत्रयुक्त अमावास्या, *तथा विशाखानक्षत्रयुक्त अमावास्या के बाद की तेरहवीं तिथि (द्वादशी) के दिन जो अनेकों दीप्त अंगारों द्वारा ढके जानेवाले बाटों के चूरमे से पूजन करके स्तोत्र से स्तुति करता है उससे भगवान् श्रीश्यामदेव बहुत प्रसन्न होते हैं।

* जिस प्रकार चैत्र, वैशाख आदि महीने चित्रा, विशाखा आदि नक्षत्रों की पूर्णिमा के साहचर्य से सामान्यतः कहे जाते हैं, उसीप्रकार यहाँ कार्तिक और फाल्गुन की अमावास्या में विशाखा या श्रवण नक्षत्र का होना आवश्यक नहीं है।

श्रवणनक्षत्रयुक्त अमावास्या फाल्गुनमास में आती है। अतः उस अमावास्या का तेरहवाँ दिन फाल्गुनशुक्ल द्वादशी होता है। विशाखा-नक्षत्रयुक्त अमावास्या कार्तिक में आती है, अतः उसका तेरहवाँ दिन कार्तिक शुक्लपक्ष की द्वादशी होता है। इस पौराणिक महत्वपूर्ण निर्देश के कारण कार्तिक शुक्लद्वादशी तथा फाल्गुन शुक्लद्वादशी को श्रीश्याम भगवान् के दिव्यधाम खाटू में विशिष्ट मेला लगता है। स्कन्दपुराण के निर्देश से यह स्पष्ट है कि फाल्गुन शुक्लद्वादशी को पुनर्वसुनक्षत्र और कार्तिक शुक्लपक्ष की द्वादशी को अश्विनीनक्षत्र हो तो उत्तम (विशेष) योग होता है। भारतसार के उल्लेख के अनुसार उस द्वादशी के दिन सोमवार यदि हो तो अत्युत्तम योग है।

श्रीश्याम-जयन्ती

भगवान् श्रीश्यामदेव की जयन्ती (वरप्राप्ति की तिथि) कार्तिक शुक्लद्वादशी को मनानी चाहिये। इस दिन सोमवार और अश्विनीनक्षत्र हो तो पूर्णयोग कहा जाता है। जयन्ती-उत्सव के दिन भगवान् का शक्ति एवं विभव के अनुसार उत्साह से पूजन, स्मरण, भजन, स्तुतिपाठ करना चाहिये। प्रत्येक शुक्लद्वादशी (चाँदनी बारस) को भगवान् की कुलमर्यादानुसार ज्योति (जोत) देखकर या स्मरण करके स्कन्दपुराणोक्त श्रीश्यामदेवकथा सुननी चाहिए। परन्तु कारणवशात् प्रत्येक श्रीश्याम-द्वादशी को कथा न सुन सके तो जयन्ती के दिन अवश्य कथा सुननी चाहिए। और इसदिन भक्तजनों को श्रीश्याम भगवान् के पूर्णदेह का ध्यान-पूजन करना चाहिये।

पूर्णदेह का ध्यान

नीलमेघचयप्रख्यो घटास्यो दीर्घलोचनः।
ऊर्ध्वकेशश्चोर्ध्वरोमा बालसूर्यसमप्रभः॥
सिंहवक्षा दीर्घभुजः सिद्धैश्वर्योऽतिदीप्तिमान्।
घटहासः पर्वताभो जातमात्रो युवा विभुः॥

द्वात्रिंशल्लक्षणैर्युक्तो नियुद्धकुशलो बली।
विद्युवक्षो वायुजवो यश्चेच्छन्नाशयेज्जगत्॥
विश्वपूज्यः सुहृदयो भक्तानाभयङ्करः।
श्रीकृष्णरूपो ध्यातव्यो बर्बरीको महायशाः॥

विशेषतिथि—द्वादशी की मान्यता

प्रत्येक महीने की शुक्लपक्ष की द्वादशी श्रीश्यामदेव की विशेष तिथि मानी जाती है। इस चाँदनी-बारस को कई कुलों में ज्योति (जोत) देखते हैं, या शालग्रामजी के भोग लगाकर अथवा नैवेद्य परोस कर एक शुद्ध आसन के सामने रख देते हैं और भगवान् का ध्यान, स्तोत्रपाठादि करके चूरमा का प्रसाद पाते हैं। जिस कुल में जैसी प्रथा हो उन्हें वैसा ही करना चाहिये।

श्रीश्यामजी के लिए शुक्लपक्ष की द्वादशी मानने में निम्नलिखित कारण कहे जा सकते हैं—

१. द्वादशी के देवता विष्णु हैं (मु० चि० १।३)। अपनी तिथि में उस देवता की विशेष रूप से स्थिति मानी जाती है। पीयूषधारा में नारद जी का वचन है—

'यद्दिनं यस्य देवस्य तद्दिने तस्य संस्थितिः।'

ज्योतिः शास्त्र के प्रधान आचार्य महर्षि वसिष्ठ ने कहा है कि—

पृथिव्यां यानि कर्माणि धर्म-पुष्टि-शुभानि च।
चरस्थिराणि द्वादश्यां यात्रां नवगृहं विना॥ (पी० धा०)

अर्थात् पृथ्वी में जितने भी धर्म, पुष्टि एवं शुभकार्य हैं उन स्थायी या अस्थायी फल देनेवाले कर्तव्यों—के लिए द्वादशीतिथि शुभदायक है। इससे द्वादशी की विशेषता सिद्ध होती है। इसीलिए धर्मादिवृद्धि की अभिलाषा से द्वादशी में विष्णुस्वरूप भगवान् श्रीश्यामदेव की उपासना को विशेष महत्त्व दिया गया है।

२. गृहस्थों के लिए शास्त्रकारों ने शुक्लपक्ष की एकादशी का व्रत विशेष कहा है। उसके पारण—शुक्लपक्ष की द्वादशी—के दिन भगवान् को खीर-चूरमा भोग लगाकर भक्तजन पारण कर सकें, यह भी हेतु है।

३. कृष्णपक्ष की द्वादशियों की अपेक्षा शुक्लपक्ष की द्वादशियों में अधिक फलवाले व्रत एवं विधान मिलते हैं। अतः उसदिन भगवान् का प्रसाद ग्रहणकरना विशेष फलदायक है।

४. स्कन्दपुराणोक्त 'श्रीश्यामसंस्तवः' स्तोत्र में द्वादशी की मान्यता के निदर्शनार्थ ही १२ बार 'जय' शब्द आया है।

५. भारतसार (श्रीश्यामदेवेतिवृत्त १।३०) के लेखानुसार❀ शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी को महाभारत का संग्राम प्रारम्भ हुआ था। इसके पहले- दिन अर्थात् द्वादशी को बर्बरीक को श्रीकृष्ण द्वारा वरदान प्राप्त हुआ था। इसलिए प्रत्येक शुक्लपक्ष की द्वादशी को 'वरतिथि' मानकर विशेष उत्सव मनाया जाता है।

६. श्रीश्यामदेवकथा के पाँचों अध्यायों में ३४५ श्लोक हैं। इनको क्रम से लिखकर जोड़ने पर (३+४+५=) १२ संख्या आती है। इससे श्रीश्यामजी का द्वादशी से अधिक संबन्ध प्रतीत होता है।

एकादशी-तिथि की मान्यता

श्रीश्यामदेव भगवान् के दर्शन-प्रसाद आदि आराधना में अनेक भक्तजन शुक्लपक्ष की एकादशी की मान्यता रखते हैं। अपनी कुलपरम्परा के अनुसार यह मान्यता भी उचित है। श्रीश्याम भगवान् की मुख्यतिथि विष्णुदेवत्य द्वादशी को मानने पर भी एकादशी को पूजन, जागरण आदि में कोई विरोध नहीं है। क्योंकि वेदोक्त विधि के अनुसार मुख्यतिथि के पूर्ववाले

❀ हेमन्ते प्रथमे मासि त्रयोदश्यां सिते दले।
भौमावारे भरण्यां च सङ्ग्रामोऽभूत् तदा महान्॥

दिनको 'उपवसथ' कहा गया है। उपवसथ के दिन देवता मनुष्य के अत्यन्त समीप आजाते हैं तथा भक्त के घर में निवास करते हैं, यह वेद में उल्लिखित हैं—देवा गृहानागच्छन्ति तेऽस्य गृहेषूपवसन्ति स उपवसथः (श०ब्रा० २।१।४।१)। अतः शुक्ल एकादशी के दिन भी श्रीश्यामदेव की परम्परानुसार अर्चना उचित है। एकादशी को रात्रि में जागरण भी उपवसथ की विधि में इसप्रकार बतलाया गया है—अथ जाग्रति जाग्रति देवाः (श० ब्रा० २।१।४।७)। अर्थात् उपवसथ को रात्रि-जागरण करने पर देवता भक्त केलिये जाग्रत् हो जाते हैं। इस कारण से एकादशी को अर्चन-पूजन तथा जागरण अपनी कुलपरम्परा के अनुसार भक्तिपूर्वक सम्पन्न करना चाहिये।

ज्योतिर्दर्शन की परम्परा

श्रीश्यामदेव के अनेक भक्त-परिवारों में शुक्ल एकादशी अथवा द्वादशी को ज्योति (जोत) प्रज्ज्वलित कर उसमें घृत, चूरमा आदि नैवेद्य समर्पित करते हुए ज्योतिदर्शन को परम्परा है। यद्यपि देवार्चन में मूर्ति के सम्मुख नैवेद्य करने पर भी देवता उसे स्वीकार कर लेते हैं, अतः ज्योतिदर्शन की अनिवार्यता नहीं है। तथापि यदि कुलपरम्परा में ज्योतिदर्शन (जोत लेने) की रीति है तो उसका शास्त्र से विरोध नहीं है। क्योंकि अग्नि को देवताओं का मुख कहा गया है—अग्निर्वै देवानां मुखम् (ऐ० ब्रा० ७।१६, कौ० ३।६, ५।५, ता० ६।१।६, गो० उ० १।२३)। अग्निरूपी मुख से देवता अन्न आदि का ग्रहण करते हैं—देवा अग्निमुखा अन्नमदन्ति (श० ब्रा० ७।१।२।४)। अतः अग्नि की ज्योति प्रज्वलित कर उसमें घृत, नैवेद्य आदि को भगवान् श्रीश्यामदेव के लिये प्रत्यक्ष समर्पित करना भी कुलमर्यादा के अनुसार होम के अनुकल्पमें उचित है।

खाटूधाम की तीर्थयात्रा

श्रीश्यामदेव के दर्शनार्थं तथा मान्यता की पूर्ति हेतु भक्तजनों के लिये भगवान् के प्रधान स्थान खाटूधाम की यात्रा विशेष फलदायक होती है। खाटू की तीर्थयात्रा में निम्नलिखित कर्तव्यों का ध्यान रखना चाहिये—

१. यात्रा में श्रीश्यामदेवकथा (अ० ४ श्लो० २६) का निर्देश ध्यान में रखना चाहिए—

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ।
निर्विकाराः क्रियाः सर्वाः स हि तीर्थफलं लभेत् ॥

जिसके हाथ पैर और मन नियन्त्रित हैं, तथा सम्पूर्ण कर्तव्य शुद्धभाव से होते हैं उसको तीर्थयात्रा का फल मिलता है।

२. श्रीश्यामधाम खाटू में जाकर यथाशक्ति श्रीश्यामजी के नैवेद्य में खीर, चूरमा, दाल बनाना चाहिए, और ब्राह्मणों का भोजन एवं सत्कार करना चाहिए।

३. शक्ति के अनुसार श्रीश्यामदेव भगवान् की प्रसन्नता के लिए स्वयं, एक या अनेक पठित ब्राह्मणों से पुराण—स्तोत्रपाठादि करवाना चाहिए।

खाटू की यात्रा का क्रम

खाटूधाम में पहुँचकर धूलिके पैरों से ही भगवान् श्रीश्यामदेव का दर्शन करना उत्तम है। दर्शन के पश्चात् चार या यथासाध्य इससे अधिक प्रदक्षिणा एकाग्र मन से हाथ-पैर को सुसंयत (चंचल न) रखते हुए मन में भगवान् का ध्यान तथा वाणी से स्तुति करते हुए करनी चाहिये। प्रदक्षिणा पूरी करके भगवान् को पुनः प्रणाम करने केबाद महादेवजी तथा श्रीगोपीनाथजी का दर्शन करके श्रीहनुमान्‌जी का दर्शन करना चाहिए। इसप्रकार धामप्राप्तिनिमित्तक दर्शन करके

स्वस्थता से स्नान-ध्यानादि करना चाहिए। खाटू में जाने पर कम से कम एकबार श्रीश्यामकुण्ड में अवश्य स्नान करना चाहिए। स्नान न कर सके तो उस जल से अपने शरीर का प्रोक्षण ही कर लेना चाहिए। स्नानादि से निवृत्त होकर भगवान् केलिए प्रसाद (नैवेद्य) बनाना चाहिए। यदि जात या जडूला किया जाय तो उस दिन भगवान् श्रीश्यामजी केलिए 'चूरमा' का प्रसाद अवश्य बनाना चाहिए। भगवान् श्रीश्यामदेव को खीर-चूरमा अत्यधिक प्रिय है। स्कन्दपुराण की कथा में भी चूरमा के नैवेद्य से भगवान् की प्रीति बतलाई गई है। नैवेद्य तैयार होजाने पर पूजन-सामान लेकर भगवान् के मन्दिर में उत्साह से भगवान् श्रीश्यामदेव का पूजन करें। पूजन के बाद स्वयं या ब्राह्मणों के द्वारा यथाविचार स्तोत्रपाठ, पुराणपाठ आदि करें, और स्वयं विनीतभाव से श्रद्धा-भक्ति-पूर्वक अपनी मानसिक अभिलाषाओं को भगवान् से निवेदन करे, तथा भगवान् का प्रसाद ले। यदि कच्चाभोग लगाया गया हो तो यज्ञोप-वीतसंस्कारवालों को इलायची, नारियल की गरी (चिटक) और तुलसी ग्रहण कर लेना चाहिए। भगवान् के पूजन, प्रार्थना, नैवेद्य, भेट चढ़ाने के बाद यात्रासफलता केलिए निम्नलिखित स्थानों की यथाशक्ति भेट तथा लाग अलग-अलग उन व्यक्तियों को अवश्य देनी चाहिए। भेट—(१) श्रीमद्भागवत-महापुराण के लिए भागवतजी को, (२) रघुनाथजी को, लाग—(३) ध्वजाधारी, (४) खवासी (नौबतवाले) और (५) पात्र (गायक)। लाग देने के बाद प्रदक्षिणा करके अपने स्थान पर जाना चाहिए, और श्रीश्यामजी महाराज के प्रसाद को सम्पूर्ण भोजनसामग्री में मिला देना चाहिए। उस प्रसाद से विचारानुसार ब्राह्मणों को भोजन कराकर दक्षिणा देकर बचे हुए नैवेद्य को सब घरवाले उत्साह से ग्रहण करें। उस दिन होसके तो अन्य देव-मन्दिरों का भी दर्शन करें। सायङ्काल या दिन में किसी समय किसी विद्वान् ब्राह्मण को बुलाकर भगवान् श्रीश्यामदेव की कथा का श्रवण करें। इस

प्रकार खाटूधाम में जितने दिन रहे, भगवान् के स्मरण, पूजन, कथाश्रवण आदि में विशेष समय लगावे। खाटू की यात्रा पूर्ण करके घर जातेसमय भी भगवान् श्रीश्यामदेव का दर्शन-ध्यान करके उनकी प्रसन्नता की भावना करते हुए उत्साह से प्रस्थान करना चाहिए।

श्रीश्यामक्षेत्र के अन्य देवस्थान

खाटू में निम्नलिखित देवस्थान सम्मानित रूपसे माने जाते हैं। विवाहादि के अवसरों पर स्थानीय व्यक्ति इन प्राचीन देवस्थानों पर ध्वजा चढ़ाते हैं—

(१) श्रीश्यामक्षेत्र के अधिपति — श्रीश्यामजी महाराज
(२) श्री रघुनाथजी
(३) श्रीगोपीनाथजी
(४) श्रीगङ्गाजी
(५) श्री सीतारामजी
(६) श्री रामकुमारजी
(७) श्री रघुनाथजी
(८) श्री रत्नविहारीजी
(९) श्रीगोपीनाथजी (माधोपुर)
(१०) श्री रामघाट का मन्दिर
(११) श्री चैनपुर मन्दिर
(१२) श्री नाडा मन्दिर
(१३) श्री चोमू मन्दिर
(१४) श्री जैनमन्दिर
(१५) श्री झामासमन्दिर
(१६) श्री जानकीवल्लभजी
(१७) श्री रामलक्ष्मणजी
(१८) श्री राधावल्लभजी
(१९) श्री बालमुकुन्दजी
(२०) श्री सदाशिवजी
(२१) श्री शनैश्चरजी
(२२) श्री भगवान्‌जी (खेरडीका)
(२३) श्री पोणकोस्या मन्दिर
(२४) श्री नगरश्रीकरनाथजी
(२५) श्री बालमुकुन्दजी (मिश्रों के)
(२६) श्री जीवराजमन्दिर
(२७) श्री द्वारकादासमन्दिर
(२८) श्री जीवनीमाता मन्दिर
(२९) श्री सीतारामपुरा मन्दिर
(३०) श्री गयामाई मन्दिर
(३१) श्री रेवासमन्दिर
(३२) श्री भागवतजी (मिश्रोंकी)
(३३) श्री पोपला का बालाजी
(३४) श्री श्यामकुण्ड का ठाकुर जी

जात (देवयात्रा) की परम्परा

भगवान् श्रीश्यामदेव के भक्तगण तथा जो इनको कुलदेव मानते हैं वह सभी विवाह के बाद तथा पुत्रजन्म के बाद श्रीश्यामदर्शन करने जाते हैं, उस यात (=यात्रा) को 'जात' कहते हैं। जिनके कुल में श्रीश्यामजीकी मान्यता है, या जो भक्त किसी कामनासिद्धि केलिये जात देना मान लेते हैं, वह भी कार्यसिद्धि होने पर श्रीश्यामजी को जात देते हैं। लोक-व्यवहार में सुविधा केलिये पुत्रजन्म-सम्बन्धी जात बालक के जडूला (चूडाकरण) के साथ तथा विवाह की जात पुत्रजन्म की जात के साथ भी दीजाती है।

'जात' शब्द देवयात्रा—शब्द के उत्तरार्ध 'यात्रा' शब्द का अपभ्रंश है। अथवा यह भी मत है कि 'यात' (=गमन) शब्द का रूप 'जात' हो गया है। देवयात्रा या जात का उल्लेख शास्त्रों में भी है। भगवान् श्रीकृष्ण के प्राकट्य होने के बाद श्रीनन्दबाबा ने अम्बिकावन (मथुरा से ७ कोस पश्चिम) में जात दी थी, इसका उल्लेख मिलता है। यथा—

"एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः।
अनोभिरनडुद्युक्तैः प्रययुस्तेऽम्बिकावनम् ॥
तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पशुपतिं विभुम्।
आनर्चुरर्हणैर्भक्त्या देवीं च नृपतेऽम्बिकाम् ॥
गावो हिरण्यं वासांसि मधु मध्वन्नमादृताः।
ब्राह्मणेभ्यो ददुः सर्वे देवो नः प्रीयतामिति ॥
ऊषुः सरस्वतीतीरे जलं प्राश्य धृतव्रताः।
रजनीं तां महाभागा नन्द—सुनन्दकादयः ॥
.... समाप्य तस्मिन् नियमं पुनर्व्रजं।
नृपाययुस्तत् कथयन्त आदृताः ॥

(श्रीमद्भागवत १०।३४।१-४,१९)

जात की प्रचलित रीति

प्रचलित व्यवहार में जात के लिए खाटू जाते हैं, रात में जागरण करते हैं, और दूसरेदिन वस्त्र, नारियल, भेट, भोग, पूजासामग्री लेकर भगवान् श्रीश्याम के दरबार में गठजोडा (=ग्रन्थियोग, ग्रन्थिबन्धन) से उपस्थित होते हैं। थली पर पूजन करके भोग-भेट चढाकर भागवतजी आदि ५ अंग भेट, लाग देकर भगवान् को नमस्कार, प्रदक्षिणा करके यथाशक्ति ब्राह्मणभोजन कराने के बाद स्वयं प्रसाद पाते हैं।

जात की शास्त्रीय पद्धति

जात की विधि में उपयोगी शास्त्रीयप्रमाण निम्नलिखित हैं—

'नि षु सीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम् ।
न ऋते त्वत्क्रियते किञ्चनारे महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च ॥"
(ऋग्वेद)

"अन्यस्मिन् चैव सर्वस्मिन् शुभे कर्मणि चोदिते ।
वाचनीया द्विजाः सर्वे वेदशास्त्रपरायणाः ॥"
(विधानरत्नमाला)

"ततो मङ्गलसूत्रं च ध्यायन्निष्टां च देवताम् ।
बध्वाः कण्ठप्रदेशेऽस्यां भूषणानि च शक्तितः ॥"
(विधानपारिजात)

"एवं संपूज्य वरो मङ्गलसूत्रं सूक्ष्ममणिसूत्रयुक्तं
वधूकण्ठे स्वेष्टदेवतां ध्यायन् बध्नीयात् ।" (सं० गणपति)

"बध्नीयात्कन्यकाकण्ठे सूत्रं मणिसमन्वितम् ।
माङ्गल्यतन्तुनानेन मन्त्रेण स्यात्सदा सती ॥"
(लघ्वाश्वलायनस्मृति)

मन्त्र—"माङ्गल्यतन्तुनानेन भर्तृजीवनहेतुना ।
कण्ठे बध्नामि सुभगे संजीव शरदः शतम् ॥" (स्मृतिरत्न)

साधारण जात

उपरिलिखित प्रमाणों के अनुसार जात का निम्नलिखित प्रकार ज्ञात होता है—

जिसदिन जात देनाहो उस दिन प्रातःकाल वहाँ के पवित्र जलाशय श्रीश्यामकुण्ड में (यदि हो सके तो स्नानविधि से) स्नान करने के बाद यथाविधि नित्यकर्म, सन्ध्यावन्दनादि करके घर (या मन्दिर) में शास्त्रोयविधि से गणपतिपूजन, पुण्याहवाचन करें। तदनन्तर भगवान् श्रीश्यामदेव के दर्शन के लिए आचारानुसार पूजन आदि के उपयुक्त सामग्री लेकर मङ्गलगीतादि गाते हुए गठजोडा से भगवान् के मन्दिर में जायें। भगवान् के पूजन-भेट करके प्रार्थना, नमस्कार करें। जात (देवयात्रा) को सफलता के लिए भागवतजो पर एक वर * भेट चढ़ावे, तथा लाग देकर प्रदक्षिणा करें। भगवान् की प्रसन्नता के लिए भक्ति-श्रद्धा से यथाशक्ति ब्राह्मणों का दान-मान-सत्कार से पूजन करें, भोजन करावे। स्वयं भी प्रसाद पावे। सायङ्काल भोजन न करें, केवल जल पीकर ही भगवान् का स्मरण करते हुए रात्रि में रहे। संभवतः सुविधा के कारण आजकल जात की पहली रात में जागरण करते हैं, परन्तु शास्त्र से जात की रात में जागरण प्रतीत होता है। इस दिन स्कन्दपुराणीय श्रीश्यामदेव को कथा भी सुने। दूसरे दिन प्रातःकाल स्नानादि नित्यकर्म करके भगवान् का दर्शनपूजन, प्रार्थना करें, और भगवान् का प्रसाद लेकर नियम समाप्त करें।

विवाह की जात

विवाह की जात में निम्नाङ्कित विशेषता होगी—

पूजनसामग्री के साथ रेशम या सूत का एक मङ्गलसूत्र (डोरा) और

---

* गौर्ब्राह्मणस्य वरः, ग्रामो राजन्यस्य, अश्वो वैश्यस्य (पा॰ गृ॰)
गोभिलेयः—'वरं तु गां विजानीयाच्चतुर्वर्षामिति स्थितिः।
दक्षिणानां विशिष्टं वै वरं तमरं विदुः॥'

[यथायोग्य दम्पती (पुरुष तथा स्त्री) केलिये एक-एक नवीन आभूषण विशेष ले जावे। भगवान् के पूजन-प्रार्थना करने के बाद मङ्गलसूत्र को थलो से स्पर्श कराकर भगवान् श्रीश्यामदेव का चन्दन लगावे। चन्दन-संस्कार के बाद वहाँ के भागवताचार्य (मिश्र) जो से अभिमन्त्रणसंस्कार करावें या स्वयं करें। अभिमन्त्रणसंस्कार में मूलमन्त्र, स्तव, एवं नारायण-कवच का पाठ किया जाता है। अभिमन्त्रणसंस्कार करने के बाद पति अपने हाथ से माङ्गल्यसूत्र निम्नलिखित मन्त्र पढ़कर स्त्री को कण्ठ में बाँधने को देवे—

"माङ्गल्यतन्तुनानेन भर्तृजीवनहेतुना ।
कण्ठे बध्नामि सुभगे ! संजीव शरदः शतम् ॥"

अर्थात्—हे सौभाग्यवति ! नवविवाहिते ! धर्मपत्नि ! पति को जीवन प्रदान करनेवाले इस मङ्गलसूत्र को कण्ठ में बाँधता हूँ। तुम धन, धान्य, पति, पुत्रादि से समृद्धियुक्त होकर पूर्ण आयु को प्राप्त करो।

तदनन्तर दोनों आभूषणों का चन्दन-संस्कार तथा अभिमन्त्रण-संस्कार मन्दिर में (या घर में) करके स्त्री को नवीन आभूषण निम्नलिखित मन्त्र से पहनने के लिए देवे—

"जय जय चतुरशोतिकोटिपरिवार सूर्यवर्चाभिधान यक्षराज, जय भूभारहरणप्रवृत्त लघुशापप्राप्तनैऋतयोनिसंभव, जय कामकटङ्कटाकुक्षिराजहंस, जय घटोत्कचानन्दवर्धन बर्बरीकाभिधान, जय कृष्णोपदिष्टश्रीगुप्तक्षेत्रदेवी-समाराधनप्राप्तातुलवीर्य, जय विजयसिद्धिदायक, जय पिङ्गला-रेपलेन्द्र-द्रुहद्रुहा-नवकोटीश्वरपलाशिदावानल, जय भूपातालान्तराले नागकन्यापरिहारक, जय भीममानमर्दन, जय सकलकौरवसेनावधमुहूर्तप्रवृत्त, जय श्रीकृष्ण-वरलब्धसर्ववरप्रदानसामर्थ्य, जय जय कलिकालवन्दित, नमो नमस्ते पाहि पाहि ।"

दूसरा आभूषण पुरुषको स्वयं उपरिलिखित 'जय जय' आदि मन्त्र से तथा नीचे लिखे मन्त्र से पहनना चाहिए—

"गृह-सुत-धन-तेज-स्त्र्यादिसर्वप्रदाता, निगमगुणविनेता कालभीति-प्रभेत्ता, अरिकुलवधकर्ता भक्तकार्यातिचेता, जगति जयति देवः श्यामदेवः प्रतापी।"

आभूषण धारण करनेके बाद भगवान् का स्मरण एवं प्रार्थना करनी चाहिये। इस विधिका फल है कि विवाह की जात एवं मङ्गलसूत्र-विधान करने से स्त्री-पुरुषों को दीर्घायुष्य, सुख, सौभाग्य और सन्तति की प्राप्ति होती है। * नवीन सुवर्णाभूषण धारण करनेसे शत्रुओं का पराजय होता है।

जडूला

राजस्थान में बालक के उपनयन एवं विवाह के पहले, तीसरे, पांचवें, सातवें आदि ऊणे (विषम) वर्ष में (कहीं-कहीं पूरे-समवर्ष में भी) कुलदेव श्रीश्यामजी के मन्दिर में जाकर जन्म के बालों का उतारना 'जडूला' कहा जाता है। विद्वानों का मत है कि—शास्त्रों में जिसे चूडाकरण संस्कार कहा गया है, वही संस्कार राजस्थान में 'जडूला' शब्द से कहा जाता है।

अमरकोष (२।६।४९) में जडुल शब्द आया है। व्याख्या—सुधा में इसे जल एवं जट धातु से बाहुलक में उलच् प्रत्यय द्वारा बनाया गया है। अनेक गृह्यसूत्रकारों ने भी 'जटाः कुर्वन्ति' इत्यादि सूत्ररचना में चूडा के स्थान में जट धातु से साधित जटा-शब्द का भी प्रयोग किया है।

'जडूल' शब्द 'खर्जिपिञ्जादिभ्य ऊरोलचौ' इस औणादिक (४।९०) सूत्र द्वारा 'जट संघाते' धातु से ऊलच् प्रत्यय करके सिद्ध किया

---

* "सुवर्णं आत्मना भवति, दुर्वर्णोऽस्य भ्रातृव्यः, तस्मात्सुवर्णं हिरण्यं भार्यम्, सुवर्ण एव भवति, एवं प्रियं गच्छति, नाप्रियम्" (तै० ब्रा० २।४।६)

जासकता है। यद्यपि पिञ्जूलादिगण में जडूल शब्द का पाठ नहीं है, तथापि—"पिञ्जूलादिष्ठिवतोऽन्येऽपि ज्ञेया विद्वद्भिरत्र विक्।"

—इस औणादिकपदार्णव के प्रामाण्यानुसार 'जडूल' शब्द सिद्धकरनेमें कोई बाधा नहीं है। यह 'जडूल' शब्द चूडाकरण के अर्थ में प्राचीन समय में राजस्थानकी संस्कृत में प्रयुक्त होता होगा (तुलनीय, निरुक्त २।१) जिससे चूडाकरण को अबतक जडूला कहते हैं।

चूडाकरण (जिसे राजस्थान में जडूला कहा जाता है) षोडश संस्कारों में से एक है। यह विधिपूर्वक होना चाहिये। आजकल देवस्थानों में जाकर केवल बालक के केश बनवादेना ही चूडाकरण मान लेते हैं। परन्तु शास्त्रकारों ने इसकी विधि बतलायी है। इस संस्कार के विषय में यह अवश्य जान लेना चाहिये कि—यह हिन्दुत्वपरिचायक प्रधानतम चिह्न शिखा (चोटी) के रखने का संस्कार है। इस संस्कार केद्वारा बालक को पवित्र देवस्थान में हिन्दुत्व की दीक्षा दी जाती है। यह संस्कार बालिका एवं शूद्रों का भी होता है। परन्तु उनका संस्कार विना मन्त्र (क्रियामात्र ही) करना होता है। स्त्रियों का चूडाकर्म—

"कुमारीचौलेऽपि यथाकुलधर्ममित्यनुवर्तते,
ततश्च सर्वमुण्डनं, शिखाधारणम्, अमुण्डनमेव वेति सिध्यति।"

—इस वीरमित्रोदय के प्रमाण से कुलाचारानुसार सब बालों का मुण्डन, या शिखा रखकर शेष बालों का मुण्डन, या बिलकुल न बनवाने स्वरूप का होता है। त्रैवर्णिक बालक का समन्त्रक विधि से संस्कार कराना चाहिए। यदि किसी विशेषकारणवशात् कुलदेव के स्थान (श्रीश्यामधाम 'खाटू') में सविधि संस्कार न कियाजासके तो भगवान् के दरबार (द्वारवर) में बाल बनवाकर पुनः अपने घर में यथाविधि संस्कार करना चाहिए। विधि का लोप करना उचित नहीं है। अनेक भक्तसज्जन कारणवशात् कुलदेव के स्थान (श्रीश्यामधाम 'खाटू') में चूडाकरण के समय नहीं जाते हैं,

तो वे घर में भगवान् का ध्यान, स्मरण करने के बाद यथाविधि चूडाकरण करके उसके कुछ बालों को सोने में मढा लेते हैं, और कालान्तर में वहाँ उपस्थित होकर उन सोने में मढे बालों का निवेदन करते हैं। यह अनुकल्प है। गृह्यसूत्रों में चूडाकरण के लिए 'बहिःशाला'=घर का आँगन या बाहर मण्डप बनाकर उसमें संस्कार करना बतलाया है। अतः यथासम्भव प्रयत्न करके देवस्थान श्रीश्यामधाम खाटू में ही चूडाकरणसंस्कार करना चाहिये। जडूला में बालों को देवता पर चढ़ाना उचित नहीं है। शास्त्र में उन बालों को बैल के गोबर में रखकर कपड़े से बांधकर गोस्थान या जलाशय के पास गाडने का विधान है। अतएव भगवान् श्रीश्यामदेव के निजमन्दिर में बाल नहीं जाते हैं। संस्कार के लिए देवस्थान पर जाने से हिन्दूत्वदीक्षा की दृढ़ता, एवं यात्रा करने से बालक को उस संस्कार (हिन्दूत्व) के महत्त्व को विशेषस्मृति बनी रहतो है। समय-समय पर विशेष देवस्थान या तीर्थस्थान की यात्रा, अपने पूज्यों का दर्शन, भाषण, भारतीय आर्षसंस्कृति के अनुगामी सत्पुरुष विद्वानों का सत्सङ्ग आदि—भारतीयता, देशप्रेम, गुणग्राहिता, उत्साह की वृद्धि करते हैं। इस दृष्टि से भी देवस्थान की यात्रा लाभप्रद है।

कुछ व्यक्ति जडूला और चूडाकरणसंस्कार को भिन्न कार्य समझते हैं। उनका भाव है कि चूडाकरण को संस्कारों में गणना है, और जडूला षोडशसंस्कारान्तर्गत नहीं है, अपितु यह चूडाकरणसंस्कार का पूर्व-भावी 'गर्भ के केशों को काटने' रूप का कर्तव्य है। 'गर्भकेशनिकृन्तन' कर्म का शास्त्रों में भी उल्लेख है, और इसका करना आवश्यक भो है। इस मत में भी जडूला के लिए देवस्थान में जाना उचित है।

जडूला (चूडाकरण) का फल

हिन्दुत्व की दीक्षा, भारतीय परम्परा, देवश्रद्धा की दृढता के साथ

चूडाकरण का शास्त्रीय फल भी होता है, जिसका निर्देश भगवान् मनु ने इन शब्दों में किया हैं—

गार्भैर्होमैर्जातकर्म-चौड-मौञ्जीनिबन्धनैः ।
बैजिकं गार्भिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते ॥

अर्थात्—चूडाकरणसंस्कार करने से बोज (वीर्य) एवं गर्भ का दोष (पाप) निवृत्त होता है, और आयु भी बढतो है।

चूडाकरण-मुहूर्तविचार

शास्त्रकारों ने चूडाकरण का मुहूर्त विशद रूप से बतलाया है। उसमें अपने कुलाचार की परम्परा को भी एक स्वतन्त्र मुहूर्त माना है। यथा—

"षड्गुरुशिष्योऽपि—यादृशः कुलधर्मः स्यात्तादृशं चौलकर्म च, इति ।

उक्तपक्षाणामेव कुलधर्मो व्यवस्थापक इत्येके, स्वतन्त्रं कालान्तरमित्यपरे, तेनानुक्तेऽपि काले भवति ।"

इस वीरमित्रोदय के प्रमाणानुसार, मुहूर्त में करना सम्भव न हो तो, मुहूर्त के बिना भी कुलधर्म के अनुसार अपने निश्चित दिन में देवस्थान श्रीश्यामधाम खाटू में जाकर आस्तिक भक्त चूडाकरणसंस्कार (जडूला) कर सकते हैं।

चूडाकरणविधि

चूडाकरणसंस्कार की विधि शुक्लयजुर्वेदियों के लिए पारस्करगृह्यसूत्र के द्वितोय काण्ड की पहली कण्डिका में है। पाठकों को जानकारो तथा सुविधा के लिए यहाँ उसके अनुसार हिन्दी में क्रियाविधान बतलाया जारहा है। इसमें मन्त्रों तथा क्रियाओं का सङ्केतमात्र दिया गया है, क्योंकि कार्य कराने के लिए बुलाये गये विद्वान् के पास संस्कृत-भाषामय पद्धति उपलब्ध रहती है। विद्वान् के मुखसे और संस्कृतभाषा के वाक्यों केद्वारा ही कार्य कराना फलप्रद होता है। अतः जानकारी के लिए अपेक्षित विधि हिन्दी में प्रस्तुत की जारही है—

प्रातःकाल बालक एवं उसके माता-पिता शरीरशुद्धयर्थ (श्रीश्याम-कुण्ड में) स्नान आदि नित्यकर्म से निवृत्त होकर शुद्ध वस्त्र पहन कर पवित्र स्थान, या बहिःशाला (चूडाकरण कर्म के लिए नियत स्थान) में आवें। वहाँ पूर्वमुख बालक का पिता बैठे, अपने दाहिनी ओर बालक की माता को, उसके दाहिने या गोद में बालक को बैठावे। बैठने के बाद शुद्ध मन से भगवान् का स्मरण, आचमन, प्राणायाम, मङ्गलमन्त्रपाठ आदि करके बालक के सात संस्कारों—१. गर्भाधान, २. पुंसवन, ३. सीमन्तोन्नयन, ४. जातकर्म, ५. नामकरण, ६. निष्क्रमण एवं ७. अन्नप्राशन—के समय पर न करने, या यथाविधि न होने पर प्रायश्चित्त-रूप से गोदान करके, प्रधान एवं अङ्ग संकल्प करें। तदनन्तर ब्राह्मणविद्वानों के कथनानुसार गणपतिपूजन, मातृकापूजन, नान्दीश्राद्ध (होसके तो ग्रहशान्ति) करें। ये कार्य प्रथम दिन भी किये जा सकते हैं।

इसके बाद कुलधर्म के अनुसार गन्ध-पुष्प आदि पूजनसामग्री लेकर उत्साह से भगवान् श्रीश्यामजी के मन्दिर में जावे। वहाँ भगवान् का दर्शनमात्र करके देवाचार्य (मिश्रजी) के पास आकर हाथ जोडकर—

'भगवन् सर्वधर्मज्ञ प्राप्तोऽहं कुलशासनात्।
सुतायुष्याभिवृद्धयर्थं चूडाकर्मप्रसिद्धये॥'

यह कहकर एक श्रीफल (नारियल) भेट करें। तथा देवाचार्यजी से—

'त्वं श्रेयः साधनायासि प्राप्तो देवस्य सन्निधौ।
कुरु भक्त्या महाभाग पूजामाशीर्गृहाण च॥'

यह आज्ञा लेकर भगवान् श्रीश्यामदेव की पूजन-प्रार्थना करके उत्साह से बहिःशाला में आवें।

वहाँ वेदिपर पञ्च-भूसंस्कारपूर्वक 'सभ्य' नामक अग्नि का स्थापन करके दो अथवा चार (१ आचार्य, २. ब्रह्मा, ३. गणपतिमन्त्रजापक, ४. श्रीश्यामस्तोत्र-मन्त्रजापक) विद्वान् ब्राह्मणों का वरण करे, और सङ्कल्पपूर्वक तीन ब्राह्मणों को भोजन करावे, अथवा आमान्न, (सोधा) या निष्क्रय

दक्षिणा देवें। तदनन्तर माता स्नान कराकर शुद्ध वस्त्र पहने हुए बालक को अपनी गोद में लेकर अग्नि के पश्चिम बैठे। इससमय यथाविधि कुशकण्डिका करें जिसमें—गरमजल, ठण्ढाजल, माखन या जमा हुआ घी या दही, श्येणी शलली (तीनजगह सफेद स्याही नामक जानवर का काँटा), तीन-तीन कुशपत्रों की नौ गांठें, ताम्बे से बँधा हुआ छुरा, बैल का गोबर, आदि विशेष पदार्थ रक्खे। पर्युक्षण करने के बाद ब्रह्मा का स्पर्श रखता हुआ बालक का पिता हवन करे। हवन करतेसमय 'स्वाहा' शब्द से अग्नि में स्रुव द्वारा घृत छोड़े, और कुछ आहुतिशेष घृत प्रोक्षणीपात्र में छोड़े। प्रथम एवं तेरहवीं आहुति में मन्त्र धीरे बोले, शेष सब मन्त्र स्पष्ट उच्चारण करें। हवन के बाद प्रोक्षणी का घी सूँघे या खाये। बाद में मार्जन, पवित्रप्रतिपत्ति, प्रणीताविमोक और पूर्णपात्रदान करें।

ज्योतिः शास्त्रोक्त शुभलग्न में (लग्नदान करने के बाद) पिता उत्तराभिमुख होकर माता की गोद में पूर्वमुख बालक को बैठाकर ठण्ढे जल में गरमजल 'उष्णेन०' मन्त्र से छोडकर उस जल में मक्खन या घी या दही छोड़े। इसके बाद मस्तक के दाहिनीओर के बालों का तीन हिस्सा करके पहले हिस्से को उस जल से 'सवित्रा प्रसूता०' मन्त्र पढ़कर भिगोवे, एवं श्येणी शलली से उन बालों को छांट (अलग) कर उनके ऊपर तीन कुशपत्र 'ओषधे०' मन्त्र से रखें, और उन बालों तथा कुशपत्रों को बांये हाथ से पकडकर दाहिने हाथ से ताम्र में मढ़े हुए लोहे के छुरे को 'शिवो०' मन्त्र से उठावें और छुरे को बालों के ऊपर 'निवर्तया०' मन्त्र से रखकर बालों को कुशपत्र सहित 'येनावपत्०' मन्त्र से काट देवें। काटे हुए बालों को उत्तर कीओर रखे हुए बैल के गोबर में छोड देवें। इसप्रकार दाहिनीओर बचे हुए दोनों हिस्सों के बालों को क्रम से मन्त्र के बिना ही भिगोवे, काँटे से अलग करें, कुशपत्र रखे, छुरा लेवें, बालों पर रखे, बालों को काटे, और उनको गोबर में छोड़े।

इसीप्रकार पीछे के बालों का भी तीन हिस्सा करके पहले हिस्से को दाहिनीओर के पहले हिस्से की भांति विधि से मन्त्रसहित काटे। बालकाटने में 'येनावपत्' यह मन्त्र न पढे–किन्तु 'त्र्यायुष०' यह मन्त्र पढ़े। पुनः पहले की तरह विना मन्त्र के पश्चिम के दोनों हिस्सों को काट देवें। फिर बायीं ओर तीन हिस्सा करके पहले हिस्से को विधिपूर्वक काटे। बालकाटने में **'येन भूरिश्चरा०'** यह मन्त्र पढ़े। अन्य दोनों भागों को मन्त्रपाठ के बिना ही पूर्ववत् काटे। इसप्रकार तीनों ओर काटकर छुरे को बालक के शिर के ऊपर प्रदक्षिण एकबार **'यत्क्षुरेण०'** इस मन्त्र से और दोबार बिना मन्त्र के घुमावे। तदनन्तर बचे हुए जल से बालों को भिगोकर वह छुरा नाईको **'अक्षण्वन् परिवप'** इस वाक्य से देवे। नाई उस छुरे से कुलधर्म के अनुसार **शिखा** रखकर शेष बाल काट दे। कटे हुए बालों का गोबरपिण्ड वस्त्रादि में बाँधकर गोशाला, पोखरी, तालाब या दूसरे जलाशय के पास गडवा देवे।

इसप्रकार चोटी रखने के प्रधानकार्यरूप 'चूडाकरण संस्कार' में बाल कटवाने के बाद बालक को उबटन, सुगन्धतैल आदि से अच्छीप्रकार स्नान कराकर नूतनवस्त्र पहनाकर गन्धमाला आदि से सुशोभित करके आचार्यादि वृत ब्राह्मणों की दक्षिणा, ब्राह्मणभोजन एवं भूयसी दक्षिणा का संकल्प करके आवाहित देवविसर्जन, छात-आरता आदि मङ्गलाचार कराकर, विद्वानों, ब्राह्मणों एवं पूज्यजनों का पूजन करके उनसे शुभ आशीर्वाद प्राप्त करें। बहिः शाला के कार्य पूर्ण होजाने पर भगवान् के लिए नैवेद्यभेंट लेकर उपस्थित होवे। भगवान् के साष्टाङ्ग दण्डवत्, श्रद्धानुसार पूजन* भेट करें, ओर देवाचार्य जो को प्रणाम करके चूडाकरणसंस्कार की समृद्धि के लिए एक 'वर' (पृ० ७१ टि०) देवे और आशीर्वाद लेकर

* सर्वोपचारासम्भवे गन्धपुष्पमात्रेणैव पूजा कार्येति तिथितत्त्वे स्थितमित्याचारेन्दौ। (१४१) संस्कारतत्त्वेऽपि समावर्तने द्रष्टव्यम् (पृ० १४०)

श्रद्धानुसार दस या न्यूनाधिक संख्या में ब्राह्मणों को भोजन करावे, दक्षिणा देवें। उनका आशीर्वाद लेकर स्वयं भी इष्ट-मित्रोंसहित प्रसाद पावें।

स्वतन्त्र जड़ूलाविधि

जिस मत में जडूला 'गर्भकेशनिकृन्तन' (गर्भ के बालों को काटना) है उस मत में निम्नलिखित विधि से जडूला उतरवाकर घर पर शुभ मुहूर्तमें चूडाकरणसंस्कार करना चाहिए।

प्रातःकाल श्रीश्यामकुण्ड में स्नान करके विधिपूर्वक गणपतिपूजन, पुण्याहवाचन करें। तदनन्तर बालक केसाथ भगवान् श्रीश्यामदेव के दर्शन केलिये आचारानुसार पूजन आदि की उपयुक्त सामग्री लेकर मङ्गल-गीतादि गाते हुए गठजोडा से भगवान् के मन्दिर में जावें। वहाँ भगवान् के पूजन-भोग-भेट करके प्रार्थना-नमस्कार करें, और भागवतजी के एक 'वर' (पृष्ठ ७१ टि०) भेट चढ़ाकर भागवताचार्य (मिश्र) जी से प्रार्थना करे कि—

"भगवन् सर्वधर्मज्ञ प्राप्तोऽहं कुलशासनात्।
वर्धनायाद्यकेशानां सुतायुष्याभिवृद्धये॥"

अर्थात्—हे धर्म के जानकार आचार्यजी! मैं अपनी कुलपरम्परा के अनुसार बालक की आयुवृद्धि की इच्छा से प्रथमकेशकर्तन-विधान के लिए उपस्थित हुआ हूँ। कृपया आप आज्ञा दीजिये।

तब आचार्य जी से—

'त्वं श्रेयः साधनायासि प्राप्तो देवस्य सन्निधौ।
कुरु भक्त्या महाभाग पूजामाशीर्गृहाण च॥'

अर्थात्—हे महानुभाव! कल्याण की वृद्धि केलिए आप भगवान् श्रीश्यामदेव के यहाँ उपस्थित हुए हैं, अतः भक्तिपूर्वक केशसंस्कार कीजिये, और आशीर्वाद लीजिये।

—यह आज्ञा लेकर मन्दिर के द्वार के बाहर मुण्डनस्थान पर (बाल उतारने की जगह) आकर बालों को नापितके द्वारा उतरवाकर नापित को नेग देकर पुनः भगवान् के मन्दिर में दर्शन, प्रणाम करके बालक के मस्तक पर रोली से स्वस्तिक का चिह्न कराकर प्रदक्षिणा, प्रार्थना करके उत्साह से भगवान् की प्रसन्नता की भावना करता हुआ निवासस्थान पर आये। वहाँ यथाविचार ब्राह्मणों का भोजन, दान-मान-सत्कार से पूजन करके आशीर्वाद ग्रहण करें, भगवान् का प्रसाद पावे। प्रत्येक एकादशी को रात्रि में श्रीश्याम-मन्दिर में एकादशी की कथा होती है। उसका श्रवण तथा व्यासजी का सत्कार करना चाहिये। अथवा यथासमय भगवान् श्रीश्यामदेव की कथा का श्रवण करें, और भगवान् की प्रसन्नता की भावना करें। जात-जडूला आदि के समय प्रसाद चूरमा के साथ चूरमा के दो बड़े लड्डू (पिंडो) बनाकर श्रीगोपीनाथ जी तथा श्रीहनुमान्जी केलिये ले जाना चाहिये।

कथाश्रवण की विधि

श्रीश्यामजी के भक्तसज्जन को जिसदिन कथा सुनने का विचार हो उस दिन स्थान को शुद्ध कराकर पूजनसामग्री उचितरूप से सजावें, और अपने इष्ट-मित्रों को कथा सुनने की सूचना कर देवे। कथासुनाने केलिये किसी विद्वान् को व्यासासन पर बैठने हेतु सादर निमन्त्रित करे। समय पर पण्डितजी की आज्ञानुसार पूजन करे और भक्तिपूर्वक सबके साथ कथा सुने। कथा सुनने केबाद जयघोष, आरती, स्तुति-प्रार्थना करके भगवान् का प्रसाद सबको बाँटे, और भगवान् श्रीश्यामजी की प्रसन्नता की भावना, तथा यथोचित गुणगान करता हुआ स्वयं भी प्रसाद लेकर अपने नियमानुकूल कार्य करे। कथा सुनने में विशेषरूप से उत्साह और विचार हो, अथवा किसी बड़ी कामना (रोगादिनिवृत्ति की इच्छा) से कथा सुनी जाये तो कथा सुनने के पूर्व यथाविधि यथाशक्ति ग्रहयाग करके कथाश्रवण करना चाहिये।

अन्त में हवन, ब्राह्मणभोजन आदि भगवान् श्रीश्यामदेव की प्रसन्नता के लिए करना चाहिये।

श्रीश्यामदेव की प्रसन्नता

भगवान् श्रीश्यामजी परमदयालु आशुतोष (शीघ्र प्रसन्न होनेवाले) देवता हैं। ये सत्यव्यवहार से बहुत प्रसन्न रहते हैं। असत्य अथवा छल का व्यवहार करने पर असन्तुष्ट होजाते हैं। भक्तजन अपनी मनःकामना की सिद्धि केलिए इनकी अनेकविध मान्यता (मनौती=बोल्यारी) बोलते हैं। जैसे—विष्णुयज्ञ, गायत्रीजप-पुरश्चरण, विष्णुसहस्रनाम द्वारा तुलसी-सहस्रार्चन, ब्राह्मणभोजन, सप्ताहकथा, पुराण एवं वेदपारायण कराना, सुवर्ण या चाँदी के छत्र अथवा पोशाक चढ़ाना, कनकदण्डवत् (साष्टाङ्ग प्रणाम) करते हुए खाटू की सीमा में प्रवेश करना, मन्दिर की प्रत्येक सीढ़ियों पर मिठाई, बरतन, द्रव्य आदि चढ़ाना, खाटू में हेडा (=स्थानीय संपूर्ण ब्राह्मणों का भोजन) कराना, अखण्ड दीपक जगाना, जप या हवनादि कराना, गृहस्थब्राह्मणों को मकान, अन्न, वस्त्र, भूमि, गौ आदि देना, विद्यार्थियों की पुस्तक, वस्त्र, अन्नादिवृत्ति दान के द्वारा सहायता करना आदि। इनमें भी भगवान् श्रीश्यामदेव—ब्राह्मणभोजन कराना, छात्रवृत्ति देना, पुराणों एवं वेदों के पारायण कराना, गायत्रीजप, तुलसी सहस्रार्चन सप्ताहश्रवण और हवन आदि से बहुत प्रसन्न होते हैं।

देवपूजा में उपचार-समर्पण का कारण

भक्तजन अपने उपास्य देवता को भगवान् तथा सर्वशक्तिसम्पन्न समझते हैं। वे भक्तों को अनन्त सुख-साधन की सामग्री देने का सामर्थ्य रखते हैं, तब उन्हें फल-पुष्प-प्रसाद आदि उपचार तथा मान्यतानुसार सामग्री क्यों चढाये जाते हैं, यह सामान्य जिज्ञासा होती है।

इसमें सन्देह नहीं है कि भक्त केलिए देवता इच्छानुसार सुखसाधन देने में समर्थ हैं। फिरभी वे भक्त के द्वारा चढ़ाए हुए सामान की अपेक्षा रखते हैं।

इसका कारण यह है कि वे भगवान् हैं। भगवान् उसे कहते हैं जिसमें छः प्रकार के 'भग' पूर्णरूप से रहते हों। ऐश्वर्य, धर्म, यश, लक्ष्मी, ज्ञान तथा वैराग्य—इनकी सर्वांशपूर्णता 'भग' है। इनमें धर्म की पूर्णता भी गिनायी गयी है। धर्मशास्त्रों में बतलाया गया है कि दूसरे की वस्तु को उसके बिना दिये लेना पाप है। हमारी या किसी विक्रेता की या पृथ्वी पर उपजी सभी वस्तुयें जीव के पूर्वजन्म या इस जन्म के उचित-अनुचित कर्म से उसके पास आती हैं और वह उस पर अपना स्वामित्व समझता है। जब सृष्टि की सभी वस्तुएँ किसी भी जीव के अधिकार की हैं तो उन वस्तुओं या उनके किसी अंश को उस जीव के बिना दिये देवता यदि अपनी शक्ति से लेते हैं तो यह अधर्म होगा। इससे इनकी धर्म की पूर्णता क्षीण हो जायेगी। धर्मशास्त्रों में न्यायपालिका के अठारह विवादपद (मुकदमा के वर्ग) बताये गये हैं। उनमें 'अदत्तादान' (नहीं दी हुई वस्तु का अपहरण) भी है। अतः अन्याय तथा अधर्म को बचाने केलिए देवता किसी वस्तु पर स्वतः अधिकार नहीं करते हैं। इसकारण हमें देवताओं केलिए छोटी-बड़ी सभी वस्तुएँ समर्पित करनी चाहिये। हम जब मनौती (मान्यता) मन या वाणी से मान लेते हैं, तब देवता उसकी आशा करते हैं। वह पूरी न होनेपर उनको अपना भाग न मिलनेपर असन्तोष होता है। अधिक असन्तोष होजाने पर व्यक्ति को हानि होने लगती है। अतः प्रत्येक मनुष्य को अपनी मनौती यथासम्भव शीघ्र पूरी कर देनी चाहिये। और देवता की प्रसन्नता के लिए शक्ति, स्थिति, देश-काल का विचार कर देवपूजा में सभी वस्तुओं को भाव-श्रद्धा से सजाकर भेंट करना चाहिये। यही देवपूजा में सामग्रीसमर्पण का रहस्य है।

भगवत्प्रार्थना तथा कार्यसिद्धि

भक्तजनों की प्रार्थना पर भगवान् कार्यसिद्धि अवश्य करते हैं। परन्तु प्रार्थना अपने स्वरूप (व्यक्तित्व) के विरुद्ध, अथवा अकर्मण्यता की पोषक या

अनपराधी, निर्दोष को सताने आदि दुर्विचार (असत्) की नहीं होनी चाहिए। कार्यसिद्धि में प्रधान कारण है—देवता और उनकी प्रसन्नता के लिए किये जाने-वाले कार्य में 'श्रद्धा'। जैसे प्राणविहीन शरीर पर सामान्यतया बिजली का असर नहीं होता उसी तरह बिना श्रद्धा के कार्य का फल प्रायः 'नहीं' हो जाता है। इसीलिये भगवती श्रुति ने कहा है—

'श्रद्धया सत्यमाप्यते' (यजुर्वेद १९।३०)

प्राचीनों ने भी कहा है—

येषां श्रौतादिकर्माचरणसरणिषूद्गाढरागानुबन्धो
येषां स्वप्नेऽपि तर्काहतनिगमकला नास्ति नास्तिक्यबुद्धिः।
येषामन्तः प्रकामं शिशिरयतितरां भक्तिपीयूषधारा
तेषामेवेष्टसिद्धिर्भवति गुरुगवीस्थाण्णुविश्वासभाजाम्॥

'जिनका श्रुति-स्मृति-पुराण-प्रतिपादित कर्मों को करने में पूर्ण अनुराग है, जिनकी स्वप्न में भी कुतर्कों द्वारा शास्त्र के महत्त्व को नष्ट करनेवाली नास्तिक बुद्धि नहीं है, जिनके अन्तःकरण भक्तिरूप अमृत की धारा से पूर्ण शीतल हो रहे हैं, जिनको गुरु की आज्ञा पर पूर्ण विश्वास है उन पुरुषों की अभीष्टसिद्धि अवश्य होती है।'

श्रद्धा से किये गये कार्य में (कभी-कभी) असफलता रहने पर अपने पूर्वसंचित पाप का अवशेष या भावी किसी विशेषकल्याण के लिए भगवान् का अनुग्रह समझना चाहिये। देवताओं के उद्देश्य से श्रद्धापूर्वक किया हुआ सत्कर्म कभी विफल नहीं हो सकता है—

'नहि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति।'
(श्रीमद्भगवद्गीता ६।४०)

श्रद्धा और विधिपूर्वक कार्य करने पर भी कभी-कभी जो असफलता दिखाई पड़ती है उसके लिये निम्नलिखित भगवत्प्रार्थनासंबन्धी भारतीय विचारों पर ध्यान देना आवश्यक है।

भारतीय संस्कृति और परम्परा में यह आदेश है कि जो भी काम करो, एतदर्थं एक बार भगवान् से प्रार्थना कर दो कि 'भगवन् ! मैं कार्य कर रहा हूँ आप सफलता दीजिये—तन्मे राध्यताम् (वा० सं० १।५) ।' प्रार्थना के साथ भक्तगण मान्यता (बोल्यारी या मनौती) भी मानते हैं । भगवान् की इस प्रार्थना या मान्यता में कई विचारक 'अपनी आत्मदुर्बलता का प्रकाशित कराना' बताते हैं जो 'व्यक्ति के लिए लज्जा की बात कही जा सकती है' यह कहते हैं । परन्तु वस्तुतः इसमें तत्त्व दूसरा ही है । प्रार्थना या मान्यता में दो भाव रहते हैं, एक तो यह कि कार्य हमारे पुरुषार्थ से होना निश्चित है, पर भगवान् की कृपा इसलिए आवश्यक है कि हममें उसके करने का अभिमान न आवे । दूसरा यह कि प्रयत्न करने भी यदि हमारे इस जन्म के या पूर्वजन्म के किये हुए कर्मों का कोई ऐसा प्रभाव हो जो इस काम में बाधा उपस्थित कर सकता हो, वह दब कर ही क्षीण हो जाय, और कार्य पूरा हो जाय । क्योंकि पहले के कर्मों का प्रभाव अवश्य होता है, और वह प्रकट भी होता है । यदि काम को पूरा करानेवाले संस्कार प्रबल रहते हैं, तो वह छोटी बाधा के रूप में ही अस्पष्ट रूप से प्रगट होकर समाप्त हो जाता है । परन्तु यदि कार्य पूरा करानेवाले संस्कार कमजोर होते हैं तो काम पूरा होने की आशा झलकती है, पर काम की सफलता में बाधायें अधिक होने लगती हैं और काम सफल नहीं हो पाता है । यदि किसी के किसी काम को बनाने वाले या नष्ट करने वाले संस्कार बिलकुल नहीं हैं तो उस मनुष्य को उस काम में प्रवृत्ति नहीं होती है । इसलिये कार्य पूरा करानेवाले संस्कारों को बल देने के लिए भगवान् को प्रार्थना आवश्यक है, और काम को नष्ट करनेवाले संस्कारों को क्षीण करने केलिए भी भगवत्प्रार्थना आवश्यक है । कभी-कभी मान्यता (मनौती, प्रार्थना) करने पर भी सफलता नहीं होती, उसमें यही समझना उचित है कि काम को पूरा कराने वाले संस्कारों को जितना

बल मिलना चाहिये था उतना नहीं मिला। इसलिए काम पूरा न हो सका। केवल पौरुष पर विश्वास करनेवाले जिन व्यक्तियों का ईश्वरप्रार्थना न करने पर भी जो काम पूरा होता है उसमें पूर्वकृत संस्कारों की प्रबलता है। उन्हें भी कभी अपने पूर्ण पौरुष करने पर भी असफलता मिलती है। पौरुषवादी असफलता का कारण ढूँढता है, पर वस्तुतः 'दैव' या 'अदृष्ट' पर विश्वास कियेबिना उचित उत्तर नहीं मिलता। हमारा कौनसा संस्कार प्रबल है और कौनसा दुर्बल है इसकी जानकारी के लिए 'योगविद्या' और 'ग्रहविद्या' उपयोगी होती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने संस्कारों—जिसके सामूहिक रूप को भाग्य कहते है—को जानने की चेष्टा करता है पर देख नहीं पाता, इसीलिए भाग्य को 'अदृष्ट' भी कहते हैं। अदृष्ट जिसको भाग्य, दैव, प्रारब्ध या पूर्व के संस्कार भी कहते हैं, वे सभी कामों में अपना प्रभाव डालते हैं। सर्वसाधारण का सर्वदा योग-विद्या या ग्रहविद्या के विद्वानों के साथ सलाह लेना या स्वयं विचारना असंभव है इसलिये प्रतिदिन ईश्वर के स्मरण-पूजन-ध्यान करने का नियम बनाया गया है। जिससे आत्मशुद्धि तथा मन की स्फूर्ति तो होती ही है उसके साथ संस्कारों को भी उचित बल मिलता है। यही भारतीयसंस्कृति में नित्य उपासना का रहस्य है और यही देवता के लिये मनौती मानने का तथा धर्मादा निकालने का कारण है।

धर्मादाय (धर्मार्थ)

प्रायः सभी भक्त शक्ति, श्रद्धा तथा विचार के अनुसार अपनी आय में से कुछ हिस्सा भगवान् श्रीश्यामदेव के नाम से या धर्मादा केलिये अलग निकालते हैं। कुछ भक्त श्रीश्यामदेव के निमित्त अलग द्रव्य तथा धर्मादाय का अलग द्रव्य निकालते हैं। प्राचीनभक्त ऐसे द्रव्य को अपने काम में किसी भी प्रकार उपयोग करना अनुचित समझते थे, और इसका खर्च

बहुत ध्यान से उचित स्थान पर करते थे। परन्तु आजकल भक्त इसके खर्च करने में बहुत कम विचार करते हैं। किसी भी व्यक्ति, समाज, देश या संस्था को देने के लिए इस कोष का मुक्तहस्त से उपयोग किया जाता है। विचारतः जो द्रव्य केवल भगवान् श्रीश्यामदेव के ही निमित्त निकाला गया है, उसका खर्च श्रीश्यामदेव के पूजन, हवन, प्रसाद, कथा, उनकी प्रीति केलिए वेदपाठ, स्तोत्रपाठ, पुराणपाठ, पुरश्चरण, यज्ञ, ब्राह्मणभोजन, पण्डितसभा, वसन्तपूजा, ब्राह्मणसत्कार में ही करना चाहिए। जिस द्रव्य में धर्मादा और श्रीश्यामदेव के द्रव्य की पृथक् भावना नहीं है, उस द्रव्य का खर्च उपर्युक्त काम के अतिरिक्त अपने ग्रहादि-अरिष्टशान्ति, तीर्थयात्रा, औषधालय, संस्कृतपाठशाला, धर्मशाला, सर्वसाधारण के लिए कुआँ, बावली प्राचीनघाट एवं देवमन्दिर के जीर्णोद्धार, या नवीन निर्माण, प्याऊ, विश्रामगृह, अनाथ-अपङ्ग-विधवा-विद्यार्थी या आपत्तिग्रस्त व्यक्ति की सेवा, अकाल, महामारी, बाढ़, भूकम्प, अग्न्युत्पात, राजा या राजचक्र द्वारा निर्वासित निरपराधी व्यक्तियों की सहायता, आदि में व्यय करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को यह सर्वदा एवं सर्वथा ध्यान रखना चाहिए कि धर्मार्थं द्रव्य का खर्च या तो श्रुति-स्मृति-पुराणप्रतिपादित कर्तव्य एवं उसके पोषण, वर्धन, प्रसार करने वाले उद्यम में हो, या विशुद्ध मानवता के सम्बन्ध से सेवाभाव में हो। जिसके अन्त में साक्षात् या परम्परया कुटिलता, अधर्म, अनाचार, निर्दयता का प्रादुर्भाव, परिवर्धन या प्रोत्साहन दिखलायी पड़ता हो—ऐसी संस्था, व्यक्ति, वर्ग या देश को धर्मार्थद्रव्य कभी नहीं देना चाहिए। उदाहरणार्थ—ऐसे विश्वविद्यालय, कालेज या स्कूल या अन्य संस्था जिनमें देशी या विदेशी ऐसी शिक्षाका प्रचार, प्रसार या अध्यापन होता है, जिससे भारतीयता, हिन्दुत्व और श्रुतिस्मृतिपुराणप्रतिपादित धर्मनिष्ठा पर आघात पहुँचता है, तथा ऐसी संस्थाएँ जिनमें अहिंसा, विश्वबन्धुत्व, मानवता के नाम पर पदलोलुपता, प्रतिक्रिया, हठवादिता, अशास्त्रीयता

और स्वार्थ की भावनाएँ अन्तर्हित है, उनको धर्मार्थ द्रव्य में से नहीं देना चाहिये।

आज सर्वविध उचित-अनुचित, सात्विक अथवा आसुर प्रवृत्ति के कार्य या भावों को प्रसारित करने वाले व्यक्ति, समाज, मठ, आश्रम, संस्था, आदि द्रव्य के अभाव में कार्य नहीं कर सकते हैं। सभी कार्य दानदाताओं द्वारा प्रेम या दबाव से धन प्राप्त करके ही पनपते हैं। द्रव्य-दाताओं के सामने ऐसी परिस्थितियाँ, आकर्षण और लाभ दिखाये जाते जाते हैं कि वे उनसे बाध्य होकर धन द्वारा सहायता करें। विशेषतः आकर्षण तथा लाभ का प्रदर्शन, अधर्मप्रधानक्षेत्रों द्वारा अधिक उपस्थित किया जाता है। कभी तो द्रव्यदाताओं के सामने विषम परिस्थिति भी आ जाती है, जिससे देश, समाज, व्यक्ति का अहित होना स्पष्ट परिज्ञात रहने पर भी आत्मरक्षा केलिये द्रव्य देना, सहायताकरना, आवश्यक हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में अपनी आत्मरक्षार्थं (आत्मदुर्बलता के कारण) दिये गये द्रव्य केलिए शास्त्रकारों ने कहा है कि—

'अदत्तं तु भय-क्रोध-वेग-शोक-रुजान्वितैः।
तथोत्कोच-परीहास-व्यत्यास-च्छलयोगतः॥
बाल-प्रमूढास्वतन्त्र-मत्तोन्मत्तापवर्जितम्।
कर्ता ममायं कर्मेति प्रतिलाभेच्छया च यत्॥
अपात्रे पात्रमित्युक्ते कार्यं चाधर्मसंहिते।
यद् दत्तं स्यादविज्ञानाददत्तं तत्प्रकीर्तितम्॥ (नारदस्मृति)

अर्थात्—'(१) भय (२) क्रोध (३) शोक (४) रोग का वेग (५) घूस (६) हँसी (७) अनुचित अदला-बदली (८) छल (९) बाल्यावस्था (१०) घबराहट (११) अस्वतन्त्रता (१२) नशा (१३) सन्निपात (१४) प्रत्युपकार की इच्छा (१५) अनधिकारी के प्रति अधिकारी की समझ (१६) अधर्म से

संबन्ध रखने वाले कार्य-खेल तमाशा—इन सोलह परिस्थितियों में दिया गया या दातव्य धन 'अदत्त' कहलाता है, इसका धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः आत्मरक्षार्थ उक्त सोलह परिस्थितियों में दियेगये द्रव्य से धर्म की उत्पत्ति नहीं समझनी चाहिए।

धर्मार्थद्रव्य का आवश्यक उपयोग

आजकल की देश तथा समाज की आन्तरिक परिस्थितियों को देखते हुए धर्मार्थ द्रव्य को निम्नलिखित कार्यों में लगाना अधिक उपयोगी हो सकता है—

१. आर्षग्रन्थों के यथार्थ अनुगामी सर्वजनहितकारक सत्पथ के प्रचार प्रसार के लिए—

(क) भारतीय संस्कृति, सदाचार एवं परम्परा को शास्त्रीय, व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक दृष्टि से परखकर सत्यतत्त्व को उपस्थित करनेवाले साहित्य का प्रकाशन करना।

(ख) निन्दास्तुति से दूर रहनेवाले सात्त्विक शास्त्रव्यसनी विद्वानों का आदर एवं उनकी स्थिर सहायता करना।

(ग) कर्मनिष्ठ उपदेशकों द्वारा आर्षग्रन्थों के तत्त्वों का प्रचार कराना।

२. वेदान्त अर्थात् ज्ञानकाण्ड के वास्तविक रहस्य को न जानते हुए भी उसके सिद्धान्त को अनधिकारचेष्टापूर्ण रीति से प्रसार के कारण अपने देश, समाज एवं व्यक्तियों में वर्णविभाग, आश्रम-विभाग, एवं तन्मूलक व्यवस्थाओं के प्रति दुर्भावनाओं, तथा अपने धर्म, कर्म, शास्त्र, आचार केप्रति व्याप्त असद्भावनाओं को दूर करने के लिए देश-काल-परिस्थिति, शक्ति, अधिकार, बुद्धि की सीमा, मानवता आदि का वास्तविक स्वरूप बतलाकर, ज्ञानकाण्ड का व्यवहार, कर्मकाण्ड तथा उपासनाकाण्ड से सामञ्जस्य समझाकर, देश की बढ़ती हुई अकर्मण्यता, अनधिकारचेष्टा, सर्वसाधारण की अनुचित महत्त्वलिप्सा, अव्यवहार्य

समानता, अनैतिकता, अन्यायपरायणता, कामलोलुपता, भोगप्रधानता अनीश्वरवादिता आदि को दूर करनेवाले उपायों का प्रयोग करना।

३. प्राचीन आर्षग्रन्थों के तात्पर्य समझने के लिए संस्कृतसाहित्य के प्रत्येक शास्त्र की शिक्षा के लिए अध्ययन तथा अध्यापन की बिना किसी हानि-लाभविचार के (अहैतुकी प्रीति) से व्यवस्था करना।

४. वेदों तथा भारतीयपरम्परा के रक्षार्थ वेदपारायण, वेदाध्ययनशाला, यज्ञ, पुरश्चरण, संस्कार, अनुष्ठान आदि कराना।

५. पुण्यनदियों के प्राचीन टूटे हुए जराग्रस्त घाटों की मरम्मत कराना तथा तीर्थस्थानों का जीर्णोद्धार कराना आदि।

यह एक साधारण निर्देश है। अपने नाम, यश, प्रतिष्ठा के लिए तो सभी व्यक्ति काम करते हैं। अनेक विद्यालय, महिलाविद्यालय, औषधालय, धर्मशालाएँ, स्मृतिभवन, मन्दिर बनाये जाते हैं। परन्तु अत्यधिक आवश्यक उक्त कार्यों के लिए प्रायः ध्यान नहीं दिया जाता है। विचारशील एवं धर्मप्रेमी सज्जनों को इस ओर भी ध्यान देना चाहिए और देश की बढती हुई अशान्ति तथा अनैतिकता का मूल खोजकर उसके निराकरण का सफल प्रयत्न करना चाहिये।

श्रीश्यामदेव से सम्बन्धित साहित्य

भगवान् श्रीश्यामदेव से सम्बद्ध विपुल साहित्य भक्तों ने श्रद्धा तथा विचार के अनुसार महिमा के वर्णनार्थ प्रकाशित किया है। इस सम्पूर्ण साहित्य के तीन विभाग इसरूप में किये जा सकते हैं—शास्त्रीयसाहित्य, स्तोत्रसाहित्य, तथा महिमा-भजनसाहित्य। शास्त्रीयपुस्तकों में पुराणों के मूल आधार के अनुसार कथा एवं पूजादिविधि का वर्णन है। स्तोत्रपुस्तकों में संस्कृत या हिन्दी के पद्यों में महिमा का वर्णन तथा प्रार्थना है। भजन की पुस्तकों में भक्तगणों केद्वारा विविधभाषाओं में विरचित गायन के

योग्य उपयोगी रचनायें हैं। इस समस्त साहित्य का परिचय देना सम्भव नहीं हैं। अतः केवल शास्त्रीयसाहित्य का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

श्रीश्यामदेवकथा

श्रीश्यामदेव की मूल कथा, स्कन्दपुराण में माहेश्वरखण्डान्तर्गत (द्वितीय) कौमारिकाखण्ड (वेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बई मुद्रितपुस्तक) के ६० से ६६ अध्यायों में है। स्कन्दपुराण में इसके पूर्व ५९ तथा ६० अध्याय के ५९ श्लोक तक भीमपुत्र घटोत्कच के विवाह की कथा है। अ० ६१ का गणपतिविधान, अ० ६२ का क्षेत्रपालोत्पत्ति, अराजितापूजा, अ० ६५ का कोलेश्वरी वत्सेश्वरी आदि के माहात्म्य आदि प्रसङ्ग जो श्रीश्यामदेव के चरित्र से सम्बन्ध नहीं रखते हैं उन प्रसङ्गों का इस कथा में समावेश नहीं है। पाँचों अध्यायों की श्लोक संख्या ३४५ है। अध्याय के क्रम से श्लोकसंख्या इसप्रकार है—

प्रथम अध्याय १५	चतुर्थ अध्याय ७६
द्वितीय अध्याय ५६	पञ्चम अध्याय ११५
तृतीय अध्याय ८३	योग ३४५ श्लोक

कथा सुनने एवं पढने के योग्य है। इसमें श्रीश्यामजी की वरप्राप्ति आदि का स्पष्ट उल्लेख है। स्थान-स्थान पर अनेक धार्मिक एवं सामाजिक उपदेश बहुत सुन्दर रीति से कहे गये हैं। बर्बरीक और भीम के प्रश्नोत्तर में तीर्थयात्रा के कर्तव्य एवं शुद्ध (अनिन्दित) कर्तव्यों द्वारा जीवननिर्वाह का सुन्दर उपदेश है। पितृभक्ति, देवभक्ति, दृढ़संकल्प, वर्णाश्रमधर्म आदि के महत्वपूर्ण उपदेश भी पर्याप्त है।

यह कथा अनुवादसहित प्रकाशित की गयी है। कथाश्रवण की शास्त्रीयविधि श्रीश्यामदेव भगवान् के षोडशोपचारपूजन के विधान के साथ मुद्रित है। कथा की विधि में श्रीश्यामदेव की पूजा के पौराणिक

श्लोक विशेषतः बृहन्नारदीयपुराण से लिये गये हैं। कतिपय यदि अन्य श्लोक हैं तो उनके लिये ग्रन्थ का सङ्केत है तथा वेदमन्त्रों का प्रतीक से निर्देश किया गया है। कथा के हिन्दीअनुवाद में समझने की सुविधा के लिये अक्षरार्थं की उपेक्षा न करते हुए विशेषार्थ कर दिया गया है। जिससे वाक्यार्थशैली में संस्कृत से कुछ विभिन्नता प्रतीत होना सहज है।

श्रीश्यामदेवेतिवृत्त

यह भारतसार (वेङ्कटेश्वर प्रेस, बम्बई मुद्रितपुस्तक) के ५८ और ७८वें अध्याय का कुछ अंश है। इसकी दोनों अध्यायों की श्लोकसंख्या ४६ (प्रथम अध्याय में ३०; द्वितीय अध्याय में १६) है। प्रथम अध्याय में वर्वरोक का देहत्याग है। द्वितीय अध्याय में पाण्डवों के अभिमान का भंग तथा वर्वरीक का श्रीकृष्ण से सायुज्य बतलाया गया है। यह इतिवृत्त भी मुद्रित किया गया है।

श्रीश्यामजी के स्तोत्र

श्रीश्यामस्तव—भगवान् श्रीश्यामदेव षोडशकलावतार पूर्णब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण से अभिन्न हैं। अतः श्रीश्यामदेव को स्तुति-कीर्तनादि श्रीकृष्णावतारके लीलाकथास्वरूपों के वर्णन द्वारा होता है। तदनुसार प्राचीन श्यामभक्त खाटूनिवासी पं० रामप्रसाद मिश्र जी ने यह भावपूर्ण स्तोत्र बनाया हैं। भक्त की यह रचना सिद्ध स्तोत्र है।

श्रीश्यामस्तोत्र—यह स्तोत्र भी पं० रामप्रसाद जी की फलप्रद मनोहर रचना है। पण्डितजी का जन्म श्रीश्यामजी के मिश्र (पौराणिक) कुल में हुआ था। आप विद्वान् एवं भगवान् श्रीश्याम के अनन्य भक्त थे। भक्ति की अनन्यता के कारण इनके स्तोत्रों में बहुत चमत्कार है। स्तोत्रपाठ का फल जो कवि ने अपने शब्दों में द्वितीय स्तोत्र के १२, १३ श्लोक में कहा है, उसका अनेक उपासकों ने प्रत्यक्ष अनुभव किया है। प्रतिदिन निश्चितसंख्या में पवित्रता से शुद्ध पाठ के द्वारा मनोवांछित फल

प्राप्त किया जा सकता है। दोनों स्तोत्रों में प्रत्येक श्लोक का चतुर्थ चरण एक ही है। द्वितीयस्तोत्र में चरण का अन्तिम पद 'पापनाशनम्' आदि प्रत्येक श्लोक में बदल जाता है।

श्रीश्यामसंस्तवः—यह छोटा गद्यस्तोत्र है तथा महर्षि वेदव्यास कृष्णद्वैपायन के विरचित स्कन्दपुराण की 'श्रीश्यामदेव कथा' अ० ५ में उपलब्ध है। इस अल्पकाय स्तोत्र में स्कन्दपुराण की सम्पूर्ण कथा सूत्ररूप में वर्णित की गई है।

श्रीश्यामदेवाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

इस स्तोत्र में भगवान् श्रीश्यामदेव के १०८ नाम प्रतिपादित हैं। इसकी रचना श्रीश्यामदेव के अनन्यभक्त खाटूधामनिवासी संस्कृतशास्त्रों के प्रकाण्डविद्वान् आचार्य गोपालचन्द्र मिश्रजी ने की थी। इस स्तोत्र का पाठ तथा नाममन्त्रों से भगवान् की अर्चना विशेष फलप्रद है। श्रीश्यामदेव के प्रत्येक नाम में उनका गुणानुवर्णन किया गया है।

श्रीश्यामार्चाविधानम्

इसमें शास्त्रीयरीति से सर्वतोभद्रमण्डल पर प्राणप्रतिष्ठापूर्वक भगवान् श्रीश्यामदेव की राजोपचार पूजनविधि तथा हवनविधि है। इसका प्रणयन भी भगवद्भक्त वेदमर्मज्ञ आचार्य गोपालचन्द्र मिश्रजी ने किया था। इसमें वेदमन्त्रों केसाथ श्रीश्याम भगवान् की संस्कृतश्लोकों से भक्तिप्रवण पूजा वर्णित की गयी है।

उपसंहार

भगवान् श्रीश्यामदेव की महिमा अपरिमित है। अतः भगवान् का यथार्थ स्वरूप उनके गुण, धाम तथा देवतीर्थयात्रा की महिमा, कृपा के प्रत्यक्ष अनुभव आदि का पूर्ण वर्णन करना लेखन की सीमा से परे है तथा

मानव के लिये असम्भव है। तथापि अपनी सीमितमति के अनुसार कुछ निरूपण यथाशक्ति प्रस्तुत किया गया है। उक्त शब्दपुष्पों से श्रीश्यामदेव की आराधना केद्वारा दयामय भक्तवत्सल श्रीकृष्णस्वरूप भगवान् श्रीश्यामदेव से प्रार्थना है कि स्वरूपवर्णन में अल्पज्ञता के कारण हुई त्रुटियों को क्षमा करते हुए सर्वदा सुबुद्धि, सदसद्‌विचार की क्षमता, कर्तव्यनिष्ठा के साथ अपने चरणों की भक्ति को सुस्थिर बनायें।

इति विद्यातपोयोनिरयोनिर्विष्णुरीडितः ।
वाग्यज्ञेनार्चितः श्यामः प्रीयतां दीनवत्सलः ॥

द्वितीय परिच्छेद

आराधनाविधि तथा स्तोत्रकथा

यत्पादयोरशठधीः सलिलं प्रदाय
दूर्वाङ्कुरैरपि विधाय सतीं सपर्याम्।
अप्युत्तमां गतिमसौ भजते त्रिलोकीं
दाश्वानविक्लवमनाः कथमार्तिमृच्छेत्॥
(श्रीमद्भागवतम् ८।२२।२३)

श्रीश्यामार्चाविधानम्

आचम्य प्राणानायम्य पवित्रे धृत्वा रक्षादीपं संस्थाप्य मंगलमन्त्रान् पठित्वा गणपतिस्मरणं विधाय, दक्षिणहस्तेऽर्घपात्रं गृहीत्वा तत्र कुशाक्षतपुष्पफलद्रव्यजलान्यादाय सङ्कल्पं कुर्यात्—

"ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः। श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्तमानस्य अद्य श्रीब्रह्मणो द्वितीये परार्द्धे प्रथमवर्षे (आदितः एकपञ्चाशत्तमे वर्षे) प्रथमदिवसे द्वितीये यामे तृतीये मुहूर्ते श्रीश्वेतवाराहकल्पे स्वायम्भुवादिचतुर्दशमन्वन्तराणां मध्ये सप्तमे वैवस्वतमन्वन्तरे कृतत्रेताद्वापरकलिसंज्ञकानां चतुर्युगाणां मध्ये वर्तमानेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे तत्प्रथमचरणे पञ्चाशत्कोटियोजनविस्तीर्णभुमण्डलान्तर्गते सप्तद्वीपमध्यवर्तिनि जम्बूद्वीपे तत्रापि नवखण्डानां मध्ये परमपवित्रे भारते वर्षे कुमारिकाखण्डे आर्यावर्तान्तर्गतब्रह्मावर्तैकदेशे अमुकक्षेत्रे श्रीगङ्गायमुनयोरमुके तीरे बौद्धावतारे वैक्रमे अमुकसंख्यापरिमिते संवत्सरे प्रभवादिषष्टिसंवत्सराणां मध्ये अमुकनाम्नि संवत्सरे अमुकायने अमुक ऋतौ ॐ तत्सदद्य महामाङ्गल्यप्रदमासोत्तमे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकयोगे अमुककरणे अमुकराशिस्थिते श्रीसूर्ये

अमुकराशिस्थिते श्रीदेवगुरौ अमुकराशिस्थिते चन्द्रे शेषेषु ग्रहेषु यथास्थानस्थितेषु एवं ग्रहगुणगणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुकगोत्रः अमुकशर्मा श्रीश्यामदेवप्रसादसिद्धिद्वारा अस्मिन् जन्मनि जन्मान्तरे वा कृतकायिक-वाचिक-मानसिक-ज्ञाताज्ञात - सांसर्गिकदोषजनितसद्बुद्धिप्रतिबन्धपरिहारपूर्वकं मम सकुटुम्बस्य सपरिवारस्य दीर्घायुरारोग्यैश्वर्यस्थिरलक्ष्मी-निरवच्छिन्न-सन्तति-कीर्तिलाभ-सौभाग्य-शत्रुपराजयादिसदभीष्टसिद्ध्यर्थं (अमुककार्यसिद्ध्यर्थं वा) श्रीश्यामदेवपूजनमहं करिष्ये" इति संकल्प्य निर्विघ्नकामनया (साम्बं) गणपतिं संपूज्य मातृकापूजनं वसोर्धारापूजनं नान्दीश्राद्धम् अग्निस्थापनं ग्रहपूजनं च कुर्यात् प्रधानपूजावसरे श्रीश्यामदेवस्य प्रधानपूजनं कुर्यात् ।

जप प्रधानपूजनोपक्रमः। तत्रादौ—"ॐतत्सदद्य अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रः अमुकशर्मा [ममेह जन्मनि जन्मान्तरे वा कृतकायिक-वाचिक-मानसिक-सांसर्गिकदोषपरिहारार्थमिहामुत्र सुखसौभाग्यसन्तत्यादिफलप्राप्त्यर्थं] श्रीश्यामदेवप्रीतये अस्मिन् सर्वतोभद्रपीठे वेदमन्त्रैर्नाममन्त्रैर्वा ब्रह्मादिषट्पञ्चाशद्देवतावाहनपूर्वकं श्रीश्यामदेवतावाहनं पूजनं च करिष्ये।" इति सङ्कल्प्य अक्षतान् गृहीत्वा सर्वतोभद्रदेवानावाहयेत्—

स्थानानि	वेदमन्त्रप्रतीकाः	देवतानाममन्त्राः
१. मध्ये कर्णिकायां—	ब्रह्म जज्ञानम् १३।३	ॐ ब्रह्मणे नमः (ब्रह्माणमावाहयामि स्थापयामि)।*
२. उत्तरे वाप्याम्—	वयꣳ सोम ३।५६	ॐ सोमाय नमः।
३. ईशान्यां खण्डेन्दौ—	तमीशानम् २५।१८	ॐ ईशानाय नमः।
४. पूर्वे वाप्याम्—	त्रातारमिन्द्रम् २०।५०	ॐ इन्द्राय नमः।
५. आग्नेय्यां खण्डेन्दौ—	त्वन्नो अग्ने २१।३	ॐ अग्नये नमः।

* उत्तरत्रापि सर्वत्र मूलमन्त्रं (प्रणवादि नमोऽन्तं देवतायाश्चतुर्थ्यन्तं नाम) समुच्चार्य द्वितीयान्तं देवतापदयुतं 'आवाहयामि स्थापयामि' इत्यपि समुच्चारयेत्। यथा 'ॐ सोमाय नमः सोममावाहयामि स्थापयामि' इति।

स्थानानि	वेदमन्त्रप्रतीकाः	देवतानाममन्त्राः
६. दक्षिणे वाप्याम्—	असि यमः २९।१४	ॐ यमाय नमः।
७. नैर्ऋत्यां खण्डेन्दौ—	असुन्वन्तमयज १२।६२	ॐ निर्ऋतये नमः।
८. पश्चिमे वाप्याम्—	इमं मे वरुण २१।१	ॐ वरुणाय नमः।
९. वायव्यां खण्डेन्दौ—	आ नो नियुद्भिः २७।२८	ॐ वायवे नमः।
१०. वायुसोमयोर्मध्ये भद्रे—	सुगावो देवाः ८।१८	ॐ अष्टवसुभ्यो नमः।
११. सोमेशानयोर्मध्ये भद्रे-	रुद्राः सꣳसृज्य ११।५४	ॐ एकादशरुद्रेभ्यो नमः।
१२. ईशानेन्द्रयोर्मध्ये भद्रे—	यज्ञो देवानां ८।४	ॐ द्वादशादित्येभ्यो नमः।
१३. इन्द्राग्निमध्ये भद्रे—	या वाङ्कशा ७।११	ॐ अश्विभ्यां नमः।
१४. अग्नियमयोर्मध्ये भद्रे-	विश्वेदेवास आगत ७।३४	ॐ सपैतृकविश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः।
१५. यमनिर्ऋतिमध्ये भद्रे—	अभित्यं देवम् ४।२५	ॐ सप्तयक्षेभ्यो नमः।
१६. निर्ऋतिवरुणमध्ये भद्रे—	नमोस्तु सर्पेभ्यो १३।६	ॐ सर्पेभ्यो नमः।
१७. वरुणवाय्वोर्मध्ये भद्रे—	ऋताषाडृतधामा १८।३८	ॐ गन्धर्वाप्सरोभ्यो नमः।
१८. ब्रह्मसोमयोर्मध्ये वाप्याम्—	यदक्रन्दः २९।१२	ॐ स्कन्दाय नमः।
१९. स्कन्दस्योत्तरे वाप्याम्—	आशुः शिशानः १७।३३	ॐ नन्दिने नमः।
२०. वृषभस्योत्तरे वाप्याम्—	अव रुद्रमदी ३।५८	ॐ शूलमहाकालाभ्यां नमः।
२१. ब्रह्मेशानमध्ये शृंखलायाम्—	इन्दुर्दक्षः श्येन १८।५३	ॐ दक्षेभ्यो नमः।
२२. ब्रह्मेन्द्रमध्ये वाप्याम्—	अंबे अंबिके २३।१८	ॐ दुर्गायै नमः।
२३. दुर्गायाः पूर्वे वाप्याम्—	इदं विष्णुः ५।१५	ॐ विष्णवे नमः।
२४. ब्रह्माग्निमध्ये शृंखलायाम्-	पितृभ्यः स्वधायिभ्यः १९।३६	ॐ स्वधायै नमः।
२५. ब्रह्मयममध्ये वाप्याम्—	परं मृत्यो ३५।७	ॐ मृत्युरोगेभ्यो नमः।
२६. ब्रह्मनिर्ऋतिमध्ये शृंखलायाम्—	गणानान्त्वा २३।१९	ॐ गणपतये नमः।
२७. ब्रह्मवरुणमध्ये वाप्याम्—	शन्नो देवोः ३६।१२	ॐ अद्भ्यो नमः।
२८. ब्रह्मवायुमध्ये शृंखलायाम्—	मरुतो यस्य ८।३१	ॐ मरुद्भ्यो नमः।

स्थानानि	वेदमन्त्रप्रतीकाः	देवतानाममन्त्राः
२९. ब्रह्मणः पादमूले—	स्योना पृथिवि ३६।१३	ॐ पृथिव्यै नमः।
३०. पृथिव्या उत्तरे—	पञ्च नद्यः ३४।११	ॐ गङ्गादिनदीभ्यो नमः।
३१. गङ्गादिभ्य उत्तरे—	समुद्रोसि नभ १८।४५	ॐ सप्तसागरेभ्यो नमः।
३२. कर्णिकायाः परिधौ—	प्र पर्वतस्य १०।१९	ॐ मेरवे नमः।
३३. सत्त्वपरिधौ उत्तरे—	शतं वो अम्ब १२।७६	ॐ गदायै नमः।
३४. ,, ईशान्याम्—	यत्ते गात्राद् २५।३४	ॐ त्रिशूलाय नमः।
३५. ,, पूर्वे—	महाँ२ ऽइन्द्रो वज्रहस्तः २६।१०	ॐ वज्राय नमः।
३६. ,, आग्नेय्याम्—	वसु च मे १८।१५	ॐ शक्तये नमः।
३७. ,, दक्षिणे—	वनस्पते वीड्वङ्गो २९।५२	ॐ दण्डाय नमः।
३८. ,, नैर्ऋत्याम्—	खड्गो वैश्वदेवः २४।४०	ॐ खड्गाय नमः।
३९. ,, पश्चिमे—	उदुत्तमं वरुण १२।१२	ॐ पाशाय नमः।
४०. सत्त्वपरिधौ वायव्याम्—	युनक्त सीरा १२।६८	ॐ अङ्कुशाय नमः।
४१. रजःपरिधौ उत्तरे—	ब्राह्मणमद्य ७।४६	ॐ गौतमाय नमः।
४२. ,, ईशान्याम्—	अयन्दक्षिणा १३।५५	ॐ भरद्वाजाय नमः।
४३. ,, पूर्वे—	इदमुत्तरात् १३।५७	ॐ विश्वामित्राय नमः।
४४. ,, आग्नेय्याम्—	त्र्यायुषं जमदग्नेः ३।६२	ॐ कश्यपाय नमः।
४५. ,, दक्षिणे—	अयं पश्चाद् १३।५६	ॐ जमदग्नये नमः।
४६. ,, नैर्ऋत्याम्—	अग्निस्तिग्मेन १७।१६	ॐ अत्रये नमः।
४७. ,, पश्चिमे—	अयं पुरो भुवः १३।५४	ॐ वसिष्ठाय नमः।
४८. ,, वायव्याम्—	तं पत्नीभिः १५।५०	ॐ अरुन्धत्यै नमः।
४९. तमः परिधौ पूर्वे—	अदित्यै रास्ना ३८।३	ॐ ऐन्द्र्यै नमः।
५०. ,, आग्नेय्याम्—	नृत्ताय सूतम् ३०।६	ॐ कौमार्यै नमः।
५१. ,, दक्षिणे—	इन्द्रायाहि धिये २०।८८	ॐ ब्राह्म्यै नमः।
५२. ,, नैर्ऋत्याम्—	खड्गो वैश्वदेवः २४।४०	ॐ वाराह्यै नमः।

स्थानानि	वेदमन्त्रप्रतीकाः	देवतानाममन्त्राः
५३. तमः परिधौ पश्चिमे—	यथेमां २६।२	ॐ चामुण्डायै नमः।
५४. ,, वायव्याम्—	एण्यह्लो मण्डूको २४।३६	ॐ वैष्णव्यै नमः।
५५. ,, उत्तरे—	उखां कृणोतु ११।५७	ॐ माहेश्वर्यै नमः।
५६. ,, ईशान्याम्—	प्रतूर्वन् नेह्यव ११।१५	ॐ वैनायक्यै नमः।

इति सर्वतोभद्रपीठदेवतास्थापनम्।

अथ श्रीश्याममण्डलपूजनम्। एवं सर्वतोभद्रदेवता आवाह्य, भद्रमध्ये कलशस्थापनविधिना कलशं संस्थाप्य, कलशोपरितनपूर्णपात्रे श्रीश्याममण्डलं लिखेत्। तद्यथा—मध्ये कर्णिका, तद्बहिरष्टदलकमलम्। तद्बहिर्द्वादशारं चक्रम्। तद्बहिर्भूपुरत्रयम्। तत्र कर्णिकायां स्वर्णादिसिंहासनं निधाय तत्र क्षौमाद्यास्तरणमुपधानादिकं च निदध्यात्।

ततः अष्टदलपद्मे—

(१) पूर्वपत्रे—ॐ विष्णवे नमः।
(२) आग्नेयदले—ॐ बर्बरीकाय नमः।
(३) दक्षिणपत्रे—ॐ ब्रह्मण्याय नमः।
(४) नैर्ऋत्यदले—ॐ सुहृदयाय नमः।
(५) पश्चिमपत्रे—ॐ ध्रुवाय नमः।
(६) वायव्यदले—ॐ सिद्धसेनाय नमः।
(७) उत्तरपत्रे—ॐ चक्रिणे नमः।
(८) ईशानदले—ॐ चण्डिलाय नमः।

इति गर्भावरणम्। इदमेव प्रथमावरणम्।

अथ द्वितीयावरणे द्वादशसु आरासु पूर्वादिक्रमेण—

(१) ॐ चतुरशीतिकोटिपरिवाराय सूर्यवर्चाभिधानाय यक्षराजाय नमः।
(२) ॐ भूभारहरणप्रवृत्ताय लघुशापप्राप्तनैर्ऋतयोनिसम्भवाय नमः।
(३) ॐ कामकटङ्कटाकुक्षिराजहंसाय नमः।

(४) ॐ घटोत्कचानन्दवर्द्धनाय बर्बरीकाभिधानाय नमः ।

(५) ॐ कृष्णोपदिष्टश्रीगुप्तक्षेत्रदेवीसमाराधनप्राप्तातुलवीर्याय नमः ।

(६) ॐ विजयसिद्धिदायकाय नमः ।

(७) ॐ पिङ्गला-रेपलेन्द्र-दुहद्रुहा-नवकोटीश्वरपलाशिदावानलाय नमः ।

(८) ॐ भूपातालान्तराले नागकन्यापरिहारकाय नमः ।

(९) ॐ भीममानमर्दनाय नमः ।

(१०) ॐ सकलकौरवसेनावधमुहूर्तप्रवृत्ताय नमः ।

(११) ॐ श्रीकृष्णवरलब्धसर्ववरप्रदानसामर्थ्याय नमः ।

(१२) ॐ कलिकालवन्दिताय भक्ताभीष्टप्रदात्रे नमः ।

अथ तृतीयावरणे भूपुरे प्रादक्षिण्येन पूर्वादिक्रमेण—

(१) ॐ खड्गाय नमः ।
(२) ॐ गदायै नमः ।
(३) ॐ चक्राय नमः ।
(४) ॐ शङ्खाय नमः ।
(५) ॐ पद्माय नमः ।
(६) ॐ हलाय नमः ।
(७) ॐ मुसलाय नमः ।
(८) ॐ शार्ङ्गाय नमः ।

ततश्चतुर्थावरणे भूपुरे पूर्वादितः—

(१) ॐ इन्द्राय नमः ।
(२) ॐ अग्नये नमः ।
(३) ॐ यमाय नमः ।
(४) ॐ निर्ऋतये नमः ।
(५) ॐ वरुणाय नमः ।
(६) ॐ वायवे नमः ।
(७) ॐ सोमाय नमः ।
(८) ॐ ईशानाय नमः ।

पञ्चमावरणे भूपुर एव पूर्वतः—

(१) ॐ वज्राय नमः ।
(२) ॐ शक्तये नमः ।
(३) ॐ दण्डाय नमः ।
(४) ॐ खड्गाय नमः ।
(५) ॐ पाशाय नमः ।
(६) ॐ अङ्कुशाय नमः ।
(७) ॐ गदायै नमः ।
(८) ॐ त्रिशूलाय नमः ।

इति देवताः समावाह्य 'मनो जूतिः' (२।१३) इति प्रतिष्ठाप्य, सुवर्णमयप्रधानश्रोश्याममूर्तौ अग्न्युत्तारणं प्राणप्रतिष्ठां च कुर्यात् ।

अथाग्न्युत्तारणम् । देशकालौ सङ्कीर्त्य 'अस्यां प्रतिमायामवघातादिदोषपरिहारार्थमग्न्युत्तारणं देवतासान्निध्यार्थं प्राणप्रतिष्ठां च करिष्ये' इति सङ्कल्प्य ताम्रपात्रे पुष्पाद्यास्तृत्य सुवर्णप्रतिमां निधाय घृतेनाभ्यज्य सूक्तं पठन् तदुपरि सन्ततां जलधारां पातयेत्—

ॐ समुद्रस्य त्वावकयाग्ने परि व्ययामसि । पावकोऽअस्मभ्यᳯ शिवो भव ॥ १ ॥ हिमस्य त्वा जरायुणाग्ने परिव्ययामसि । पावकोऽअस्मभ्यᳯ शिवो भव ॥ २ ॥ उप ज्मन्नुप वेतसेव तर नदीष्वा । अग्ने पित्तमपामसि मण्डूकि ताभिरा गहि सेमन्नो यज्ञम्पावकवर्णᳯ शिवङ्कृधि ॥ ३ ॥ अपामिदंन्ययनᳯ समुद्रस्य निवेशनम् । अन्न्यांस्तेऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मभ्यᳯ शिवो भव ॥ ४ ॥ अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया । आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ ५ ॥ स नः पावक दीदिवोग्ने देवाँ२ऽइहा वह । उप यज्ञᳯ हविश्च नः ॥ ६ ॥ पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन्रुरुच ऽउषसो न भानुना । तूर्व्वन्न यामन्नेतशस्य नू रणऽआ यो घृणे न ततृषाणो ऽअजरः ॥७॥ नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते ऽअस्त्वर्चिषे । अन्न्यांस्ते ऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावको ऽअस्मभ्यᳯ शिवो भव ॥ ८ ॥ नृषदे व्वेडप्सुषदे व्वेड्बर्हिषदे व्वेड्वनसदे व्वेट् स्वर्व्विदे व्वेट् ॥ ९ ॥ ये देवा देवानां यज्ञिया यज्ञियानाᳯ संवत्सरीणमुप भागमासते । अहुतादो हविषो यज्ञे ऽअस्मिन्स्वयं पिबन्तु मधुनो घृतस्य ॥ १० ॥ ये देवा देवेष्वधि देवत्वमायन्ये ब्रह्मणः पुरऽएतारो ऽअस्य । येभ्यो न ऽऋते पवते धाम किञ्चन न ते दिवो न पृथिव्या ऽअधि स्नुषु ॥ ११ ॥ प्राणदा ऽअपानदा व्यानदा व्वर्चोदा व्वरिवोदाः । अन्न्यांस्ते ऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावको ऽअस्मभ्यᳯ शिवो भव ॥ १२ ॥ (१७।४–१५)

इत्यग्न्युत्तारणम् ।

अथ प्राणप्रतिष्ठा। एवमग्न्युत्तारणं कृत्वा पञ्चामृतैः शुद्धोदकेन च प्रक्षाल्य वस्त्रेण संप्रोञ्छ्य आस्तरणोपरि पश्चिमाभिमुखीं प्रतिमां संस्थाप्य श्रीश्यामप्रतिमायाः कपोलौ स्पृष्ट्वा प्राणप्रतिष्ठां विदध्यात्—ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं ऊं हं सः श्रीश्यामदेवस्य प्राणा इह प्राणाः। ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं ऊं हं सः श्रीश्यामदेवस्य जीव इह स्थितः। ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं ऊं हं सः श्रीश्यामदेवस्य सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणप्राणा इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा' इति जपेत्। ततः 'अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च, अस्यै देवत्वमर्चायै स्वाहा' इति मन्त्रमुक्त्वा प्रतिमां सजीवां ध्यात्वा, पञ्चामृतैः संस्नाप्य शुद्धोदकेन स्नापयेत्। ततः कौशेयादिमसृणवाससा परिमृज्य सिंहासने संस्थापयेत्।

इति प्राणप्रतिष्ठा।

अथ श्रीश्यामपूजनम्

ततः सम्पूजयेत्। तद्यथा—

ध्यानम्—

ॐ इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम्।
समूढमस्य पाᳬसुरे स्वाहा (५।१५)

भृत्यानुकम्पितधियेह गृहीतमूर्तेः सञ्चिन्तयेद्भगवतो वदनारविन्दम्।
यद्विस्फुरन्मकरकुण्डलवल्गितेन विद्योतितामलकपोलमुदारनासम्॥

ॐ सर्वतोभद्रमण्डलस्थदेवतासहिताय श्रीश्यामदेवाय नमः। ध्यायामि॥

आवाहनम्—

ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिᳬसर्वत स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥ (३१।१)

पयोजासनाद्यर्चित श्रीनिवास स्वभक्तार्तिविध्वंसक स्वच्छधामन्।
समायाहि कारुण्यतः श्यामदेव प्रभो स्वर्पितां त्वं गृहाणेह पूजाम्॥

ॐ सर्वतो॰ नमः। आवाहयामि।

आसनम्—

ॐ पुरुष एवेदꣳ सर्व्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्त्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ (३१।२)

सुवर्णनानाविधवर्णरत्न-रोचिश्छटाक्षिप्तघनान्धकारम् ।
समर्पितं ह्येतदनुत्तमं ते श्रीश्याम सिंहासनमास्यतां वै ॥
ॐ सर्वतो० नमः । आसयामि ।

पाद्यम्—

ॐ एतावानस्य महिमातो ज्ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोस्य विश्श्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ (३१।३)

तोयेन पूतेन सुगन्धितेन कस्तूरिकाकेसरचन्दनाद्यैः ।
श्रीश्याम देवेश्वर भक्तितोऽहं प्रक्षालयाम्यङ्घ्रियुगं त्वदीयम् ॥
ॐ सर्वतो० नमः । पादौ नेनिजानि ।

अर्घ्यम्—

ॐ त्रिपादूर्ध्व ऽउदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विश्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने ऽअभि ॥ (३१।४)

वृन्दादलैर्नव्यतरैः समग्रैः पुष्पैर्मनोहारिभिरुच्चगन्धैः ।
पाटीरमुख्यैर्मिलितं पदार्थैरर्घ्यं मुदाङ्गीकुरु चक्रपाणे ॥
ॐ सर्वतो० नमः । अर्हयामि । अर्घाङ्गमाचमनीयम् ।

आचमनम्—

ॐ ततो विराडजायत विराजो ऽअधि पूरुषः ।
स जातो ऽअत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥ (३१।५)
नवीनवासोवरपावितस्य स्वच्छस्य सौरभ्यमनोहरस्य ।
जलस्य मोदप्रविधायकस्य श्रीश्यामदेवाचमनं विधेहि ॥
ॐ सर्वतो० नमः । आचामयामि ।

मधुपर्कः—

ॐ स्वाहा मरुद्‌भिः परि श्रीयस्व दिवः सᳫँस्पृशस्पाहि ।
मधु मधु मधु ॥ (३७।१३)

अधिकमानयुतः प्रियकारको दधिमधुप्रकरो घृतमिश्रितः ।
स मधुपर्क इतः समुपस्थितो तमु गृहाण सुरेश्वर शोभनम् ॥

ॐ सर्वतो० नमः । मधुपर्कणार्हयामि । मधुपर्काङ्गमाचमनीयम् ।

(ततो घण्टानादेन स्नानोयान्तं कर्म । तत्र—)

अभ्यङ्गम्—

ॐ अदित्यास्त्वा मूर्द्धन्ना जिघर्म्मि देवयजने पृथिव्व्या ऽइडायास्पदमसि घृतवत्स्वाहा । अस्म्मे रमस्वास्म्मे ते बन्धुस्त्वे रायो मे रायो मा व्वयᳫँरायस्पोषेण वियौष्म तोतो राय ÷ ॥ (४।२२)

श्रीश्याम देवेश जगन्निवास श्रीकृष्ण गोविन्द रथाङ्गपाणे ।
अभ्यङ्गमेतच्छुभवस्तुयुक्तं भक्त्यार्पितं स्वीकुरु लोकनाथ ॥

ॐ सर्वतो० नमः । अभ्यञ्जयामि । शुद्धोदकेन स्नपनम् ।

उद्वर्तनम्—

ॐ अनु त्वा माता मन्न्यतामनु पितानु भ्भ्राता सगब्भ्यो॑नु सखा सयूथ्यः । सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमᳫँरुद्रस्त्वा वर्त्तयतु स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि ॥ (४।२०)

उद्वर्तनं ते परिकल्पयामि शरीरसंशुद्धिकरं नराणाम् ।
सुगन्धितं हृद्यमथापि शुद्धं तदेतदङ्गीकुरु कृष्ण साक्षिन् ।

ॐ सर्वतो० नमः । उद्वर्तयामि । स्नपनम् ।

पञ्चामृतस्नानम्(घण्टानादेन)—

ॐ पञ्च नद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः ।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशे भवत्सरित् ॥ (३४।११)

दध्याज्यदुग्धैर्मधुशर्कराभ्यां पञ्चामृतं यद्रचितं मयेदम् ।
स्नानं प्रभो ते परिकल्पयामि श्रीश्याम नारायण देव तेन ॥

ॐ सर्वतो० नमः। पञ्चामृतेन स्नापयामि। ततः शुद्धोदकेन स्नपनम्।

शुद्धोदकस्नानम् (घण्टानादेन)—

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्व्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्ज्यम्।
पशूँस्ताँश्चक्रे व्वायव्व्यानारण्ण्या ग्ग्राम्म्याश्च ये ॥ (३१।६)

अत्यन्तशुद्धेन विशुद्धिसिद्ध्यै समाधुरीकेण मनोहरेण।
परेण नीरेण सभक्तिभावं पुनर्भवन्तं स्नपयामि देव ॥

ॐ सर्वतो० नमः। स्नापयामि। स्नानाङ्गमाचमनम्।

वस्त्रम्—

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्व्वहुत ऽऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाᳬंसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ (३१।७)

नवीननीरन्ध्रविसार्यमूल्य-हारिद्रगाढप्रियवस्त्रयुग्मम्।
श्रीश्याम देवेश्वर भक्तितस्ते समर्पितं स्वीकुरु दीनबन्धो ॥

ॐ सर्वतो० नमः। वासयामि।

यज्ञोपवीतम्—

ॐ तस्मादश्श्वा ऽअजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता ऽअजावयः ॥ (३१।८)

कार्पाससूत्राकलितं नवीनं यज्ञेश मन्त्रातिपवित्रितं च।
यज्ञोपवीतद्वयमर्पितं ते मया गृहाणेश्वर गोपिकेश ॥

ॐ सर्वतो० नमः। उपव्ययामि।

गन्धः—

ॐ तं यज्ञं बर्हिषि प्प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा ऽअयजन्त साद्ध्या ऽ ऋषयश्च ये ॥ (३१।९)

कस्तूरिकाकुङ्कुमचन्द्रयोगात् सुगन्धिना चन्दनकर्दमेन।
भाले त्वदीये तिलकं विशालं श्रीश्याम वित्तेश्वर देव कुर्वे ॥

ॐ सर्वतो० नमः। गन्धयामि।

अलङ्करणम् (घण्टानादेन)—

ॐ आ यातमुप भूषतं मद्ध्व ÷ पिबतमश्विना ।
दुग्धं पयो व्वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्द्धिष्टमागतम् ॥ (३३।८८)
सुतप्तचामीकरकल्पितानां भक्त्याहृतानां सुमनोहराणाम् ।
रत्नादिसंयोगविशेषभासां सुभाजनं स्वीकुरु भूषणानाम् ॥
ॐ सर्वतो० नमः । अलङ्करोमि ।

तुलसी—

ॐ अग्नेर्व्व्यायोशीतम पाहि मा विद्योः पाहि प्प्रसित्यै पाहि दुरिष्टचै पाहि दुरद्मन्या ऽअविषन्न ÷ पितुङ्कृणु सुषदा योनौ स्वाहा व्वाडग्नये संव्वेशपतये स्वाहा सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा ॥ (२।२०)

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ।
यद्दर्शनस्पर्शनभक्षणानि प्रोच्चान्यघान्याशु विनाशयन्ति ।
तान्यर्पयेऽहं तुलसीदलानि श्रीश्याम सिद्धेश्वर तुष्टये ते ॥
ॐ सर्वतो० नमः । तुलस्या तोषयामि ।

पुष्पम्—

ॐ यत्पुरुषं व्व्यदधुः कतिधा व्व्यकल्पयन् ।
मुखङ्किमस्यासीत् किम्बाहू किमूरू पादा ऽउच्च्येते ॥ (३१।१०)
कालोद्भवैर्नव्यतरैरदुष्टैः सुगन्धिभिश्चित्तहरैः प्रसूनैः ।
श्रीश्याम मोक्षेश्वर पूजनं ते कुर्वेऽर्थसिद्धि कुरु मे दयालो ॥
ॐ सर्वतो० नमः । पुष्पैः तोषयामि ।

परिमलम्—

ॐ अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुञ्ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो व्विश्वा व्वयुनानि व्विद्वान् पुमान्पुमा ँ सं परि पातु व्विश्वत ÷ ॥ २९।५१)

श्रीश्याम नानाविधकर्मयन्त्रैः सम्पादितं पुष्परसं सुगन्धि ।
गृहाण सद्भक्तियुतेन साधो चितेन दत्तं परिभोगवस्तु ॥
ॐ सर्वतो० नमः । परिमलैः शोभयामि ।

धूपः (घण्टानादेन)—

ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याँ शूद्रोऽअजायत ॥ (३१।११)

कस्तूरिकाज्यागुरुचन्दनाद्यैर्गन्धप्रधानै रचितं पदार्थैः ।
चेतःसमाकर्षिविसारिधूमं धूपं त्वमङ्गीकुरु दीनबन्धो ॥
ॐ सर्वतो० नमः । धूपयामि ।

दीपः (घण्टानादेन)—

ॐ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्योऽ अजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्चप्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ (३१।१२)

हैयङ्गवीनेन वरेण पूर्णं सद्वर्तियुक्तं बहुलप्रकाशम् ।
दीपं प्रकाशाय जगन्निवास गृहाण देवार्चित हृत्प्रकाश ॥
ॐ सर्वतो० नमः । दीपयामि ।

नैवेद्यम् (घण्टानादेन)—

ॐ नाभ्याऽ आसीदन्तरिक्षँ शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्याम्भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँर ऽअकल्पयन् ॥ (३१।१३)

सदाज्यसंभावितशर्कराढ्य-गोधूमचूर्णादिसुपक्वमन्नम् ।
क्षीरेण नीरेण फलैश्च सार्धं गृहाण तृप्तो भव बालकृष्ण ॥
ॐ सर्वतो० नमः । नैवेद्यं निवेदयामि ।

आचमनम्—

ॐ देवीरापः शुद्धा स्वोड्ढ्वँ सुपरिविष्टा देवेषु सुपरिविष्टा व्वयं परिवेष्टारो भूयास्म ॥ (६।१३)

श्रीश्याम नारायण सुप्रसीद यज्ञेश सिद्धीश्वर भोजनान्ते ।
अनेन पूतेन सताम्भसाद्य प्रभो विधेह्याचमनं पुनस्त्वम् ॥
ॐ सर्वतो० नमः । आचामयामि ।

फलम्—

ॐ याः फलिनीर्याऽ अफलाऽ अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वँ हसः ॥ (१२।८९)
संस्थापितं देव फलं त्वदग्रे गृहाण कारुण्यभरेण नाथ ।
अनेन भूयात्सफला त्वदीया समर्हणेयं सुरवन्द्यपाद ॥
ॐ सर्वतो० नमः । फलं समर्पयामि ।

ताम्बूलम्—

ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
व्वसन्तोस्यासीदाज्ज्यङ्ग्रीष्म इद्ध्मः शरद्धविः ॥ (३१।१४)
एलालवङ्गादिविमिश्रतत्वादतीव रम्यं गुणरूपकाम्यम् ।
ताम्बूलयुग्म कृपया गृहाण श्रीश्यामदेव प्रणतार्तिहारिन् ॥
ॐ सर्वतो० नमः । ताम्बूलमर्पयामि ।

दक्षिणा—

ॐ यद्दत्तं यत्परा दानं यत्पूर्त्तं याश्श्च दक्षिणाः ।
तदग्निर्व्वैश्श्वकर्म्मणः स्वर्द्देवेषु नो दधत् ॥ (१८।६४)
विश्वोद्भवत्राणलयप्रवीण ब्रह्माण्डकोटीश महाप्रभाव ।
विहाय लज्जामियता धनेन प्रकल्पयेऽहं बत दक्षिणां ते ॥
ॐ सर्वतो० नमः । दक्षिणां समर्पयामि ।

शय्या—

ॐ ऋतञ्च मेमृतञ्च मेयक्ष्मञ्च मेनामयच्च मे जीवातुश्च मे दीर्घायुत्त्वञ्च मेनमित्रञ्च मेभयञ्च मे सुखञ्च मे शयनञ्च मे सूषाश्च मे सुदिनञ्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ (१८।६)

शय्यां समङ्गीकुरु विश्वमूर्ते विश्रान्तिहेतुं सुखदां सुशिल्पाम् ।
स्वच्छास्तरां चापि सुतूलिकाढ्यामनन्तवीर्याच्युत कृष्णरूप ॥
ॐ सर्वतो० नमः । शय्यामुपकल्पयामि ।

आदर्शः—

ॐ रूपेण वो रूपमभ्यागान्तुथो वो व्विश्ववेदा व्वि भजतु ।
ऋतस्य पथा प्प्रेत चन्द्रदक्षिणा व्वि स्वः पश्य व्व्यन्तरिक्षं यतस्व सदस्यैः ॥ (७।४५)

श्रीवत्सवक्षः पुरुषात्मयोने सुवर्णवर्णाच्युत पद्मनाभ ।
अभीष्टसिद्धिं कुरु चाननं स्वमादर्शमेतं परिगृह्य पश्य ॥
ॐ सर्वतो० नमः । आदर्शं दर्शयामि ।

आन्दोलनम्—

ॐ अदित्यास्त्वगस्यदित्यै सदऽ आ सीद । अस्तब्भ्नाद् द्यां वृषभोऽ अन्तरिक्षममिमीत व्वरिमाणम्पृथिव्याः । आसीदद्विश्श्वा भुवनानि सम्म्राड् विश्श्वेत्तानि व्वरुणस्य व्व्रतानि ॥ (४।३०)

आन्दोलनं मोदनिकाय्यमेतद् श्रीश्याम देवेश समर्पयामि ।
अत्रोपविष्टः कुरु शर्म तेभ्यो ये त्वां सदार्चन्ति विशुद्धभावाः ॥
ॐ सर्वतो० नमः । आन्दोलयामि ।

छत्रम्—

ॐ ध्रुवासि ध्रुवोयं यजमानोस्मिन्नायतने प्प्रजया पशुभिर्ब्भूयात् ।
घृतेन द्यावापृथिवी पूर्य्येथामिन्द्रस्य च्छदिरसि व्विश्श्वजनस्य च्छाया ॥ (५।२८)

हिमव्यपायं शुचि हृद्यमेतद् वर्षारजोघर्मनिवारणञ्च ।
राज्यश्रियो लक्ष्म गृहाण देवच्छत्रं नु वित्तेश्वर हे दयालो ॥
ॐ सर्वतो० नमः । छत्रेण छादयामि ।

चामरम्—

ॐ अग्ने यत्ते शुक्रं यच्चन्द्रं यत्पूतं यच्च यज्ञियम्।
तद्देवेभ्यो भरामसि ॥ (१२।१०४)

सच्चामरं चारु विशुद्धकेशं श्रीराज्यशोभाकरमस्मदीयम् ।
तापं समुन्मूलय भक्तपाल गृहाण सिद्धिप्रद माधव त्वम् ॥
ॐ सर्वतो० नमः । चामरेण चारु करोमि ।

पादुका—

ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव ।
पूतं पवित्रेणेवाज्ज्यमाप ÷ शुन्धन्तु मैनसः ॥ (२०।२०)
श्रीश्याम नानाविधशिल्पविद्या-संपादितत्वात् सुमनोहरे ते ।
श्रीपादुके पादतलस्य रक्षे गृहाण सन्धारय लोकनाथ ॥
ॐ सर्वतो० नमः । पादुके समर्पयामि ।

वाहनम्—

ॐ एष स्य व्वाजो क्षिपणिन्तुरण्यति ग्रीवायां बद्धोऽ अपिकक्षऽ-आसनि । क्रतुं दधिक्राऽ अनु सॅ्ँ सनिष्यदत्पथामङ्काॅ्ँस्यन्वापनीफण-त्स्वाहा ॥ (९।१४)

अश्वैस्तु जेया भवतीह पृथ्वी तं विक्रमानन्त सुपर्णवाहन ।
गृहाण वाहं ह्यधिरुह्य चास्मिन् सद्भक्तरक्षां कुरु चक्रपाणे ॥
ॐ सर्वतो० नमः । वाहनं परिकल्पयामि ।

व्यजनम्—

ॐ सोम ÷ पवते सोम ÷ पवतेस्मै ब्ब्रह्मणेस्मै क्षत्रायास्मै सुन्वते यजमानाय पवत इषऽऊर्ज्जं पवतेद्भ्यऽओषधीभ्यः पवते द्यावा-पृथिवीभ्यां पवते सुभूताय पवते व्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः + ॥ (७।२१)

श्रीश्याम वित्तेश्वर विश्वयोने गोविन्द दामोदर सिद्धिदातः।
शुद्धेन भावेन समर्पयामि सद्वायुसम्पादकमीश्वरेश ॥
ॐ सर्वतो० नमः। वीजयामि।

वाद्यम्—

ॐ बृहस्पते व्वाजञ्जय बृहस्पतये व्वाचं व्वदत बृहस्पतिं व्वाजं जापयत। इन्द्र व्वाजं जयेन्द्राय व्वाचं व्वदतेन्द्रं व्वाजं जापयत ॥ (९।११)

मृदङ्गढक्कामुरजोर्ध्वकादिवादित्रमेतत्परिकल्पयामि ।
श्रुत्वास्य हृद्यां मनसा गिरं मे ह्यभीष्टपूर्तिं कुरु लोकनाथ ॥
ॐ सर्वतो० नमः। वादित्रं वादयामि।

गीतम्—

ॐ परि त्वा गिर्व्वणो गिरऽ इमा भवन्तु विश्वतः।
व्वृद्धायुमनुवृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥ (५।२९)
गीतं सुगीतं श्रृणु हे दयालो यथा सुकेकापरिकूजितं स्यात्।
नाहं प्रभुर्गीतविधापने ते तथापि शास्त्रं परिपालयामि ॥
ॐ सर्वतो० नमः। गापयामि।

नृत्यम्—

ॐ नृत्ताय सूतङ्गीताय शैलूषन्धर्म्माय सभाचरन्नरिष्ट्ठायै भीमलन्नर्माय रेभꣳ हसाय कारिमानन्दाय स्त्रीषखं प्रमदे कुमारीपुत्रं मेधायै रथकारन्धैर्याय तक्षाणम् ॥ (३०।६)

नृत्यं प्रपश्यात्र शुभाभिधानं मनोहरं नृत्यविदां वरिष्ठ।
भूमिस्थिताभिः प्रथिताभिधाभिः शुभाप्सरोभिः परिकल्पितं यत् ॥
ॐ सर्वतो० नमः। नर्तयामि।

नीराजनम् (घण्टानादेन)—

ॐ इदꣳ हविः प्रजननम्मेऽ अस्तु दशवीरꣳ सर्व्वगणꣳ स्वस्तये।
आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्न्यभयसनि।
अग्निः प्रजां बहुलाम्मे करोत्वन्नं पयो रेतोऽ अस्म्मासु धत्त (१९।४८)

घृताक्तसद्वर्तिचतुष्टयोद्यत्प्रभूतकर्पूरशिखाञ्चितेन ।
अनेन पात्रेण च लोकनाथ नीराजनं ते परिकल्पयामि ॥
ॐ सर्वतो० नमः । नीराजयामि ।

शङ्खभ्रामणम् (घण्टानादेन)—

ॐ अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः ।
तमीमहे महागयम् ॥ (२६।९)
नीराजयामीह सुशुभ्रशंखं श्रीश्याम देवेश जगन्निवास ।
यस्य द्विजन्मार्जितपापहन्तृ सुवारि लोके प्रगृणन्ति मान्याः ॥
ॐ सर्वतो० नमः । शङ्खेन नीराजयामि । इति शङ्खं भ्रामयित्वा हस्तेन तज्जलमादायात्मानमभिषिच्य इतरानप्यभिषिञ्चेत् ।

प्रदक्षिणा—

ॐ सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥ (३१।१५)
पापानि सर्वाणि पदे पदे या हरत्यहो तत्क्षणमेव नृणाम् ।
प्रदक्षिणां तां तव सत्यमेधः प्रभोऽनुरागेण समाचरामि ॥
ॐ सर्वतो० नमः । प्रदक्षिणीकरोमि ।

नमस्कारः—

ॐ नमः सु ते निर्ऋते तिग्मतेजोयस्मयं वि चृता बन्धमेतम् ।
यमेन त्वं यम्या संविदानोत्तमे नाके अधि रोहयैनम् ॥ (१२।६३)
समर्चितं यन्निखिलाघहारि मनोरथानामज सिद्धिकारि ।
मुनीन्द्रवन्द्यं विजितारविन्दं नमामि तत्ते चरणारविन्दम् ॥
ॐ सर्वतो० नमः । नमस्करोमि ।

प्रार्थना—

ॐ आयुर्मे पाहि प्राणम्मे पाह्यपानम्मे पाहि व्यानम्मे पाहि चक्षुर्म्मे पाहि श्रोत्रम्मे पाहि वाचम्मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानम्मे पाहि ज्योतिर्म्मे यच्छ ॥ (१४।१७)

विश्वेश विश्वार्तिहरैकसेव्य श्रीश्याम सिद्धेश्वर देवदेव ।
वस्तु त्वदीयं सकलं मयेदं समर्पितं मां परिपाहि कृष्ण ॥
ॐ सर्वतो० नमः । प्रार्थयामि ।

पुष्पाञ्जलिः—

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्रथमान्यासन् । ते ह नाकम्महिमानः सचन्त यत्र पूर्व्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ (३१।१६)

प्रसीद विश्वेश पुनः प्रसीद प्रसीद सर्वज्ञपद प्रसीद ।
प्रसीद सत्सेव्य परं प्रसीद प्रसीद सर्वज्ञ मयि प्रसीद ॥
ॐ सर्वतो० नमः । पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ।

पूर्णता—

रयिश्च मे रायश्च मे पुष्टञ्च मे पुष्टिश्च मे विभु च मे प्रभु च मे पूर्णञ्च मे पूर्णतरञ्च मे कुयवञ्च मेक्षितञ्च मेन्नञ्च मे क्षुच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् । (१८।१०)

मन्त्रक्रियाभक्तिविहीनमत्र यदेव जातं निखिलान्तरात्मन् ।
भवत्प्रसादात् करुणारसाब्धे तत्सर्वमेवास्तु विभो प्रपूर्णम् ॥

ॐ सर्वतो० नमः । पूजायाः परिपूर्णतास्तु । अनया पूजया श्रीश्यामदेवः प्रीयताम् । इति श्रीश्यामदेवपूजनम् ।

अथ होमः । तत्र कुशकण्डिकां कृत्वा आघारादिसर्वप्रायश्चित्तान्तं हुत्वा गणपत्यादिदेवेभ्यश्च हुत्वा प्रधानहवनसमये—'ॐ इदं विष्णुः' (५।१५) इति वैदिकमन्त्रेण, 'ॐ श्रीश्यामदेवाय नमः' इति मूलमन्त्रेण, 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' इति द्वादशाक्षरमहाविद्यया वा चरुणा आज्येन तिलादिना १००८❀ संख्यया जुहुयात् । ततः मण्डले समावाहितदेवताभ्यः प्रतिदैवतं चरुणा आज्येन तिलादिना १०८ आहुतीर्जुहुयात् ।

❀ "अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टाधिकं तथा । अष्टाविंशतिरष्टौ वा" इति वचनमनुकृत्य प्रधान-मण्डलदेवतानां च आहुतिसंख्यापक्ष आश्रितः । शक्ति-श्रद्धा-देश-कालाद्यनुरोधेन न्यूनाधिकतापि कर्तुं शक्यते ।

१—ॐ विष्णवे स्वाहा।	२—ॐ वर्वरोकाय स्वाहा।
३—ॐ ब्रह्मण्याय स्वाहा।	४—ॐ सुहृदयाय स्वाहा।
५—ॐ ध्रुवाय स्वाहा।	६—ॐ सिद्धसेनाय स्वाहा।
७—ॐ चक्रिणे स्वाहा।	८—ॐ चण्डिलाय स्वाहा।

९—ॐ चतुरशीतिकोटिपरिवाराय सूर्यवर्चाभिधानाय यक्षराजाय स्वाहा। १०—ॐ भूभारहरणप्रवृत्ताय लघुशापप्राप्तनैर्ऋतयोनिसम्भवाय स्वाहा ११—ॐ कामकटङ्कटाकुक्षिराजहंसाय स्वाहा। १२—ॐ घटोत्कचानन्दवर्धनाय वर्वरोकाभिधानाय स्वाहा। १३—ॐ कृष्णोपदिष्टश्रीगुप्तक्षेत्रदेवीसमाराधनप्राप्तातुलवीर्याय स्वाहा। १४—ॐ विजयसिद्धिदायकाय स्वाहा। १५—ॐ पिङ्गला-रेपलेन्द्र-दुहद्रुहा-नवकोटीश्वरपलाशिदावानलाय स्वाहा। १६—ॐ भूपातालान्तराले नागकन्यापरिहारकाय स्वाहा। १७—ॐ भीममानमर्दनाय स्वाहा। १८—ॐसकलकौरवसेनावधमुहूर्तप्रवृत्ताय स्वाहा। १९—ॐ श्रीकृष्णवरलब्धसर्ववरप्रदानसामर्थ्याय स्वाहा। २०—ॐ कलिकालवन्दिताय भक्ताभीष्टप्रदात्रे स्वाहा।

२१—ॐ खड्गाय स्वाहा।	२२—ॐ गदायै स्वाहा।
२३—ॐ चक्राय स्वाहा।	२४—ॐ शङ्खाय स्वाहा।
२५—ॐ पद्माय स्वाहा।	२६—ॐ हलाय स्वाहा।
२७—ॐ मुसलाय स्वाहा।	२८—ॐ शार्ङ्गाय स्वाहा।
२९—ॐ इन्द्राय स्वाहा।	३०—ॐ अग्नये स्वाहा।
३१—ॐ यमाय स्वाहा।	३२—ॐ निर्ऋतये स्वाहा।
३३—ॐ वरुणाय स्वाहा।	३४—ॐ वायवे स्वाहा।
३५—ॐ सोमाय स्वाहा।	३६—ॐ ईशानाय स्वाहा।
३७—ॐ वज्राय स्वाहा।	३८—ॐ शक्तये स्वाहा।
३९—ॐ दण्डाय स्वाहा।	४०—ॐ खड्गाय स्वाहा।
४१—ॐ पाशाय स्वाहा।	४२—ॐ अंकुशाय स्वाहा।
४३—ॐ गदायै स्वाहा।	४४—ॐ त्रिशूलाय स्वाहा।

इति हुत्वा आवाहितदेवतानां हवनान्ते तदुत्तरभावि कर्म यथाविध्यनुष्ठाय कर्मेश्वरार्पणं कुर्यात्। हरिः ॐ तत्सत् श्रीश्यामदेवार्पणमस्तु।

इति श्रीश्यामदेवार्चाविधानं समाप्तम्।

श्रीश्यामस्तवः

ॐ अस्य श्रीश्यामदेवस्तोत्रमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः अत्यष्टिः (शिखरिणी) छन्दः श्रीश्यामो देवता सकलमनोरथसिद्ध्यर्थे श्रीश्यामदेवताप्रीत्यर्थे च जपे विनियोगः।

शिवब्रह्मेन्द्राद्यैरखिलसुरवर्यैरिह सदा
मुनीन्द्रैः सिद्धेन्द्रैर्भृगुकपिलमुख्यैः स्तुतपदम्।
दयायुक्तं नाथं नरकपतितोद्धारणपरं
भजेऽहं श्रीश्यामं भवभयहरं भक्तवरदम्॥ १॥

महोत्साहं विष्णुं शुभशशिमुखं पद्मनयनं
किरीटाढ्यं कान्त्यावृततनुमनन्तं गुणनिधिम्।
विना प्राक्पुण्यौघैर्दुरधिगमनिःसीमविभवं
भजेऽहं श्रीश्यामं भवभयहरं भक्तवरदम्॥ २॥

सदा वंशीवाद्यं सजलजलदाभं सुचरितं
मुदा गोपीगोपाद्यभयवरदं दुष्टदमनम्।
बकीनाशं कृष्णं ह्यघबकतृणावर्तकरिपुं
भजेऽहं श्रीश्यामं भवभयहरं भक्तवरदम्॥ ३॥

मनोज्ञं कंसारिं करिकुवलयापीडदमनं
हरिं रङ्गे यान्तं कठिनतरचाणूरशमनम्।
स्वपित्रोरानन्दं ददतमधिकं प्रीतिजनकं
भजेऽहं श्रीश्यामं भवभयहरं भक्तवरदम्॥ ४॥

मुदाभिर्नारीभिर्मुदितनटनाट्यैकनिपुणं
क्वणत्काञ्चीकान्तिक्वणितसुखसंगीतकवरम्।
शुभं तं कौशेयाम्बरधरमुदारं वनगतं
भजेऽहं श्रीश्यामं भवभयहरं भक्तवरदम्॥ ५॥

सुकालिन्दीकूले घनतरतरौ स्वच्छरजसि
स्फुटज्जातीपद्मे सुरभिणि सदा कुञ्जनिलये ।
लसन्तं गोपीभिः शरदि सुरनारीभिरमलं
भजेऽहं श्रीश्यामं भवभयहरं भक्तवरदम् ॥ ६ ॥
पिबन्तं दावाग्नि शमनमखिलानां च विपदां
पदं तत्सौख्यानां प्रचुरतरकालीयदमनम् ।
हरन्तं संतापं व्रजजनवराणां सुतपसां
भजेऽहं श्रीश्यामं भवभयहरं भक्तवरदम् ॥ ७ ॥
सुशैलेन्द्रं हस्ते दधतमनिशं सप्तदिवसं
जनानां स्वीयानां विविधविपदां संक्षयकरम् ।
गवां त्राणार्थं वै गिरिवरधरं नन्दतनयं
भजेऽहं श्रीश्यामं भवभयहरं भक्तवरदम् ॥ ८ ॥
सुरेशं गोविन्दं मणिकनकहाराङ्गदधरं
सुपिच्छापीडं कौस्तुभरुचिरवक्षःपरिसरम् ।
रमेशं लोकानां हितकरमलं विश्वजनकं
भजेऽहं श्रीश्यामं भवभयहरं भक्तवरदम् ॥ ९ ॥
चिदानन्दाकारं मुनिवरहृदि प्राप्तनिलयं
यजुःसामाथर्वप्रभृतिषु तथा ऋक्षु विदितम् ।
अचिन्त्यं दुर्बोधं प्रकृतिगुणयुक्तैश्च पुरुषै-
र्भजेऽहं श्रीश्यामं भवभयहरं भक्तवरदम् ॥ १० ॥
स्तवः श्यामदेवस्य विष्णोर्मयायं
कृतो दिङ्मितैः शुद्धभावेन पद्यैः ।
सुरामप्रसादाभिधानेन यायात्
पठेद्यो नरः श्यामदेवप्रसादम् ॥ ११ ॥

—०—

श्रीश्यामस्तोत्रम्

अब्जयोनिशूलपाणिपाकशासनादिके-
देवसिद्धकिन्नरैश्च वन्दितं रमापतिम् ।
चक्रपाणिमुत्तमं गुणाकरं कृपानिधिं
श्यामदेवमीश्वरं नमामि पापनाशनम् ॥ १ ॥

वेणुगानतत्परं स्वगोप्यगोपमण्डनं
कालचैद्यदन्तवक्त्रमागधादिखण्डनम् ।
पूतनाबकासुरादिकेशिकंसनाशनं
श्यामदेवमीश्वरं नमामि शत्रुनाशनम् ॥ २ ॥

चन्द्रहासशोभितं सुपिच्छगुच्छमस्तकं
कुङ्कुमादिचर्चितं विलोभिलोललोचनम् ।
हारकुण्डलत्विषा सुशोभिनीलकुन्तलं
श्यामदेवमीश्वरं नमामि विश्वमोहनम् ॥ ३ ॥

श्रीश्यामस्तोत्र का अनुवाद

ब्रह्मा, शिव, इन्द्र इत्यादि देवताओं, सिद्ध तथा किन्नरों से स्तुति किये गये लक्ष्मीपति, सुदर्शनचक्रधारी, पुरुषोत्तम, गुणगणों के समुद्र, दयासागर, सर्वसमर्थ, भक्तजनों के पापनाशक भगवान् श्रीश्यामदेव को मैं सविनय प्रणाम करता हूँ ॥ १ ॥

जो भगवान् वंशी के गान में तत्पर हैं, अपने पालनीय गोपमण्डली के सुशोभित मुखिया हैं, कालयवन जैसे प्रचण्डम्लेच्छ, शिशुपाल, दन्तवक्त्र, जरासन्ध जैसे प्रबलप्रतापी राजाओं के अहङ्कार को खण्डित करने वाले हैं, पूतनाराक्षसी, बकासुर, अघासुर आदि मायावी असुरों, केशी, कंस आदि का नाश करनेवाले, भक्तजनों के शत्रुओं को नष्ट करनेवाले सर्वसमर्थ भगवान् श्रीश्यामदेव को मैं सविनय नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

जिनके चन्द्रमा केसमान हृदयहारी मुसकान सर्वदा सुशोभित है, मोर की पाँख के गुच्छों के मुकुट से अलंकृत मस्तक है, केसर,

इन्द्रमानखण्डनं गिरीन्द्रशीलहस्तकं
गोपबालधेनुवत्सगोपिकार्तिनाशनम् ।
भक्तभीतिहारकं दवाग्निपानकारकं
श्यामदेवमीश्वरं नमामि भक्तपालकम् ॥ ४ ॥
गोपकन्यकावृतं कलिन्दकन्यकातटे
चारुनर्मशोभितं कदम्बपादपे स्थितम् ।
बालकृष्णमीप्सितार्थदायकं पतिं हरिं
श्यामदेवमीश्वरं नमामि कामदायकम् ॥ ५ ॥

कस्तूरी, कुंकुम (रोली) आदि दिव्यचन्दनों से चर्चित विशाल भाल है, समस्त प्राणियों को लुभानेवाले चञ्चल नेत्र हैं, गलशोभी हार एवं कानों के मकराकृति कुण्डलों से काले घुंघराले बाल सुशोभित हो रहे हैं, ऐसे विश्वमोहन, सर्वसमर्थ, भगवान् श्रीश्यामदेव को मैं सविनय नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

जो इन्द्र जैसे शक्तिसंपन्न देवराज के घमण्ड को चूर करते हैं, पर्वत-श्रेष्ठ गोवर्धन के उठाने में जिनका हाथ सिद्ध है, गोपबालक, गौओं के बछड़े, गोपिकायें आदि निर्बल प्राणियों की नानाविध आपत्तियों के नाशकरने वाले हैं, भक्तजनों के भय के विनाशक हैं, दावाग्नि (जंगली अग्नि) को मुख से पीकर शान्त करते हैं, ऐसे भक्तपालक, सर्वसमर्थ, भगवान् श्रीश्यामदेव को मैं सविनय नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥

जो पुण्यसलिला यमुनानदी के किनारे में गोपकन्याओं से घिरे हुए, कदम्ब के पेड़ पर बैठे हुए, चीरहरण की मनोहारी क्रीड़ालीला के रसिक हैं, समस्त अभिलाषाओं के अनुकूल वर देनेवाले, जगत्पति नारायण, बालक कृष्ण के रूप में भी हैं, उन मनोवांछित—वरदाता, सर्वसमर्थ भगवान् श्रीश्यामदेव को मैं सविनय नमस्कार करता हूँ ॥ ५ ॥

कुब्जवेश्ममध्यगं सकामकामिनोधृतं
चुम्बिताधरामृतं प्रसन्नवक्त्रपङ्कजम् ।
प्रफुल्लपङ्कजेक्षणं सुकौस्तुभाङ्गभूषणं
श्यामदेवमोश्वरं नमामि केलिकारकम् ॥ ६ ॥

नन्दगोपमण्डन यशोदयाविभूषितं[1]
बालकेलिकारकं मनोहरं विभाकरम् ।
किङ्किणीकुतूहलेन नृत्यगीतनादितं
श्यामदेवमीश्वरं नमामि योगदायकम् ॥ ७ ॥

जो प्रार्थना पर कुब्जा–जैसी साधारणसेविका के घर में भी पधारते हैं, रूपमोहित, कामदेव के वशीभूत कामिनियों से पकड़े जाते हैं, वे जिनका चुम्बन और अधरामृतपान करती हैं, जिनका सर्वदासुन्दर कमल की भाँति मुखमण्डल है, विकसित कमल के समान नेत्र हैं, सुन्दर कौस्तुभमणि जिनका अंगभूषण है, उन लोकलीलाकारक, सर्वसमर्थ भगवान् श्रीश्यामदेव को मैं सविनय नमस्कार करता हूँ ॥ ६ ॥

व्रजराज नन्दराय की प्रजारूप गोपों के शोभाकारी, यश और दया से विभूषित (यशोदानन्दन) बालकों की क्रीड़ा को भी अपनानेवाले, मनोमोहक दिव्यरूपसंपन्न, अन्धकार में भी अपनी रूपप्रभा से प्रकाश करनेवाले, पेर में पहनीहुई पायल के घुँघरू बजाने को चाह से नाच-गान से नादसंपन्न, योगसाधना के वरदाता, सर्वसमर्थ, भगवान् श्रीश्यामदेव को मैं सविनय नमस्कार करता हूँ ॥ ७ ॥

---

1. अत्र द्विधा पदविभागः कर्त्तुं शक्यः । यशश्च दया च ताभ्यां विभूषितः, यद्वा वृत्तोयास्तेनार्थसौष्ठवम् ।

विश्वभावकारकं मनोरथप्रदायकं
वेदशास्त्रवन्दितं निरञ्जनं निरामयम् ।
यज्ञकर्मसाधकं द्विजातिमोहबाधकं
श्यामदेवमीश्वरं नमामि सिद्धिदायकम् ॥ ८ ॥
रत्नयुक्तमस्तकं मुनीप्सितं वरप्रदं
कौरवादिदुष्टराजपीडकं क्षमाकरम् ।
सूर्यबिम्बमध्यवर्तितेजसा प्रपूरितं
श्यामदेवमीश्वरं नमामि भानुमध्यगम् ॥ ९ ॥
वेदमन्त्रयन्त्र-न्त्रशब्दसारदायकं
धर्ममार्गवर्द्धकं ह्यधर्ममार्गनाशकम् ।
रागतापशोककोपदुःखदैत्यनाशकं
श्यामदेवमीश्वरं नमामि वित्तसाधकम् ॥ १० ॥

समस्त विश्व की सत्ता को करने (रखने) वाले, चर-अचर जगत् को मानसिक सत्-अभिलाषाओं के प्रदाता, वेद एवं शास्त्रों की स्तुतियों के द्वारा बन्दनीय, निर्मल, निर्विकार, यज्ञ आदि सत्कर्म के साधक, द्विज (अपने जन्म और वेदों में श्रद्धा रखनेवाले) जनों के कष्ट एवं मोह को हटाने वाले, सर्वसिद्धिविधाता, सर्वसमर्थ, भगवान् श्रीश्यामदेव को मैं सविनय नमस्कार करता हूँ ॥ ८॥

रत्नजटित मुकुट से मण्डित मस्तकवाले, अष्टांगयोगमें निरत मुनिगणों के चाहेहुए ध्येयदेवता, वरदाता, कौरव आदि दुष्टबुद्धि-शक्तिसम्पन्न राजाओं के भी दमनकारी, सर्वशक्तिसंपन्न होते हुए भी क्षमाकारी, सूर्य-मण्डल के तेज से भी अधिक तेजस्वी, सूर्यमण्डल के मध्य में भी उपासनीय, सर्वसमर्थ, भगवान् श्रीश्यामदेव को मैं सविनय नमस्कार करता हूँ ॥ ९ ॥

वेदों के मन्त्र, विभिन्नकार्यों के साधक यन्त्र, तन्त्र के प्रभावकारी शब्दों में चमत्कार का बल देनेवाले, धर्ममर्यादा के मार्ग को बढानेवाले, अधर्म के मार्ग को नष्ट करनेवाले, जीवों के रोग, संताप, शोक, क्रोध, दुःख, प्रेत, पिशाच, दैत्य आदि की बाधा को हटानेवाले, मानवजीवन के अपेक्षित सर्वविध धन को सिद्ध करनेवाले, सर्वसमर्थ, भगवान् श्यामदेव को मैं सविनय नमस्कार करता हूँ ॥ १० ॥

ज्ञानमानबुद्धिवृद्धिकारकं खलापहं
दुष्टदैत्यनाशनं मुनीन्द्रवृन्दवन्दितम् ।
सर्वलोकसेवितं शिवप्रियं क्षमाकरं
श्यामदेवमीश्वरं नमामि सर्वसाक्षिणम् ॥ ११ ॥
गृहसुतधनतेजस्स्त्र्यादिसर्वप्रदाता
निगमगुणविनेता कालभीतिप्रभेत्ता ।
अरिकुलवधकर्ता भक्तकार्यातिचेता
जगति जयति देवः श्यामदेवः प्रतापी ॥ १२ ॥
स्तोत्रं सदा कार्यकरं नराणां रामप्रसादेन कृतं मनोज्ञम् ।
यथेप्सिताशेषमनोरथं वै लभेन सिद्धि कुलकीर्त्तिमायुः ॥ १३ ॥

जीवों के ज्ञान-सम्मान-बुद्धि को बढ़ानेवाले, दुष्टमनोभाववाले खल-व्यक्तियों को दूर करनेवाले, प्रबलदुष्ट दैत्यकी प्रभावशक्ति को नष्टकरनेवाले, योगसामर्थ्य से सम्पन्न मुनिवरों के समूह द्वारा श्रद्धा से वन्दित, समस्त लोकनिवासियों से सेवित, योगिराज महादेवजी के प्रिय, समस्त त्रुटियों, अपराधों को उदारता से क्षमा करनेवाले, सभी कर्तव्यों के द्रष्टा-साक्षी, सर्व-समर्थ भगवान् श्रीश्यामदेव को मैं सविनय नमस्कार करता हूँ ॥ ११ ॥

मकान, भूमि, पुत्र, धन, तेज (व्यक्तित्व), स्त्री आदि समस्त भोग-साधनों के दाता, समस्त शुभ कल्याणकारी गुणोंके शिक्षक, कालके भय को दूर करनेवाले, शत्रुगणों को समूल नष्ट करनेवाले, भक्त के कार्य केप्रति अत्यधिक ध्यान देनेवाले, प्रबलप्रतापी, देवविग्रहधारी, भगवान् श्रीश्यामदेव की इस जगत् में जय-जयकार है ॥ १२ ॥

यह स्तोत्र मनुष्यों के मनचाहे कार्य को सर्वदा पूर्ण करता है। इस सुन्दर स्तोत्र को भगवान् श्रीश्यामदेव की कृपा से 'रामप्रसाद' नामक भक्त ने बनाया है। इस स्तोत्र के पाठ के द्वारा व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुकूल सर्व-विध भावनाओं को, नानाविध चमत्कारी सिद्धियों को, कुल की कीर्त्ति और दीर्घ आयुष्य को प्राप्त करता है ॥ १३ ॥

—०—

श्रीश्यामसंस्तवः

जय जय चतुरशीतिकोटिपरिवार सूर्यवर्चाभिधान यक्षराज, जय भूभारहरणप्रवृत्त लघुशापप्राप्तनैऋंतयोनिसम्भव, जय कामकटङ्कटाकुक्षिराजहंस, जय घटोत्कचानन्दवर्धन वर्वरीकाभिधान, जय कृष्णोपदिष्टश्रीगुप्तक्षेत्रदेवीसमाराधनप्राप्तातुलवीर्य, जय विजयसिद्धिदायक, जय पिङ्गला-रेपलेन्द्र-द्रुहद्रुहा-नवकोटीश्वरपलाशिदावानल, जय भूपातालान्तराले नागकन्यापरिहारक, जय भीममानमर्दन, जय सकलकौरवसेनावधमुहूर्तप्रवृत्त, जय श्रीकृष्णवरलब्धसर्ववरप्रदानसामर्थ्य, जय जय कलिकालवन्दित नमो नमस्ते पाहि पाहि।

—०—

तुलसीग्रहणमन्त्रः—

पूजनानन्तरं विष्णोरर्पितं तुलसीदलम्।
भक्षयामि विशुद्धयर्थं चान्द्रायणशताधिकम्॥

चरणामृतग्रहणमन्त्रः—

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्।
विष्णोः पादोदकं पीत्वा शिरसा धारयाम्यहम्॥

पञ्चामृतपानमन्त्रः—

दुःखदौर्भाग्यनाशाय सर्वपापक्षयाय च।
विष्णोः पञ्चामृतं स्वादु गृह्णामि शुभदं नृणाम्॥

प्रसादग्रहणमन्त्रः—

नैवेद्यमेतत्तुलसीविमिश्रं विशेषतः पादजलेन विष्णोः।
प्राश्नामि, मे स्यादचला च भक्तिर्यस्माद्धि यज्ञायुतकोटिपुण्यम्॥

श्रीश्यामदेवाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

[१]अनाद्यन्तो ह्य[२]—नन्तश्रीराकाशग[३] [४]इहागमः ।
[५]ईतित्राता [६]चोग्रदण्डः [७]ऊतिकृद्दृणशोधनः[८] ॥
[९]एकराडेतिह्यासिक्यमृग्य[१०] [११]ओषधिवीर्यदः ।
[१२]औपनिषदोंऽशुमान्[१३] [१४]केशप्रियः [१५]कल्याणवृत्तिदः ॥
[१६]कलिकालेऽद्भुताचिन्त्यशक्तिशाली [१७]कृतिप्रियः ।
[१८]खाटूग्रामकृतस्थानः [१९]खाटूयात्राजनप्रियः ॥
[२०]गुणाढ्यो [२१]गुणिसंरक्षी [२२]ग्रहभीतिविनाशकः ।
[२३]घटनाप्रिय[२४]श्चन्द्ररम्यश्छत्रधारी[२५] [२६]जयप्रदः ॥
[२७]झटित्याश्चर्यकारी च [२८]टुष्कोधी [२९]ठाकुरप्रभुः ।
[३०]डाकिनीत्रासनिर्हारी [३१]ढुण्ढारिक्षेत्रमध्यगः ॥
[३२]णकारइवदुर्लक्ष्यपदस्तेजस्तपोनिधिः[३३] ।
[३४]तपनीयाभूषणाढ्यो [३५]थूत्कारापहृतासुरः ॥
[३६]दृढव्रतो [३७]दृढप्रेमी [३८]दाता [३९]दानविधिप्रियः ।
[४०]धीरो [४१]धीरप्रियो [४२]धीमान् [४३]धीदाता [४४]धान्यवर्धनः ॥
[४५]धात्रीप्रियो [४६]धैर्यदाता [४७]न्यायकारी [४८]नतिप्रियः ।
[४९]पामराणामपि त्राता [५०]पापहारी [५१]पशुप्रदः ॥
[५२]फाल्गुनेऽफल्गुदाता च [५३]बहुबाहुर्भयापहः[५४] ।
[५५]भक्तप्रियो [५६]भक्तसखः [५७]भक्तभावप्रपोषकः ॥
[५८]भक्तिदो [५९]भक्तवचसां श्रोता च [६०]भजनप्रियः ।
[६१]मितभाषी [६२]मृषाद्वेषी [६३]यज्ञप्रेमी [६४]यमप्रियः ॥
[६५]रम्यमन्दिरमध्यस्थो [६६]लीलया बहुरूपधृक् ।
[६७]विशालभालतिलकः [६८]शरणागतवत्सलः ॥

[६९]षट्कर्मविद्यः [७०]सन्तानदाता तु [७१]हवनप्रियः ।
[७२]श्रीश्यामदेवो [७३]ब्रह्मण्यो [७४]बालकेशार्पणप्रियः ॥

[७५]दाम्पत्यक्षेमकर्त्ता च [७६]शुभोष्णीषी [७७]सदर्थंकृत् ।
[७८]उशीरवासितजलप्रियः [७९]केतकिगन्धभृत् ॥

[८०]कौसुम्भवर्णवस्त्राढ्यः [८१]केसरालेपनप्रियः ।
[८२]आयताक्षः [८३]सुदीप्ताक्षः [८४]सुनासाः [८५]विततश्रवाः ॥

[८६]शृङ्गारहृद्यो [८७]लोकेशो [८८]बर्बराकारकेशवान् ।
[८९]दर्शनीयतमः [९०] श्यामः [९१]सुललाटः [९२]सुविक्रमः ॥

[९३]किरीटी [९४]मणिरत्नाढ्यो [९५]मकराकृतिकुण्डली ।
[९६]श्वेतध्वजः [९७]स्मितमुखो [९८]भक्तानामभयङ्करः ॥

[९९]भक्तानां पालनार्थाय नानावेषधरोऽनघः[१००] ।
[१०१]सत्यप्रियः [१०२]प्राणदाता [१०३]सत्यसख्यः [१०४]सदावसुः ॥

[१०५]द्वादशीतिथिसंसेव्यः [१०६]साज्यचूर्णलिमप्रियः ।
[१०७]श्रीमद्भागवतास्वादरसिको[१०८]भूतिवर्धनः ॥

अष्टोत्तरशतं नाम्नां प्रभोः श्यामस्य सेव्यताम् ।
क्षेमः शिवं रोगदोष-निवृत्तिरनुभूयताम् ॥

श्रीश्यामकृपया ह्येतन्नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।
गोपालचन्द्रमिश्रस्तु लोके प्राचीकशच्छुभम् ॥

नामपारायणमाहात्म्यम्—

मद्विभूतीरभिध्यायन् श्रीवत्सास्त्रविभूषिताः ।
ध्वजातपत्रव्यजनैः स भवेदपराजितः ॥ (भा० ११।१५।३०)

अनेन ध्वजच्छत्र-चामरर्पणपरम्परापि श्रीश्यामभक्तानां युज्यते ।

श्रीहनुमत्पूजाविधिः

तत्र 'ॐ श्रीमन्मारुतनन्दनाय नमः' 'अर्घ्यं समर्पयामि, पाद्यं स०, आचमनं स०, स्नानं स०' इत्येवं नमोऽन्तं मन्त्रं समर्पणवाक्यसहितं प्रत्येकमुपचारे योजयेत्।

'ॐ वायुपुत्र महाबाहो यावत्पूजावसानकम्।
तावत्त्वं प्रीतिभावेन सुस्थिरो भव मारुते ॥ १ ॥
ॐ श्रीरामचरणाम्भोज-युगलस्थिरमानस ।
आवाहयामि देवेश हनुमंस्त्वां समर्चितुम् ॥ २ ॥' इत्यावाहनम्।
'ॐ नवरत्नमयं दिव्यं चतुरस्रमनुत्तमम्।
सौवर्णमासनं तुभ्यं कल्पये कपिनायक ॥ ३ ॥' इत्यासनं स०।
'ॐ सुवर्णकलशानीतं जलं सुष्ठु सुवासितम्।
पादयोः पाद्यमञ्जनानन्दन प्रतिगृह्यताम् ॥ ४ ॥' इति पाद्यम् स०।
'ॐ कुसुमाक्षतसम्मिश्रं दिव्यार्घ्यं रत्नसंयुतम्।
ददामि प्रेमतस्तुभ्यं गृह्यतां कपिपुङ्गव ॥ ५ ॥' इत्यर्घ्यं स०।
'ॐ हृद्यं सुगन्धसम्पन्नं शुद्धं शुद्धाम्बु सत्कृतम्।
वीरध्वज दयासिन्धो गृहाणाचमनीयकम् ॥ ६ ॥' इत्याचमनं स०।
ॐ रामदूताय विद्महे, वायुपुत्राय धीमहि। तन्नो हनुमत्प्रचोदयात् ॥ ७ ॥'
इति प्रोञ्छनम्। ॐ पवननन्दनाय नमः। धौतवस्त्रं समर्पयामि।
'ॐ दिव्यवृक्षसमुद्भूतं जिह्वालेहनकारकम्।
वानरेश महाबाहो गृह्यतां दन्तधावनम् ॥ ८ ॥'
इति तुलसीकाष्ठस्य चन्दनयुतं दन्तधावनम् स०।
'ॐ नानासुगन्धयुक्तेन भक्त्याहं दिव्यवारिणा।
शोधनं ते मुखाम्भोजं करिष्यामि कपीश्वर ॥९॥' इति मुखप्रक्षालनम् स०।
'ॐ मर्कटेश दयासिन्धो सर्वसङ्कटनाशन।
अभ्यङ्गोद्वर्तनं चूर्णं तुभ्यं देव समर्पये ॥ १० ॥'
इत्यङ्गोद्वर्त्तनं (चन्दनं) स०।

'ॐ नमोस्तु वायुपुत्राय भक्तार्तिहारिणे सदा ।
मधुपर्कं गृहाणेदं भक्त्या सम्पादितं मया ॥' इति मधुपर्कं स० ।
'ॐ मध्वाज्यक्षीरदधिभिः सगुडैर्मन्त्रसंयुतैः ।
पञ्चामृतैः पृथक्स्नानैः सिञ्चामि त्वां कपीश्वर ॥ १२ ॥'
इति पञ्चामृतस्नानं स० (अत्र शर्करास्थाने गुडं गृह्णीयात्) ।
'ॐ सुवर्णकलशानीतैर्गङ्गादिसरिदुद्भवैः ।
शुद्धोदकैः कपीश त्वां संस्नापयामि मारुते ॥ १३ ॥'
इति शुद्धोदकस्नानं स० ।
'ॐ दिव्यनागसमुद्भूतं सर्वमङ्गलकारकम् ।
तैलेनाभ्यङ्गयिष्यामि सिन्दूरं गृह्यतां हरे ॥ १४ ॥'
इति सिन्दूरं (तैलयुतं) स० ।
'ॐ ग्रथितां नवभी रत्नैर्मेखलां त्रिगुणीकृताम् ।
मौञ्जीं मुञ्जामयीं पीतां गृहाण पवनात्मज ॥ १५ ॥' इति मेखलां स० ।
'ॐ कौशेयं कपिशार्दूल हरिद्राक्तं सुमङ्गलम् ।
कटिसूत्रं गृहाणेदं कौपीनं ब्रह्मचारिणः ॥ १६ ॥' इति कौपीनम् स० ।
'ॐ ब्रह्मणा निर्मितं सूत्रं विष्णुग्रन्थिसमन्वितम् ।
दिव्यं यज्ञोपवीतं ते ददामि पवनात्मज ॥ १७ ॥' इति यज्ञोपवीतम् स० ।
'ॐ पीताम्बरं सुवर्णाभं दिव्यतेजःसमन्वितम् ।
अङ्गसंरक्षणं देव गृह्यतां कपिनायक ॥ १८ ॥' इत्युत्तरीयवस्त्रम् स० ।
'ॐ किरीटहारकेयूररत्नकुण्डलकङ्कणम् ।
गृह्यतां वानराधीश रजतस्वर्णभूषणम् ॥ १९ ॥' इत्याभूषणकं स० ।
'ॐ दिव्यकर्पूरसंयुक्तं शीतमानन्दवर्द्धनम् ।
सकुङ्कुमं पीतगन्धं गृह्यतां हरिपुङ्गव ॥ २० ॥' इति चन्दनं स० ।
'ॐ चम्पकैः शतपत्रैश्च कुन्दपाटलजातिभिः ।
पूजये त्वां कपिश्रेष्ठसपुष्पैस्तुलसीदलैः ॥ २१ ॥' इति तुलसीपुष्पाणि स० ।

'ॐ कल्पद्रुम कलौ साक्षाद् भक्तानां कार्यसाधक।
नमस्ते वायुपुत्राय ह्यङ्गपूजां गृहाण मे॥ २२॥' इति प्रार्थनां विधाय गन्धाक्षतपुष्पैः अङ्गपूजां कुर्यात्—

ॐ श्रीहनुमते नमः पादौ पूजयामि। ॐ सुग्रीवसखाय नमो गुल्फौ पूज०। ॐ अङ्गदमित्राय नमो जङ्घे पूज०। ॐ श्रीरामदासाय नमः ऊरू पूज०। ॐ अक्षघ्नाय नमः कटिं पूज०। ॐ लङ्कादहनाय नमः (बालं) पुच्छं पूज०। ॐ राममणिप्रदाय नमो नाभिं पूज०। ॐ सागरोल्लङ्घनाय नमो मध्यं पूज०। ॐ लङ्कामर्दनाय नमः केशावलिं पूज०। ॐ सञ्जीवनीहर्त्रे नमः स्तनौ पूज०। ॐ सौमित्रिप्राणदाय नमो वक्षःस्थलं पूज०। ॐ कुण्ठितदशवदनाय नमः कण्ठं पूजयामि। ॐ श्रीरामाभिषेककारिणे नमो हस्तौ पूज०। ॐ मन्त्ररचितरामायणाय नमो मुखं पूज०। ॐ प्रसन्नवदनाय नमो वदनकपोलौ पूज०। ॐ पिङ्गनेत्राय नमो नेत्रे पूज०। ॐ श्रुतिपारगाय नमः श्रुतिं पूज०। ॐ ऊर्ध्वपुण्ड्रधारिणे नमो ललाटं पूज०। ॐ मणिकण्ठमालिने नमः शिरः पूज०। ॐ सर्वाभीष्टप्रदाय नमः सर्वाङ्गानि पूजयामि। इत्यङ्गपूजा।

'ॐ दिव्यं सुगुग्गुलं साज्यं दशाङ्गं ससुगन्धकम्।
गृहाण मारुते धूपं सुप्रियं घ्राणतर्पणम्॥ २३॥' इति धूपं स०।

'ॐ घृतपूरितमुज्ज्वालं वर्तिकर्पूरसंयुतम्।
दीपं गृहाण देवेश अञ्जनानन्दवर्द्धन॥ २४॥' इति दीपं स०।

ॐ शाल्यन्नं मोदकं दिव्यं शाकापूपसमन्वितम्।
साज्यं दधि पायसञ्च नैवेद्यं गृह्यतां हरे॥ २५॥ इति नैवेद्यं स०।

'ॐ शीतलं स्वादु शुद्धञ्च पुष्पादिवासितं कपे।
पानीयं पावनोद्भूतं स्वीकुरु त्वं दयानिधे॥ २६॥' इति जलं स०।

'ॐ फलं नानाविधं स्वादु पक्वं शुद्धं सुशोधितम्।
समर्पितं मया नाथ गृह्यतां कपिनायक॥ २७॥' इति फलानि स०।

ॐ वायुपुत्र नमस्तुभ्यं कावेरीदिव्यवारिणा ।
हस्तप्रक्षालनं पूर्वं स्वीकुर्वाचमनीयकम् ॥ २८ ॥' इत्याचमनं स० ।
'ॐ ताम्बूलं भगवद्भोग्यं मुखसौगन्धिकृत्परम् ।
आञ्जनेय महाबाहो ताम्बूलं गृह्यतां कपे ॥ २९ ॥' इति ताम्बूलं स० ।
'ॐ घृतवर्ति सकर्पूरं चन्द्रसूर्याग्नितैजसम् ।
नानाज्योतिर्मयं दिव्यं गृहाणारात्रिकं हरे ॥ ३० ॥' इत्यारात्रिकम् स० ।
'ॐ नमो भगवते सर्वभूतात्मने हनुमते वायुनन्दनाय,
सर्वात्मसंयोगसिद्धदिव्यपद्मपीठात्मने नमः ॥ ३१ ॥'
'ॐ यथर्तुसम्भवैः पुष्पैर्भक्त्यार्पितैश्च मारुते ।
पुष्पाञ्जलिमहं दद्मि सङ्गृहाण कपीश्वर ॥ ३२ ॥' इति पुष्पाञ्जलि स० ।
'ॐ यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु हनुमँस्त्वत्प्रदक्षिणात् ॥३३॥' इति प्रदक्षिणां कुर्यात् ।
'ॐ नमस्तेऽस्तु महावीर नमस्ते वायुनन्दन ।
विलोक्य कृपया नित्यं त्राहि मां भक्तवत्सल ॥३४॥' इत्यपराधक्षमापनम् ।
'ॐ वायुपुत्र महाबाहो भक्तरक्षार्थतत्पर ।
सर्वाभीष्टं प्रयच्छ त्वं प्रसन्नो भव मारुते ॥ ३५ ॥' इत्यभीष्टयाचनम् ।
'ॐ अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेकः शरणञ्च मे ।
इति मत्वा हरिश्रेष्ठ रक्ष रक्ष भवार्णवात् ॥ ३६ ॥' इत्यात्मरक्षणम् ।
'ॐ कोटिकोटिसहस्राणि नतयो विलसन्तु ते ।
त्वद्भक्तदासदासानां चरणार्चनमस्तु मे ॥' ३७ ॥
'ॐ उपचारैः समस्तैस्तु यत्पूजा च मया कृता ।
तत्सर्वं पूर्णतां यातु ह्यपराधं क्षमस्व मे ॥३८॥' इति पुनरपराधक्षमापनम् ।
ततो रामनामसङ्कीर्तनं श्रावयित्वा
'ॐ अञ्जनार्भक देवेश मर्कटेश दयानिधे ।
भक्त्यार्चनफलं भक्तिं देहि गच्छ यथागतम् ॥ ३९ ॥' इति विसर्जनम् ।

इति श्रीहनुमत्पूजाविधिः ।

भारतसारीयमितिवृत्तम्

प्रथमोऽध्यायः

वैशम्पायन उवाच—

❀ कृष्णः शराणां त्रितयं दृष्ट्वा भीमात्मजस्य च ।
वर्वरीकस्य हस्ते वै नाशमिच्छन् जहास ह ॥ १ ॥

भीमार्जुन ! महावीरा । वर्वरीकस्य पौरुषम् ।
पश्यन्तु धनुषो रूपं बाणानां त्रितयं तथा ॥ २ ॥

भग्नेष्वेतेषु बाणेषु केन युद्धं करिष्यति ।
अर्जुनाद्या महावीरा वृथा किं बाणधारकाः ॥
वदतीत्थं हि विष्णौ सः प्रोवाचेदं वचो हसन् ॥ ३ ॥

वर्वरीक उवाच—

अथैकसायकाद्विष्णो ! मारयामि नृपोत्तमान् ।
द्वाभ्यां वै साधये कृत्यं स्थित्वा भग्ने बलेऽप्यहम् ॥ ४ ॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा कृष्णः पप्रच्छ भीमजम् ।
वर्वरीक ! महाबाहो ! कथं कृत्यं करिष्यसि ॥ ५ ॥

वर्वरीक उवाच—

बाणेनैकेन योद्धृणां मृत्युं सम्यक् विलक्षये ।
पश्चान्निष्कासये जीवं तत्क्षणान् मधुसूदन ! ॥ ६ ॥

हसित्वानन्तरं विष्णुः प्रोवाच छलयन् गिरा ।
मन्मृत्युं चापि जानीहि ततस्त्वां मानये दृढम् ॥ ७ ॥

इति विष्णुवचः श्रुत्वा मुमोच गगने शरम् ।
सप्तलोकान् गतो बाणो मृत्युं तत्र न पश्यत ॥ ८ ॥

❀ 'महाभारतीयसंग्रामाय समुपस्थितवाराणां महारथ्यादिबलनिर्देशसमये' इत्यंशः कथासङ्गत्यै पूर्वतोऽनुध्येयः ।

इदमितिवृत्तं समुपलब्धादर्शपुस्तकानुसारेण यथातथमेव समुपस्थाप्यते ।

चतुर्दिक्षु विलोक्याथ पश्चात्पातालमाविशत् ।
पातालं सप्तमं गत्वा तत्र मृत्युमपश्यत ॥ ९ ॥

विष्णोः पार्ष्णिं समासाद्य सिन्दूराङ्कमुखेन वै ।
वह्निं कृत्वा बर्बरीकसमीपमगमत् शरः ॥ १० ॥

द्वितीयं तु पुनर्बाणं यावत्त्यक्ष्यति सादरम् ।
तावत् स विष्णुना दृष्टो बर्बरीकस्तदाहसत् ॥ ११ ॥

विष्णुः पार्ष्णि समालोक्य सिन्दूरेण सुचिह्नितम् ।
बर्बरीकं महात्मानं ज्ञात्वा तूष्णीं बभूव ह ॥ १२ ॥

द्वितीये दिवसे विष्णुः समाभाष्य च पाण्डवान् ।
उवाच भ्रामयन् नाशं करिष्यन् भीमजस्य वा ॥ १३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच—

बलिना युद्धभूमिर्हि पूजनीया जयाय वै ।
नो वा चेद्रणभूमिर्हि भक्षयिष्यति पाण्डवान् ॥ १४ ॥

पाण्डवा ऊचुः—

अस्माकं हि तदाप्यन्यो हितो नास्ति धरातले ।
गजाश्वनरजीवानां बलं कस्य भवेद् विभो ! ॥
कथ्यतां चात्र तत्सर्वमस्मद्युद्धे जयो भवेत् ॥ १५ ॥

श्रीकृष्ण उवाच —

द्वात्रिंशल्लक्षणैर्युक्तो वीरो योद्धा भवेच्च यः ।
यदा चास्तु बलित्वे वै नृणां त्याज्यो जयिष्णुभिः ॥ १६ ॥

पाण्डवा ऊचुः—

बलेऽस्माकं बलित्वे वै को योग्योऽस्ति च तं वद ।
इति तेषां वचः श्रुत्वा जलैरापूर्य चक्षुभिः ॥ १७ ॥
उवाच पाण्डवान् कृष्णो विदुषां भ्रान्तिकारकः ॥ १८ ॥

श्रीकृष्ण उवाच—

अहमत्र तथा वीरा ! बर्बरीकोऽस्ति मत्समः ।
अर्जुनोऽप्यथवा चात्र हन्यतां नात्र संशयः ॥ १९ ॥
एके नष्टे हि सर्वत्र जीविष्यन्ति हि नान्यथा ।
वैरिणो हि मरिष्यन्ति यदि त्राता बृहस्पतिः ॥ २० ॥
इति तस्य वचः श्रुत्वा विष्णोः संसाररूपिणः ।
प्रहसन् बर्बरीकोऽसौ प्राह सर्वांश्च पाण्डवान् ॥ २१ ॥

बर्बरीक उवाच—

कृष्णार्जुनौ विना सर्वे निष्फलाश्चात्र संयुगे ।
भवद्भिर्हन्यतां तत्र मच्छिरो वा जयोऽस्तु वः ॥ २२ ॥
राज्यं कुर्वन्तु सर्वे वै मे भाग्यं किमतः परम् ।
इत्युक्त्वैकेन हस्तेन शिखाग्रं धृतवान् स्वयम् ॥ २३ ॥
द्वितीयेन शिरश्छित्त्वा संप्रार्थ्य कृष्णमीदृशम् ।
कृष्ण ! कृष्णाप्रमेयात्मन् ! भूभारोत्तारक ! प्रभो ! ॥ २४ ॥
यथा युद्धं भवेदत्र द्रष्टुकामोऽस्मि तादृशम् ।
त्वत्प्रसादेन सर्वं हि युद्धं दर्शय नान्यथा ॥ २५ ॥
मुक्तिं प्रापय विष्णो ! मां दासदासं हि त्वत्पदम् ।
इति भक्तस्य वाक्यानि समाकर्ण्य हरिर्भृशम् ॥ २६ ॥
उद्विग्नोऽभूच्च राजेन्द्र ! एवमस्त्विति चावदत् ।
तस्य शीर्षं समागत्य पपात कृष्णपादयोः ॥ २७ ॥
हस्ताभ्यां प्रतिगृह्याथ स्थापयामास पर्वते ।
अवलोकय वीर ! त्वं यथा युद्धं भविष्यति ॥ २८ ॥
एवं सम्पाद्य कृष्णोक्तं युद्धाय कृतनिश्चयः ।
विशोक इव राजेन्द्र तदद्भुतमिवाभवत् ॥ २९ ॥
हेमन्ते प्रथमे मासि त्रयोदश्यां सिते दले ।
भौमवारे भरण्यां च संगरोऽभूत्तदा महान् ॥ ३० ॥

इति श्रीभारतसारे उद्योगपर्वणि अष्टपञ्चाशत्तमः
(श्रीश्यामदेवेतिवृत्ते प्रथमः) अध्यायः ।

द्वितीयोऽध्यायः

❀ स्पर्द्धतस्तान् समाज्ञाय पाण्डवान् मदर्दपितान् ।
तेषामुत्तारयन् गर्वं प्रोवाच संहसन् हरिः ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण उवाच—

भीमार्जुनमुखा वीराः कृतयुद्धा रणाङ्गणे ।
आगच्छन्तु मया सार्धं वर्बरीकं ममाज्ञया ॥ २ ॥
अवलोकाय युद्धस्य भवतां स्थित एव स ।
यथा यैर्यादृशं युद्धं कृतं स्यात्तत्तथैव तु ॥ ३ ॥
यथार्थं सत्यवादित्वाद्वदिष्यति न चान्यथा ।
इति कृष्णवचः श्रुत्वा भीमसेनपुरःसराः ॥ ४ ॥
जग्मुः कृष्णेन सहिता यत्र भीमसुतो बली ।
तत्र गत्वा हरिर्वाक्यं प्रोवाच भीमनन्दनम् ॥ ५ ॥

श्रीकृष्ण उवाच—

वर्बरीक महावीर पाण्डवानां जयप्रद ।
आत्मनो नाशमापद्य पित्रे राज्यं हि दत्तवान् ॥ ६ ॥
अस्माकं पृच्छतां तस्य तद्वदस्व न चान्यथा ।
मासि मासि रजः स्त्रीणां योनौ वहति शोणितम् ॥ ७ ॥
पिबन्ति पितरस्तस्य विवादे योऽनृतं वदेत् ।
इति तस्य वचः श्रुत्वा वर्बरीकोऽवदद्धसन् ॥ ८ ॥

वर्बरीक उवाच—

कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन् नाथ दुष्टनिबर्हण ।
कृत्यायुतं मया दृष्टं चक्रं तव सुदर्शनम् ॥ ९ ॥

❀ 'युद्धान्ते अहमहमिकया पाण्डवा बलं श्लाघयन्त आसुः । तदा' इति पूर्वांशो ज्ञेयम् ।

चीराणां छेदकं तत्तु कृत्या तेषां तु भक्षिका।
उभयोर्बलयोर्मध्ये नान्यद् दृष्टं विनाशनम् ॥ १० ॥
वीराणां भूरिभाराणां हन्त्रो संयोजिता त्वया।
चक्रमेव मया दृष्टं नाथ दुष्टविनाशकम् ॥ ११ ॥
तातादयो महावोरा उभयोः सैन्यसङ्गरे।
गर्जन्तो क्षेपणार्थाय नाचलन् यवमात्रकम् ॥ १२ ॥
इत्थमावेदयन्तं तं पुत्रं भीमः पदाहनत्।
समुद्रक्षेपणार्थाय नाचलद्यवमात्रकम् ॥ १३ ॥
कृष्णो गृहीत्वा हस्ताभ्यां तच्छिरः परमाद्भुतम्।
बर्बरीकस्य राजेन्द्र स्वल्पहास्यसमन्वितम् ॥ १४ ॥
तन्मुखान्निःसृतं तेजः कृष्णस्य मुखमाविशत्।
पश्चात्तु तच्छिरो रम्यं चलत्कुण्डलमण्डितम् ॥ १५ ॥
आक्षिपत् गगने कृष्णस्तद् 'ययौ प्रमुदा सुखम्' ॥ १६ ॥

इति श्रीभारतसारे अनुशासनपर्वणि अष्टसप्ततितमः
(श्रीश्यामदेवेतिवृत्ते द्वितीयः) अध्यायः।

—:❀:—

कथाश्रवणविधिः

अथ श्रीश्यामदेवकथाश्रवणम् । तत्रादौ पूजनम् । स्नातः शुचिः शुद्धवस्त्रं परिधाय पूजनदेशमागत्य स्वासने प्राङ्मुख उपविश्य स्वाभिमुखं भगवतः शालग्रामविग्रहं स्थापयित्वा, पूजोपकरणानि नैवेद्यं च यथावदुपकल्प्य, रक्षादीपं कृत्वा, आत्मानं पूजासम्भारांश्च पावयित्वा, आचम्य प्राणानायम्य पवित्रं धृत्वा मङ्गलश्लोकान् मन्त्रांश्च पठित्वा सङ्कल्पं कुर्यात् । सङ्कल्पे—देशकालौ गोत्रनामादिकं च सङ्कीर्त्य 'भगवतः श्रीश्यामदेवस्य प्रसादसुमुखदृष्टिप्राप्तये ममात्मनः कार्यसिद्धिप्रतिबन्धकानां दुरितजानां सकलसंस्काराणां विलयनपुरः सरं कार्यसाधकानां सुकृतजन्यानां देवतानुग्रहप्राप्तव्यानां च संस्काराणामभिवर्धनाय भगवतः श्रीश्यामदेवस्य यथासम्पादितोपचारैः पूजनम्, कथाश्रवणं च करिष्ये' इति सङ्कल्प्य गणपतिपूजनं ग्रहपूजनं च कृत्वा शालग्रामविग्रहे भगवतः श्रीश्यामदेवस्य श्रद्धया पूजनं कुर्यात् । तत्रादौ—

ध्यानम्—[ॐ विष्णो रराटमसि० ॐ सहस्रशीर्षा०]

भृत्यानुकम्पितधियेह गृहीतमूर्तेः सञ्चिन्तयेद् भगवतो वदनारविन्दम् ।
यद् विस्फुरन्मकरकुण्डलवल्गितेन विद्योतितामलकपोलमुदारनासम् ॥
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । ध्यायामि ।

आसनम्—[ॐ पुरुष एव०]

सर्वान्तर्यामिणे देव ! सर्वबीजमयं शुभम् ।
स्वात्मस्थाय परं शुद्धमासनं कल्पयाम्यहम् ॥
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । आसनं समर्पयामि ।
(अथवा आसनार्थे पुष्पं समर्पयामि)

पाद्यम्—[ॐ एतावानस्य]

यद् भक्तिलेशसम्पर्कात् परमानन्दसम्भवः ।
तस्मै ते चरणाब्जाय पाद्यं शुद्धाय कल्प्यते ॥
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । पाद्यं समर्पयामि ।

अर्घ्यम्—[ॐ त्रिपादूर्ध्वः०]

तापत्रयहरं दिव्यं परमानन्दलक्षणम् ।
तापत्रयविनिर्मुक्त्यै तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम् ॥
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । अर्घ्यं समर्पयामि ।

आचमनीयम्—[ॐ ततो विराड०]

वेदानामपि वेदाय देवानां देवतात्मने ।
आचामं कल्पयामीश ! शुद्धानां शुद्धिहेतवे ॥
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । आचमनीयं समर्पयामि ।

मधुपर्कम्—पात्रसम्पुटे दधि मधु घृतमेकीकृत्य दद्यात् ।

[ॐ मधु वाता०]

सर्वकालुष्यहीनाय परिपूर्णसुखात्मने ।
मधुपर्कमिदं देव ! कल्पयामि प्रसीद मे ॥
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । मधुपर्कं समर्पयामि ।

पुनराचमनीयम्—[ॐ ततो विराड०]

उच्छिष्टोऽप्यशुचिर्वापि यस्य स्मरणमात्रतः ।
शुद्धिमाप्नोति तस्मै ते पुनराचमनीयकम् ॥
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । पुनराचमनीयं समर्पयामि ।

तैलस्नेहम्—[ॐ अदित्यास्त्वा०]

स्नेहं गृहाण स्नेहेन लोकनाथ ! महाशय ! ।
सर्वलोकेषु शुद्धात्मन् ! ददामि स्नेहमुत्तमम् ॥
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । स्नेहं समर्पयामि ।

पञ्चामृतस्नानम्—[ॐ पञ्च नद्यः०]

स्नानं पञ्चामृतैर्देव ! गृहाण पुरुषोत्तम ! ।
अनाथनाथ ! सर्वज्ञ ! गीर्वाण ! प्रणतप्रिय ! ॥
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि ।

शुद्धोदकस्नानम्—[ॐ तस्माद्यज्ञात्०]

परमानन्दबोधाब्धि-निमग्ननिजमूर्तये ।
साङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयाम्यहमीश ! ते ॥
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।

अभिषेकम्—सति विभवे कुर्यात् । [तत्र पुरुषसूक्तादिवैष्णवमन्त्राणां पाठः]

सहस्रं वा शतं वापि यथाशक्त्यादरेण च ।
गन्धपुष्पादिकैरीश ! मनुना चाभिषिञ्चये ॥
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । अभिषेकं समर्पयामि ॥

परिधानीयवस्त्रम्—[ॐ तस्माद्यज्ञात्० ऋचः०]

मायाचित्रपटच्छन्न-निजगुह्योरुतेजसे ।
निरावरणविज्ञान ! वासस्ते कल्पयाम्यहम् ॥
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । परिधानीयवस्त्रं समर्पयामि ।

उत्तरीयवस्त्रम्—[ॐ युवा युवासाः०]

यमाश्रित्य महामाया जगत्सम्मोहिनी सदा ।
तस्मै ते परमेशाय कल्पयाम्युत्तरीयकम् ॥
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । उत्तरीयवस्त्रं समर्पयामि ।

यज्ञोपवीतम्—[ॐ तस्मादश्वा०]

यस्य शक्तित्रयेणेदं सम्प्रोतमखिलं जगत् ।
यज्ञसूत्राय तस्मै ते यज्ञसूत्रं प्रकल्पये ॥
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । यज्ञोपवीतं समर्पयामि ।

गन्धम्—[ॐ तं यज्ञम्०]

परमानन्दसौरभ्य-परिपूर्णदिगन्तरम् ।
गृहाण परमं गन्धं कृपया परमेश्वर ! ॥
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । गन्धं समर्पयामि ।

पुष्पम्—[ॐ यत्पुरुषम्०]

तुरीयवनसम्भूतं नानागुणमनोहरम् ।
अमन्दसौरभं पुष्प गृह्यतामिदमुत्तमम् ॥
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । पुष्पं समर्पयामि ।

तुलसीपत्रम्—[ॐ अग्नेदब्धायो०]

तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिया ।
त्वदङ्गसम्भवैर्नित्यं पूजयामि प्रियं हरिम् ॥ (प० पु०)
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । तुलसीपत्रं समर्पयामि ।

शमीपत्रम्—[खेजड़े को (छोंकरकी) लूंग] [ॐ ऋतवस्त०]

अमङ्गलानां शमनीं शमनीं दुष्कृतस्य च ।
दुःस्वप्ननाशिनीं धन्यां प्रपद्येऽहं शमीं शुभाम् ॥ (नि० सि०)
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । शमीपत्रं समर्पयामि ।

परिमल-(इत्र)-द्रव्यम्—[ॐ अहिरिव०]

स्वभावसुन्दराङ्गाय नानाशक्त्याश्रयाय च ।
भूषणानि विचित्राणि कल्पयाम्यमरार्चित ! ॥
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । परिमलद्रव्यं समर्पयामि ।

धूपम्—(घण्टानादेन) [ॐ ब्राह्मणोस्य०]

वनस्पतिरसं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् ।
आघ्रेयं देवदेवेश ! धूपं भक्त्या गृहाण मे ॥
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । धूपं समर्पयामि ।

दीपम्—(घण्टानादेन) [ॐ चन्द्रमा मनसः]

सुप्रकाशं महादीपं सर्वदा तिमिरापहम् ।
घृतवर्तिसमायुक्तं गृहाण मम सत्कृतम् ॥
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । दीपं समर्पयामि ।
हस्तप्रक्षालनम् ।

नैवेद्यम्—(घण्टानादेन) [ॐ नाभ्या आसीद्०]

अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम् ।
भक्त्या गृहाण मे देव ! नैवेद्यं तुष्टिदं सदा ॥
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । नैवेद्यं समर्पयामि ।
आचमनीयं समर्पयामि । मध्ये पानीयं समर्पयामि ।
उत्तरापोशानं समर्पयामि ।

ताम्बूलम्—[ॐ यत्पुरुषेण०]

नागवल्लीदलं श्रेष्ठं पूगखादिरचूर्णयुक् ।
कर्पूरादिसुगन्धाढ्यं यद्दत्तं तद् गृहाण मे ॥
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । ताम्बूलं समर्पयामि ।

दक्षिणाम्—[ॐ हिरण्यगर्भः सम०]

कृतार्थोऽनुगृहीतोऽस्मि सफलं जीवितं मम ।
आगतो देवदेवेशो द्रव्यार्चनमिदं नमः ॥
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । दक्षिणां समर्पयामि ।

पुष्पाञ्जलिम्—[ॐ इदं विष्णुः०]

यस्य दर्शनमिच्छन्ति देवाः स्वाभीष्टसिद्धये ।
तस्मै ते परमेशाय पुष्पाञ्जलिरयं नमः ।
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ।

नमस्कारम्—कुर्यात् [ॐ नमः सु ते०]

अभक्तवाङ्मनश्चक्षुः—श्रोत्रदूरायितद्युते !
श्रीश्याम ! भगवन् ! देव ! नमस्तुभ्यं नमो नमः ॥
भगवते श्रीश्यामदेवाय नमः । नमस्करोमि ।

ब्रह्मार्पणम्—भक्तियुक्तः भगवन्तं श्रीश्यामदेवं ध्यायन् पठेत्—

ॐ इतः पूर्वं प्राण-बुद्धि-धर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्नेन यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं

ब्रह्मार्पणं भवतु स्वाहा। मां मदीयं च सकलं विष्णवे ते समर्पये ॐ तत्सत् (ना० पु०)। ततः भगवन्तं प्रसन्नं ध्यात्वा स्वेष्टपरिवारयुतः कथाश्रवणं कुर्यात्। तत्रादौ—

पुस्तके सरस्वतीपूजनम्—[ॐ पावका नः०]

शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीम्,
वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम्।
हस्ते स्फाटिकमालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थिताम्,
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम्॥

पुस्तकाधिष्ठातृदेवतायै श्रीसरस्वत्यै नमः।

व्यासपूजनम्—[ॐ रुचं ब्राह्मम्०]

व्याख्यामुद्रिकया लसत्करतलं सद्योगपीठस्थितम्,
वामे जानुतले दधानमपरं हस्तं सुविद्यानिधिम्।
विप्रव्रातवृतं प्रसन्नमनसं पाथोरुहाङ्गद्युतिम्,
पाराशर्यमतीव पुण्यचरितं व्यासं स्मरेत् सिद्धये॥

(ना० पूर्व ८१।१३६)

कथाप्रवचनकर्त्रे व्यासाय ब्रह्मणे नमः।

तदनन्तरं व्यासमुखात् कथां शृणुयात्।

—:❀:—

श्रीश्यामदेवाय नमः

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

श्रीश्यामदेवकथा

भृत्यानुकम्पितधियेह गृहीतमूर्तेः सञ्चिन्तयेद् भगवतो वदनारविन्दम् ।
यद्विस्फुरन्मकरकुण्डलवल्गितेन विद्योतितामलकपोलमुदारनासम् ॥ १ ॥

अहो बकीयं स्तनकालकूटं जिघांसया पाययदप्यसाध्वी ।
लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥ २ ॥

नारायणाय नमः । नराय नमः । नरोत्तमाय नमः । देव्यै नमः ।
सरस्वत्यै नमः । व्यासाय नमः । श्रीश्यामदेवाय नमः ।

श्रीश्यामदेवकथा-हिन्दी अनुवाद

बाबा श्री श्रीश्याम को, बन्दौं माथ नवाय ।
सन्मति दीजे मोहि प्रभु, हृदय भक्ति हुलसाय ॥

श्रीश्यामदेव कथा की भाषा टीका प्रारम्भ की जाती है ।

मङ्गलाचरण—श्रीश्यामजी महाराज का ध्यान भक्तजनों के ऊपर कृपा करने की बुद्धि से साकार रूप धारण करनेवाले भगवान् के उस 'श्रीश्यामजी के नाम से प्रसिद्ध' मुखकमल का ध्यान करना चाहिये जो मुखारविन्द स्वच्छ कपोलों पर चमकते हुए, मकर के समान आकृतिवाले कानों के कुण्डलों की धीमी हिलती हुई परछाँई से अधिक सुन्दर हो रहा है, और सुडौल लम्बी नासिका से सुशोभित हो रहा है ॥ १ ॥

भगवान् की दयालुता—अहो! आश्चर्य है कि निन्दनीय कार्य करनेवाली इस पूतना राक्षसी ने मारने की इच्छा से महाघोर जहर के स्तन को पिलाकर भी स्नेहभाव रखनेवाली माता के समान गति पाई है, तो इसप्रकार केवल कार्य की अच्छाई पर ध्यान देनेवाले दयाशील (दयामय) भगवान् श्रीकृष्ण और उनके 'श्रीश्यामरूप' को छोड़कर किसकी शरण में जाँय ? ॥ २ ॥

नमस्कार—नारायण भगवान् को नमस्कार है । नररूपी भगवान् को नमस्कार है। नरोत्तमस्वरूप भगवान् को नमस्कार है। देवीजी को नमस्कार है। सरस्वतीजी को नमस्कार है। व्यासजी महाराज को नमस्कार है। श्रीश्यामदेव को नमस्कार है ।

अथ प्रथमोऽध्यायः

शौनक उवाच—

'घटोत्कचसुतो भैमिर्वर्वरीको महायशाः।
भारतीयरणारम्भे शिरश्छेदमवाप्य यः ॥ १ ॥

श्रीकृष्णात्तत्प्रसादेन कलौ पूज्यत्वमेयिवान्।
श्यामाभिधो महावीर्यस्तस्य पुण्यकथां वद' ॥ २ ॥

को न्वसौ चण्डिलो नाम विजयो नाम कस्तथा।
कथं च प्राप्तवान् सिद्धिं सिद्धमातुः प्रसादतः ॥ ३ ॥

एतदाचक्ष्व तत्त्वेन श्रोतुं कौतूहलं हि नः।
सतां चरित्रश्रवणे कौतुकं कस्य नो भवेत् ॥ ४ ॥

❀ प्रथम अध्याय का आरम्भ ❀

❀ कथा ❀ शौनकजी ने कहा—हे मुने ! भीमसेन के पौत्र एवं महावीर 'घटोत्कच' के पुत्र महायशस्वी 'वर्वरीक'—जो महाभारत युद्ध के आरम्भ में शरीर से शिर की पृथक्ता प्राप्तकर ॥ १ ॥ भगवान् श्रीकृष्णदेव की कृपा से कलियुग में पूजनीयता को प्राप्त हुए हैं, उन 'श्याम' नाम से प्रसिद्ध महापराक्रमी देवता की पवित्र कथा का वर्णन कीजिए ॥ २ ॥ [आपने पहले कथा के प्रसंग में चण्डिल और विजय का नाम बताया है] यह 'चण्डिल' कौन है ? और 'विजय' कौन है ? उसने सिद्धमाता की कृपा से कैसे सिद्धि पाई ? ॥ ३ ॥ यह सब यथार्थरूप से आप हमको बताइये क्योंकि सत्पुरुषों के चरित्र के सुनने में किसकी उत्कण्ठा नहीं होती है ? सबकी ही होती है, इसलिए हमलोगों को सुनने की बड़ी उत्कण्ठा है ॥ ४ ॥

उग्रश्रवा उवाच—

साधु पृष्टमिदं विप्राः 'श्रीश्यामचरितात्मिकाम्' ।
श्रुतां द्वैपायनमुखात् कथां वक्ष्यामि चात्र वः* ॥ ५ ॥
†धर्माज्ञां[1] शिरसा गृह्य हैडिम्बिर्भार्ययान्वितः ।
शुभं हिडिम्बस्य वने स्वराज्यं समुपाव्रजत् ॥ ६ ॥

उग्रश्रवाजी (सूतजी के पिता) ने कहा—हे भूदेवो ! आपलोगों ने यह बहुत अच्छा प्रश्न किया है। यहाँ मैं आपलोगों को द्वैपायन (व्यास) महर्षि के मुख से सुनी हुई 'श्रीश्यामचरित' की कथा को कहता हूँ ॥ ५ ॥

❀ पूर्वप्रसङ्ग—❀ एक समय हस्तिनापुर राजधानी में धर्मराज युधिष्ठिर राजसभा में भगवान् श्रीकृष्ण के साथ बैठे हुए थे, उसीसमय महाबली 'घटोत्कच' जो भीमसेन की 'हिडिम्बा' भार्या से हुआ था—अपने पिता आदि के दर्शनार्थ उपस्थित हुआ। उससमय घटोत्कच की विवाह के

* स्कन्द पु० कौ० खं० ५९ अ० ।

† स्कान्दे कौ० खं० ६०।५९–६५।११५ ।

१. धर्मस्य=धर्मराजस्य युधिष्ठिरस्य, आज्ञां=आदेशम् । स्वराज्यपालनाय प्रस्थोयतामितिरूपाम् । तथा ह्यत्रापेक्षितकथासंक्षेपः—

एकदा हस्तिनापुरे धर्मराजः सभामध्ये श्रीकृष्णसहितो विराजते स्म। तदानीमेव भीमपुत्रो हिडिम्बागर्भसंभूतो घटोत्कचः पितॄणां दर्शनार्थमुपाजगाम । कुशलवार्ताद्यनन्तरं युधिष्ठिरेण घटोत्कचस्य वैवाह्यत्वमुपलक्ष्य योग्यकन्यानिर्देशप्रश्न उपस्थापितः । श्रीकृष्णेन विजयशुल्कलब्धव्यायाः प्राग्ज्योतिषपुरमधितिष्ठन्त्याः मुरुदानवसुतायाः कामकटङ्कटायाः घटोत्कचानुरूपत्वं निर्दिष्टम् । भ्रातॄणां श्रीकृष्णस्य चानुमत्या युधिष्ठिरेण घटोत्कचाय वीर्यशुल्कायाः कामकटङ्कटायाः प्राप्त्यर्थमादेशः प्रदत्तः । स च पितृशासनानुकूलं प्राग्ज्योतिषपुरं गत्वा तत्र तां विजित्य प्रचुरद्रव्यं कामकटङ्कटां च शक्रप्रस्थ आनीय पितृभिरभिनन्दितः शुभवेलायां तस्याः पाणिं जग्राह । पाणिग्रहणानन्तरं युधिष्ठिरः स्वराज्यपालनाय प्रस्थापयामास । इति स्कन्दपु० कौ० खं० ५९-६० अ० ।

ततो [1]राक्षसयोषाभिर्वीरकाश्यैः[2] प्रवर्धितः ।
महोत्सवेन महता स्वराज्ये प्रमुमोद सः ॥ ७ ॥
ततो वनेषु चित्रेषु निम्नगापुलिनेषु च ।
रेमे सह तया भैमिर्मन्दोदर्येव रावणः ॥ ८ ॥

योग्य अवस्था थो। उसे देखकर धर्मराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णजी के सामने अनुकूल कन्या बताने की इच्छा प्रकट की। भगवान् श्रीकृष्ण ने 'प्राग्ज्योतिषपुर' की स्वामिनी 'मुरु' की कन्या 'कामकटङ्कटा' का निर्देश किया। अन्य भाइयों की स्वीकृति से धर्मराज युधिष्ठिर ने उसे प्राप्त करने केलिए घटोत्कच को आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही वीर घटोत्कच प्राग्ज्योतिषपुर में जाकर कामकटङ्कटा को अपने बल-बुद्धि द्वारा उसकी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के कारण जीतकर अत्यधिक धन के साथ उसको लेकर इन्द्रप्रस्थ में आया। वहाँ सबसे बधाई पाकर शुभ मुहूर्त में विवाहसंस्कार हुआ। इसप्रकार अपने पौत्र घटोत्कच और कामकटङ्कटा का[1] जोड़ी का देखकर प्रसन्न होते हुए धर्मराज ने घटोत्कच को अपने जंगलीभाग के राज्य को रक्षा करने की आज्ञा दी]

❀ श्लोकार्थ ❀ धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा को हिडिम्बा के पुत्र घटोत्कच ने अपनी विवाहिता पत्नी के साथ सिर झुकाकर स्वीकार किया और अपने राज्य हिडिम्ब की वनभूमि में आगया ॥ ६ ॥ वहाँ आनेपर वीर घटोत्कच धूम-धाम के साथ महोत्सव में रक्षस्‌गण की स्त्रियों द्वारा वीर-पुरुषोचित आनन्द देनेवाले द्रव्यों से बधाई पाकर अपने राज्य में बहुत प्रसन्न हुआ ॥ ७ ॥ और जैसे रावण मन्दोदरी के साथ जीवन का उचित आनन्द

१. इस कथा में जिस 'रक्षस्' जाति और जिन घटोत्कच आदि का उल्लेख है, वे देवताओं के बड़े भाई असुर हैं। वे ९९ जाति के हैं, और प्रायः सभी देवयानि के गुणों का अधिकार रखते हैं, उनका वर्णन है। इसलिए पाठकों को किसी अनुपयोगी भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। विशेष विचार प्रथमपरिच्छेद में देखिये।

२. काश्यं मदिरा इति हेमचन्द्रः।

एवं विक्रीडतस्तस्य गर्भो जज्ञे महाद्युतेः।
हैडिम्बे राक्षसव्याघ्राद् बालसूर्यसमप्रभः॥ ९॥
स जातमात्रो ववृधे क्षणाद् यौवनगोऽभवत्।
नीलमेघचयप्रख्यो घटास्यो दीर्घलोचनः॥ १०॥
ऊर्ध्वकेशश्चोर्ध्वरोमा पितरौ प्रणतोऽब्रवीत्।
प्रणमामि युवां चोभौ जातस्य पितरौ गुरू॥ ११॥
भवतोर्हि प्रियं कृत्वा अनृणः स्याँ सदा ह्यहम्।
भवद्भ्यां दत्तमिच्छामि अभिधानं तथात्मनः॥ १२॥
अतः परं तु यच्छ्रेयः कर्तव्यं प्रोन्नतिप्रदम्।
ततो भैमिस्तमालिङ्ग्य पुत्रं वचनमब्रवीत्॥ १३॥

लेता था, उसी भांति वह भी रमणीय नानाविध वनों में, नदियों के सुन्दरतटों पर अपनी प्रिया के साथ विहार करता रहा॥ ८॥ इसप्रकार विहार करते हुए उस महातेजस्वी हिडिम्बापुत्र रक्षस्शूर घटोत्कच से उसकी स्त्री कामकटङ्कटा में उदय होनेवाले सूर्य के समान तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ॥९॥ वह बालक उत्पन्न होते ही [देवयोनि की विशेषता के कारण] शरीर, कान्ति, बल आदि में बढ़ गया और तुरत ही जवान हो गया। वह मेघ की सरस घटाओं के समान सावलेरंग का गोल मुँह, विशाल नेत्रवाला था॥ १०॥बाल नहीं सँवारने के कारण उसके लम्बे और खड़े बाल थे। ऐसी स्वाभाविक अवस्था में वह बालक माता-पिता के चरणों में प्रणाम करके कहने लगा—मैं आपदोनों को प्रणाम करता हूँ। लडके के माता-पिता ही गुरु अर्थात् रास्ता बतानेवाले होते हैं॥ ११॥ मैं आपका सर्वदा प्रिय कार्य करके ही अनृण हो सकूँगा। [क्योंकि जन्मदेने, पालन-पोषण करने, तथा अपनी सभी प्राप्त सुविधाओं को बिना किसी शर्त के देदेने का महान् उपकार माता-पिता करते हैं] मैं आपलोगों के द्वारा दियाहुआ अपना एक नाम चाहता हूँ॥ १२॥ उसके बाद उन्नति देनेवाला जो काम मुझे करना

वर्वराकारकेशत्वाद् वर्वरीकाभिधो भवान् ।
भविष्यति महाबाहो ! कुलस्यानन्दवर्धनः ॥ १४ ॥
श्रेयश्च ते यत्परमं दृढं च तत्कोर्त्यते बहुधा विप्रमुख्यैः ।
प्रक्ष्यावहे तद्यदुवंशनाथं गत्वा पुरीं द्वारकां वासुदेवम् ॥ १५ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे कौमारिकाखण्डे श्रीश्यामदेवकथायां
प्रथमोऽध्यायः ।

चाहिये उस काम का आदेश चाहता हूँ। इस विनीत वचन को सुनकर महाबली भीमसेन के पुत्र वीर घटोत्कच प्रेम से अपनी सन्तान को चूमकर कहने लगे ॥ १३ ॥ हे लम्बीभुजावाले वीरपुत्र ! तुम 'वर्वर'=घुँघराले बाल-वाले हो, इसलिए तुम 'वर्वरीक' नाम से कुल के आनन्द बढ़ानेवाले होओगे अर्थात् तुम्हारा नाम 'वर्वरीक' है ॥ १४ ॥ और तुमने काम पूछा है, तो उत्तम और दृढ कल्याणकारी काम भूदेवों ने अनेक बताये हैं, इनमें कौन सा करना चाहिये यह बात यदुकुल के स्वामी वासुदेव भगवान् श्रीकृष्णजी से द्वारकापुरी में जाकर पूछेंगे ॥ १५ ॥

❀ श्रीस्कन्दपुराण कौमारिकाखण्ड की श्रीश्यामदेवकथा में प्रथम अध्याय
समाप्त हुआ । ❀

—०—

अथ द्वितीयोऽध्यायः

सूत उवाच—

ततो घटोत्कचो मुक्त्वा तत्र कामकटङ्कटाम्।
पुत्रेणानुगतो धीमान् वियता द्वारकां ययौ ॥ १ ॥
आगच्छन्तं च तं दृष्ट्वा राक्षसं राक्षसानुगम्।
द्वारकावासिनो योधाश्चक्रुरत्युल्बणं रवम् ॥ २ ॥
ग्रामे ग्रामे सुसन्नद्धा नवलक्षमिता रथाः।
राक्षसौ द्वौ समायातौ पात्यतां विशिखैरिति ॥ ३ ॥
तान् गृहीतायुधान् दृष्ट्वा यदुवीरान् घटोत्कचः।
प्रगृह्य विपुलं बाहुं जगौ तारस्वरेण सः ॥ ४ ॥
राक्षसं वित्त[1] मां वीरा भीमपुत्रं घटोत्कचम्।
सुप्रियं वासुदेवस्य प्रणामार्थमुपागतम् ॥ ५ ॥

❀ द्वितीय अध्याय का आरम्भ ❀

सूतजी ने कहा—पुत्र से इतनी बात होने के बाद बुद्धिमान् घटोत्कच वहाँ अपने राज्य हिडिम्बवन में कामकटङ्कटा (बर्बरीक की माता) को छोड़कर पुत्र के साथ आकाशमार्ग से द्वारकापुरी में गया ॥ १ ॥ एक 'रक्षस्' के पीछे दूसरे 'रक्षस्' को आतेहुए देखकर द्वारकापुरवासी पहरेदार योद्धा बहुत जोरसे कोलाहल करने लगे कि ॥ २ ॥ अनेक टुकड़ियों में सुसंघटित नौ लाख रथी योद्धागण तैयार हो जाँय। दो रक्षस् आये हैं। इनको बाणों से गिरा देवें ॥ ३ ॥ इस आवाजसे उत्तेजित शस्त्रधारी यादववीरों को देखकर घटोत्कच अपनी लम्बी विशाल भुजा उठाकर जोर से कहने लगा कि ॥ ४ ॥ हे वीरों! आपलोग मुझको भगवान् को प्रणाम करने के लिए उपस्थित, भगवान् का कृपापात्र, भीमसेन का पुत्र घटोत्कच रक्षस् समझिये ॥५॥

---

१. जानीत।

निवेदयत मां प्राप्तं यादवेन्द्राय सात्मजम् ।
इति तस्य वचः श्रुत्वा ते कृष्णाय न्यवेदयन् ॥ ६ ॥

आह देवः सभास्थश्च शीघ्रमत्राव्रजत्वसौ ।
ततः प्रवेशयामासुर्द्वारकां ते घटोत्कचम् ॥ ७ ॥

सपुत्रः सोऽपि रम्याणि वनान्युपवनानि च ।
क्रीडाशैलांश्च हर्म्याणि सम्पश्यन्नागतः सभाम् ॥ ८ ॥

स तत्र उग्रसेनं च वसुदेवं च सात्यकिम् ।
अक्रूररामप्रमुखान् ववन्दे कृष्णमेव च ॥ ९ ॥

तं पादयोर्निपतितं समालिङ्ग्य सहात्मजम् ।
साशिषं स्वसमीपस्थमुपवेश्येदमब्रवीत् ॥ १० ॥

पुत्र ! राक्षसशार्दूल ! कुरूणां कुलवधन ! ।
कुशलं सर्वतः कच्चित् किमर्थस्ते समागमः ॥ ११ ॥

मैं पुत्र के साथ आया हूँ । इस सन्देश को आपलोग यादवकुलनायक भगवान् से निवेदन कर दीजिये । यह सुनकर दूतों ने श्रीकृष्ण भगवान् को निवेदन किया ॥ ६ ॥ सभा में विराजमान भगवान् ने कहा कि वह यहाँ जल्दी ही आवे । आज्ञा पाते ही उन लोगोंने घटोत्कच का द्वारका में प्रवेश करने दिया ॥ ७ ॥ वह भी अपने पुत्र के साथ सुन्दर उपवन, खेल के टीले, ऊँची अट्टालिकायें आदि देखता हुआ सभा में आया ॥ ८ ॥ वहाँ उसने राजा उग्रसेन, वसुदेव, सात्यकि, अक्रूर, बलराम, आदि को यथोचित प्रणाम किया, और भगवान् श्रीकृष्ण को भी प्रणाम किया ॥ ९ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण चरणों में गिरे हुए उस घटोत्कच को उसके पुत्र के साथ आशीर्वाद देते हुए स्नेह-पूर्वक आलिङ्गन करके अपने समीप बैठाकर कहने लगे ॥ १० ॥

हे कौरवकुल को बढ़ानेवाले रक्षसुराज ! पुत्र घटोत्कच ! सब आनन्द है ? आज तुम्हारा आना कैसे हुआ ? ॥ ११ ॥

घटोत्कच उवाच—

देव ! युष्मत्प्रसादेन सर्वतः कुशलं मम।
श्रूयतां कारणं स्वामिन् ! यदर्थमहमागतः॥ १२॥
देवोपदिष्टभार्यायां जातोऽयं तनयो मम।
स च प्रश्नं वक्ष्यति त्वां श्रूयतामागतस्त्वतः॥ १३॥

श्रीकृष्ण उवाच—

वत्स ! मौर्वेय ! ब्रूहि त्वं, सर्वं पृच्छ, यदिच्छसि।
यथा घटोत्कचो मह्यं सुप्रियश्च तथा भवान्॥ १४॥

बर्बरीक उवाच—

प्रणम्य त्वामादिदेवं मनोबुद्धिसमाधिभिः।
प्रक्ष्यामि केन श्रेयः स्याज्जन्तोर्जातस्य माधव !॥ १५॥
केचिच्छ्रेयो धर्ममाहुरैश्वर्यं [1]त्यागभोजनम्।
केचिद्दमं तपो द्रव्यं भोगान्मुक्तिं च केचन॥ १६॥

घटोत्कच ने कहा—हे देव! आपकी कृपा से मेरे सब आनन्द है। हे स्वामिन्! मैं जिसलिये आया हूँ वह कारण सुनिये॥ १२॥ आपके द्वारा बताई हुई स्त्री में मुझे यह पुत्र उत्पन्न हुआ है। यह आपको कुछ बात पूछेगा, उसे सुनिये, इसीलिये मैं आया हूँ॥ १३॥ तब श्रीकृष्णजी ने बर्बरीकजी से कहा—पुत्र! मौर्वेय! (मुरुके दौहित्र!) बोलो, जो बात पूछना चाहते हो वह सब पूछो। मुझे जिसप्रकार घटोत्कच प्यारा है, उसी भाँति तुम मुझे प्रिय हो॥ १४॥ बर्बरीकजी ने कहा—हे लक्ष्मीनाथ! आदिदेव! आपको मैं मन, बुद्धि, कर्म से प्रणाम करके पूछता हूँ कि उत्पन्न प्राणी का कल्याण किससे हो सकता है॥ १५॥

कोई धर्म को कल्याणकारी कहते हैं, कई आसक्ति से रहित ऐश्वर्य-भोग को कल्याणकारी कहते हैं। कई इन्द्रियों के दमन को, कई तपश्चर्या को,

---

१. त्यागभोजनम्=अनासक्तियुतो भोग इति यावत्। 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' इतीशावास्यश्रुतिरप्यनुसन्धेया (ईश० १)।

तदेवं शतसंख्येषु श्रेयःसु पुरुषोत्तम ! ।
मम चैवं कुलस्यास्य श्रेयो यद् ब्रूहि निश्चितम् ॥ १७ ॥

श्रीकृष्ण उवाच—

वत्स ! पृथक् पृथक्प्रोक्तं वर्णानां श्रेय उत्तमम् ।
ब्राह्मणानां तपो मूलं दमोऽध्ययनमेव च ॥ १८ ॥
धर्मप्रकटनं चापि श्रेय उक्तं मनीषिभिः ।
बलं साध्यं पूर्वमेव क्षत्रियाणां प्रकीर्तितम् ॥ १९ ॥
दुष्टानां शासनं चापि साधूनां परिपालनम् ।
पाशुपाल्यं च वैश्यानां कृषिर्विज्ञानमेव च ॥ २० ॥
शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा तयाजीवन् वणिग् भवेत् ।
शिल्पैर्वा विविधैर्जीवेद् द्विजातिहितमाचरन् ॥ २१ ॥

कई धन को, कई भोग भोगनेको और कुछलोग मुक्ति को कल्याणकारी बताते हैं ॥ १६ ॥ हे पुरुषों में श्रेष्ठ ! इसप्रकार बहुत से कल्याणकारी सिद्धान्तों में मेरे तथा इस कुल के लिए कौन सा कार्य कल्याणकारी है, वह आप निश्चितरूप से बताइये ॥ १७ ॥ श्रीकृष्णजी ने कहा—हे वत्स ! वर्ण (जाति) के अनुसार अलग-अलग कल्याणकारी उत्तम काम कहे गये हैं। विचारशीलों ने ब्राह्मणों के लिए तपश्चर्या, इन्द्रियों का दमन, पढ़ना ॥१८॥ और धर्म का उपदेश देना कल्याणकारी बताया है। क्षत्रियों के लिये पहुले बल प्राप्तकरना कहा है ॥ १९ ॥ उसके बाद दुष्टों का दमन और सत्पुरुषों का परिपालन कल्याणकारी कार्य कहा है। वैश्य केलिए पशुओं का पालनकरना, खेती करना और विज्ञान (व्यापार) कल्याणकारी है ॥ २० ॥ शूद्र के लिए तीनों वर्णों की सेवा कल्याणकारी है। यदि सेवासे निर्वाह न हो सके तो वैश्यवृत्ति करे अथवा अनेकप्रकार की कारीगरी से जीवन चलावे ॥ २१ ॥ शूद्र को चाहिये कि वह तीनों वर्णों के हित की भावना

भार्यारतिर्भृत्यपोष्टा शुचिः श्रद्धापरायणः।
नमस्कारेण मन्त्रेण पञ्चयज्ञान्न हापयेत् ॥ २२ ॥

तद् भवान् क्षत्रियकुले जातोऽसि कुरु तच्छृणु।
बलं साधय पूर्वं त्वमतुलं तेन शिक्षय ॥ २३ ॥

दुष्टान्, पालय साधूंश्च स्वर्गमेवमवाप्स्यसि।
बलं च लभ्यते पुत्र! देवीनां सुप्रसादतः ॥ २४ ॥
तद् भवान् बलप्राप्त्यर्थं देव्याराधनमाचर ॥ २५ ॥

बर्बरीक उवाच—

कस्मिन् क्षेत्रे च कां देवीं कथमाराधयाम्यहम्।
एतत्प्रसादप्रवणं मनः कृत्वा निवेदय ॥ २६ ॥

सूत उवाच—

इति पृष्टः क्षणं ध्यात्वा प्राह दामोदरो विभुः।
वत्स! क्षेत्रं प्रवक्ष्यामि यत्र तप्स्यसि तत्तपः ॥
गुप्तक्षेत्रमिति ख्यातं महीसागरसङ्गमे ॥ २७ ॥

रखता हुआ अपनी विवाहिता सजातीय स्त्री में ही गार्हस्थ्यसुख का आनन्द लेता हुआ, अपने अधीन सहयोगी सेवकों का पोषण करता हुआ, श्रद्धावान्, पवित्र होकर, नमस्कारमन्त्र से पञ्चमहायज्ञों को करता रहे। इनको छोड़े नहीं ॥ २२ ॥ हे वत्स! तुम क्षत्रियकुल में उत्पन्न हुए हो इसलिए जो करना है वह सुनो—पहले तुम अतुलित बलशाली बनो ॥ २३ ॥ उस बल से दुष्टों को (दण्ड देकर सन्मार्ग की) शिक्षा दो और साधुपुरुषों का पालन करो, इस प्रकार चलने से नहीं नष्ट होनेवाले अनन्त सुख पाओगे। हे पुत्र! बल देवियों की कृपा से प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ इसलिए तुम बल पाने केलिए देवी की आराधना करो ॥ २५ ॥ बर्बरीकजी ने कहा—हे देव! मैं किस पवित्र देश में किस देवी की कैसे आराधना करूँ? यह भी आप कृपा करके मुझे बताइये ॥ २६ ॥ सूतजी ने कहा—यह पूछनेपर सर्वत्र व्यापक दामोदर श्रीकृष्णजी ने एक क्षण विचारकर कहा, हे वत्स! मैं उस क्षेत्र (पवित्रदेश) को बताता हूँ जहाँ तुम तपस्या करोगे। यह स्थान महीसागर—संगम में

तत्र त्रिभुवने याश्च सन्ति देव्यः पृथग्विधाः।
नारदेन समानीतास्ताश्चैक्यं सुमहात्मना ॥ २८ ॥
चतस्रस्तस्य दिग्देव्यो नव दुर्गाश्च सन्ति याः।
समाराधय ता गत्वा तासामैक्यं हि दुर्लभम् ॥ २९ ॥
नित्यं पूजय ताः पुत्र ! पुष्पधूपविलेपनैः।
स्तुतिभिश्चोपहारैश्च यथा तुष्यन्ति तास्तव ॥ ३० ॥
तुष्टासु देवीषु बलं धनं च कीर्तिश्च पुत्राः सुभगाश्च दाराः।
स्वर्गस्तथा मुक्तिपदं च सत्सुखं न दुर्लभं सत्यमेतत्तवोक्तम् ॥ ३१ ॥

सूत उवाच—

एवमुक्त्वा वर्वरीकं कृष्णः प्राह घटोत्कचम्।
घटोत्कचायं ! पुत्रस्ते दृढं सुहृदयो ह्यसौ ॥ ३२ ॥

'गुप्तक्षेत्र' नाम से प्रसिद्ध है ॥ २७ ॥ वहाँ त्रैलोक्य में जितनी भी नाना-भाँति की देवियाँ हैं, उन सबको महात्मा नारदजी ने एकत्रित कर दिया है ॥ २८ ॥ वहाँ जो चार दिशाओं की देवियाँ हैं और नव दुर्गायें हैं, उनकी तुम आराधना करो। इन देवियों का एकत्र मिलना दुर्लभ है ॥ २९ ॥

हे पुत्र ! इन देवियों की तुम चन्दन, पुष्प, धूप, भेट-स्तुतियों से नित्य पूजा करो, जिससे वे तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हो जायें ॥ ३० ॥ देवियों के प्रसन्न हो जाने पर बल, धन, यश, पुत्र-सन्तान, अच्छी स्त्रियाँ, स्वर्ग, मुक्ति तथा अच्छा सुख कोई कठिन नहीं है। यह बात मैं तुमसे सच्ची कहता हूँ ॥ ३१ ॥ सूतजी ने कहा—श्रीकृष्णजी ने इस प्रकार वर्वरीकजी से कहकर घटोत्कच से कहा—हे प्रिय ! घटोत्कच ! यह तुम्हारा पुत्र अत्यन्त स्वच्छ

तस्मात्सुहृदयेत्येवं दत्तं नाम मया द्विकम् ।
एवमुक्त्वा समालिङ्गय सन्तर्प्य विविधैर्धनैः ॥ ३३ ॥
गुप्तक्षेत्राय भगवान् वर्वरीकं समादिशत् ।
सोऽथ कृष्णं नमस्कृत्य पितरं यादवांश्च तान् ॥ ३४ ॥
अनुज्ञाप्य च तान् सर्वान् गुप्तक्षेत्रं समाव्रजत् ।
घटोत्कचोऽपि कृष्णेन विसृष्टः स्ववनं ययौ ॥ ३५ ॥
स्मरन् पुत्रगुणान्पत्न्या स्वराज्यं समपालयत् ।
ततः सुहृदयो धीमान् दग्धस्थल्यां कृताश्रमः ॥ ३६ ॥
त्रिकालं पूजयामास देवीः कर्मसमाधिभिः ।
नित्यं पुष्पैश्च धूपैश्च उपहारैः पृथग्विधैः ॥ ३७ ॥

हृदयवाला है ॥ ३२ ॥ इसलिए मैंने इसका 'सुहृदय' (शुद्धहृदयवाला) यह दूसरा नाम रख दिया है। इसप्रकार कहकर स्नेहपूर्वक आलिङ्गन करके बहुत सी सम्पत्ति से प्रसन्न करके ॥३२॥ भगवान् श्रीकृष्ण ने गुप्तक्षेत्र में जाने के लिए वर्वरीक को आदेश दिया। तदनन्तर वह भी भगवान् श्रीकृष्णजो, अपने पिता घटोत्कच तथा अन्य यदुवंशियों को प्रणाम करके ॥ ३४ ॥ उन सबसे आज्ञा प्राप्त करके गुप्तक्षेत्र चला गया। और घटोत्कच भी श्रीकृष्णजी से विदाई पाकर अपने वन में चला गया ॥ ३५ ॥ और अपने पुत्र के गुणों का स्मरण करता हुआ अपनी स्त्री के साथ अपने राज्य का पालन करने लगा। इधर बुद्धिमान् सुहृदय (वर्वरीकजी) दग्धस्थली (ढुण्ढार-मारवाड़) में आश्रम बनाकर ॥ ३६ ॥ अपने कर्तव्य की सावधानी से प्रातः, मध्याह्न एवं सायं तीनों कालमें देवियों का प्रतिदिन पुष्प, धूप, अनेक प्रकार के भेट-उपचारों से पूजन करते थे ॥ ३७ ॥ आराधना करते हुए उन वर्वरीकजी के लिए तीन वर्ष में देवियां प्रसन्न

तस्याराधयतो देव्यस्तुतुषुर्ह्यनैस्त्रिभिः।
ततः प्रत्यक्षतो भूत्वा बलात्तस्य महात्मनः॥ ३८॥
बलं यत् त्रिषु लोकेषु कस्यचिन्नास्ति दुर्लभम्।
ऊचुश्च कञ्चित्कालं त्वं वसात्रैव महाद्युते!॥ ३९॥
सङ्गत्या विजयस्य त्वं भूयः श्रेयो ह्यवाप्स्यसि।
इत्युक्तः सर्वदेवीभिः स तत्रैव व्यवस्थितः॥ ४०॥
आजगामाथ विजयो नाम्ना मागधब्राह्मणः।
स सर्वां पृथिवीं कृत्वा पादाक्रान्तां द्विजोत्तमः॥ ४१॥
काश्यां विद्याबलं प्राप्य साधनार्थमुपाययौ।
गुहेश्वरमुखान्येष सप्त लिङ्गान्यपूजयत्॥ ४२॥
आराधयामास चिरं देवीर्विद्याफलाप्तये।
ततस्तुष्टास्तस्य देव्यः स्वप्ने प्रोचुरिदं वचः॥ ४३॥

हो गयीं। प्रसन्न होने पर उस महात्मा बर्बरीकजी के सामने अकस्मात् सब प्रगट हो गयीं॥ ३८॥ और त्रिलोकी में जो बल किसी को मिलना कठिन है उस बल का इनको वरदान दिया और कहा कि हे अधिकतेजस्वी वीर! तुम कुछ दिन यहीं और रहो॥ ३९॥ 'विजय' नामक साधक के संग से तुम और अधिक कल्याण प्राप्त करोगे। इस भाँति सब देवियों का आदेश पाकर वे वहीं रहने लगे॥ ४०॥ कुछ दिन बाद 'विजय' नाम का मगधदेश का साधक ब्राह्मण समस्त पृथ्वी को पैदल यात्रा करता हुआ वहाँ आया॥४१॥

❀ विजय की सहायता द्वारा परोपकार ❀

यह ब्राह्मण काशी में विद्या की मर्मज्ञता प्राप्त करके साधन करने के लिए यहाँ आया। पहले यह 'गुहेश्वर' आदि सात लिङ्गों का पूजन करता था॥ ४२॥ तथा अपनी विद्या की प्रायोगिक सफलता के लिये बहुत समय तक देवियों की पूजा करता रहा। तब देवियों ने प्रसन्न होकर स्वप्न में कहा कि॥ ४३॥ हे सज्जन ब्राह्मण! तुम सिद्धमाता के सामने के स्थान में अपनी

विद्यां साधय त्वं साधो ! सिद्धमातुः पुरोऽङ्गणे।
अयं भक्तः सुहृदयः साहाय्यं ते करिष्यति ॥ ४४ ॥
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा विजयः स्वप्नमध्यतः।
उत्थाय गत्वा देव्यास्तं वव्रे भीमात्मजात्मजम् ॥ ४५ ॥
सोऽपि देवीवचः श्रुत्वा मेने साहाय्यकारणम्।
ततः कृष्णचतुर्दश्यामुपोष्य विजयः शुचिः ॥ ४६ ॥
स्नात्वाभ्यर्च्यैव लिङ्गानि देवीश्चैवार्चयत्पृथक्।
कृत्वा स्नानमुपोष्यैव वर्वरीकोऽन्तिकेऽभवत् ॥ ४७ ॥
प्रथमायां ततो रात्रौ ययौ सिद्धाम्बिकापुरः।
मण्डलं तत्र कृत्वा च भगाकारं करान्नव ॥ ४८ ॥
अष्टदिक्ष्वष्टकोलांश्च निखन्यैव ससूत्रकान्।
कृष्णाजिनधरा भूत्वा वर्वरीकसमन्वितः ॥ ४९ ॥
शिखामाबध्य दिग्बन्धं कृत्वारेभे ततो विधिम्।
मध्ये च मण्डलस्यापि कुण्डे शुभ्रे त्रिमेखले ॥ ५० ॥

विद्या की साधना करो। और यह (स्वप्न में दिखाकर) भक्त सुहृदय तुम्हारी सहायता करेगा ॥ ४४ ॥ स्वप्न में इस बात को सुनकर विजय ब्राह्मण उठा और देवीस्थान में जाकर भीमसेन के पौत्र वर्वरीक को सहायता केलिए अपनाया ॥ ४५ ॥ वर्वरीकजी ने भी सहायता के मूलकारण देवियों के आदेश को सुनकर सहायता देना स्वीकार कर लिया। उसके बाद साधक विजय ने कृष्णचतुर्दशी के दिन पवित्रतापूर्वक उपवास के साथ ॥ ४६ ॥ स्नान, लिङ्गों का पूजन तथा देवियों का पूजन किया। वर्वरीकजी भी अलग से स्नान, उपवास, पूजा करके विजय के समीप आगये ॥ ४७ ॥ और रात्रि के पहले ही विजय सिद्धाम्बिका देवी के सामने गया। और वहाँ नौ हाथ का योनिके आकार का मण्डल बनाकर ॥ ४८ ॥ आठों दिशाओं में आठ कील गाड़कर सबको सूत लपेटकर उसने वर्वरीकजी के साथ कृष्णमृगचर्म धारण किया ॥४९॥

तदनन्तर शिखा बाँधकर दिग्बन्धनविधि करके प्रधानकार्य की विधि का अनुष्ठान प्रारम्भ किया। जिसमें मण्डल के मध्य में तीन मेखला के

समर्प्य च ततः खडगं खादिरं मन्त्रतेजितम् ।
संस्थाप्य कीलानभितो वर्वरीकमथाब्रवीत् ॥ ५१ ॥

शुचिर्विनिद्रः संतिष्ठ स्तवं देव्याः समुद्‌गिरन् ।
यावत्कर्म करोम्येष यथा विघ्नं न जायते ॥ ५२ ॥

इत्युक्ते संस्थिते तत्र वर्वरीके महाबले ।
विजयः शोषणं दाहं प्लावनं कृतवान् यमी ॥ ५३ ॥

ततः सुखासनो भूत्वा गणेश्वरमथार्चयत् ।
तिलकं विधिना कृत्वा जप्त्वा चाष्टोत्तरं शतम् ॥ ५४ ॥

दशांशं गुटिका हुत्वा पूज्य सिद्धिविनायकम् ।
सिद्धये क्षेत्रपालस्य चक्रे पूजां ततो निशि ॥ ५५ ॥

यथोक्तविधिनाभ्यर्च्य सिद्धये तुष्टुवे च तम् ।
प्रणम्य च ततो देवीमानर्च वटयक्षिणीम् ॥ ५६ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे कौमारिकाखण्डे श्रीश्यामदेवकथायां
द्वितीयोऽध्यायः ।

भव्य कुण्ड में ॥ ५० ॥ विधि-विधान द्वारा मन्त्र से तेज किये हुए खेर के खड्ग को वर्वरीकजी को देकर, चारों ओर कीलन करके वर्वरीकजी से विजय ने कहा—हे वर्वरीकजी ! पवित्रता से सावधानी पूर्वक देवी के स्तोत्र का पाठ करते हुए जबतक मैं कार्य करता हूँ तब तक खड़े रहिये, जिससे विघ्न न होवे ॥ ५२ ॥ इसप्रकार कहकर महाबली वर्वरीकजी के वहाँ खड़े होने पर जितेन्द्रिय विजय ने शोषण, दाहन, प्लावन को विधियों को किया ॥ ५३ ॥ उसके बाद सुखासनमें बेठकर गणपति का पूजन किया। और विधिपूर्वक तिलक, तथा १०८ संख्या से मन्त्रजप करके ॥ ५४ ॥ दशांश गुटिका का हवन किया। सिद्धिविनायक का पूजन करके कार्यसिद्धि के लिए क्षेत्रपाल का पूजन किया। फिर रात्रि आने पर ॥ ५५ ॥ पुनः शास्त्रीयविधि के अनुसार पूजा करके कार्यसिद्धि के लिए स्तुति-प्रार्थना, प्रणाम करके वटयक्षिणी देवी का पूजन किया ॥ ५६ ॥

❀ श्रीस्कन्दपुराण कौमारिकाखण्ड की श्रीश्यामदेवकथा में
द्वितीय अध्याय समाप्त हुआ। ❀

अथ तृतीयोऽध्यायः

सूत उवाच—

ततः सिद्धाम्बिकां स्तुत्वा जप्तवानपराजिताम् ।
महाविद्यां वैष्णवीं तु साधनेन समन्विताम् ॥ १ ॥

अश्वत्थलाक्षावह्नौ च सर्षपान् केसरप्लुतान् ।
जुह्वतो मन्त्रमुख्यैश्च बलातिबलसंज्ञकैः ॥ २ ॥

यामे तु प्रथमे याते काचिन्नारी समाययौ ।
शोणिताक्तवसना महोच्चोर्ध्वशिरोरुहा ॥ ३ ॥

दारुणाक्षी शुक्लदन्तो भयस्यापि भयङ्करी ।
सा रुरोद महारावं प्राप्य तां होमभूमिकाम् ॥ ४ ॥

तां दृष्ट्वा चुक्षुभे सद्यो विजयो भीतिमानिव ।
वर्वरीकश्च निर्भीतस्तस्याः सम्मुखमाययौ ॥ ५ ॥

ततः कण्ठं समाश्लिष्य तस्या मतिमतां वरः ।
रुरोद द्विगुणं वीरो मेघवन्नादयन् बहु ॥ ६ ॥

❀ तृतीय अध्याय का आरम्भ ❀

सूतजी ने कहा—उसके बाद विजय ने सिद्धाम्बिका को स्तुति करके साधन से युक्त अपराजिता वैष्णवी महाविद्या का जप किया ॥ १ ॥

प्रथमविघ्न-महाजिह्वा का अभयधान उसके बाद बल, अतिबल नाम के महामन्त्रों से केसर से भोगी हुई सरसों को पीपल की लाह (लाख) की अग्नि में हवन कर रहा था कि ॥ २ ॥ पहला पहर बीतते ही एक स्त्री आई जिसके कपड़े लोहूलुहान थे । बड़े, ऊँचे और खड़े बाल थे ॥३॥ भयावने लाल नेत्र थे, सफेद लम्बे दांत थे । इसे देखकर भय भी भयभीत हो सकता था । वह आकर होम को वेदी के पास बहुत जोर से रोने लगी ॥ ४ ॥ इसे देखकर भयभोत की तरह विजय एकदम से घबरा गया । पर निर्भय वर्वरीकजी उसके सामने आये ॥ ५ ॥ और बुद्धिमानों में श्रेष्ठ वीर ववंरीकजी उसका कण्ठ पकड़ कर उसे चिढ़ाने के लिए बादल

तं दृष्ट्वा विस्मिता सा च यावन्मुञ्चति कर्तिकाम्[1] ।
तावन्निष्पीडिते कण्ठे मोक्तुं तस्मिन्न चाशकत् ॥ ७ ॥

पीड्यमाने च बलिना कण्ठे तस्या मुहुर्मुहुः ।
मुमोच विविधाञ्छब्दान् वज्राहत इवाचलः ॥ ८ ॥

क्षणं रावांस्ततो मुक्त्वा त्राहि मुञ्चेति वक्त्यणु ।
ततः कृपालुना मुक्ता पादयोः पतिताब्रवीत् ॥ ९ ॥

शरणं ते प्रपन्नास्मि दासी कर्मकरी तव ।
महाजिह्वेति मां विद्धि राक्षसीं कामरूपिणीम् ॥ १० ॥

काशीश्मशाननिलयां देवदानवदर्पहाम् ।
ददासि यदि मे वीर ! दुर्लभां प्राणदक्षिणाम् ॥ ११ ॥

गरजने की भाँति गम्भीरता से उससे दुगुने स्वर में बहुत जोर से रोने की आवाज करने लगे ।। ६ ॥

इसे देखकर वह चकित हो गई और उनको मारने के लिए ज्यों ही वह कटारी चलाना चाहती थी कि कण्ठ जोर से दबा दिये जाने के कारण चला न सकी ॥ ७ ॥ फिर बार-बार महाबली वर्वरीकजी के द्वारा कण्ठ दबाये जाने पर पहाड़ पर गिराये गये वज्र की भाँति अनेक प्रकार से वह चिल्लाने लगी ॥ ८ ॥ तब कुछ देर बाद चिल्लाना छोड़कर धीरे से 'मेरी रक्षा करो, छोड़ दो' कहने लगी। इस प्रार्थना पर दयालु वर्वरीकजी ने कण्ठ कुछ ढीला किया, तब वह उनके चरणों में गिरकर कहने लगी कि ॥९॥

मैं आपके शरण में प्राप्त हूँ, आप की आज्ञा पालन करनेवाली दासी हूँ। मुझे आप यथेच्छरूपधारिणी महाजिह्वा नाम की राक्षसी समझिये ॥ १० ॥ मैं देवता और दानवों के अहङ्कार को चूर करनेवाली, काशी के श्मशान में रहनेवाली हूँ। हे वीर ! यदि आप मुझे दुर्लभ प्राणदक्षिणा देंगे ॥ ११ ॥

---

१. कर्तिकाम्=आन्त्राणां कर्तिकां असिधेनुमिति भावः । 'छूरी' 'कटारी' इति भाषायाम् ।

ततस्तपश्चरिष्यामि सर्वभूताभयप्रदा ।
अस्मिन्नर्थे स्वदेवस्य शपथा मे तथात्मनः ॥ १२ ॥
यद्येतद्व्यत्ययं कुर्यां भस्मीभूयां ततः क्षणम् ।
एवं ब्रुवाणां तां वीरो निगृह्य शपथैर्दृढम् ॥ १३ ॥
मुमोच सापि संहृष्टा कृच्छ्रान्मुक्ता ययौ वनम् ।
सोऽपि वीरः खड्गधारी तत्रैवावस्थिताऽभवत् ॥ १४ ॥
ततो मध्यमरात्रौ च गर्जितं श्रूयते महत् ।
अन्धकारं च संजज्ञे तमोऽन्धनरकप्रभम् ॥ १५ ॥
ददृशे च ततः शैलः शतशृङ्गोऽतिविस्तरः ।
नानाशिलाः प्रमुमुचे नानावृक्षांश्च सोच्छ्रयान् ॥ १६ ॥
नानानिर्झरसंघोषं ववृषे शोणितं बहु ।
तं तथा नगमालोक्य निर्भीतो भैमिनन्दनः ॥ १७ ॥

तो मैं समस्त प्राणियों को अभयदान करती हुई तपश्चर्या करूँगी। मैं इस सम्बन्ध में आपकी तथा अपनी सौगन्ध खाती हूँ ॥ १२ ॥ यदि इस अपनी प्रतिज्ञा से विपरीत काम करूँ तो मैं उसी क्षण भस्म हो जाऊँ। इस प्रकार बोलती हुई उस राक्षसी को वीर वर्वरीकजी ने सौगन्ध, प्रतिज्ञाओं से दृढ़ करके ॥ १३ ॥ छोड़ दिया। वह भी महादुःख से छूटकर प्रसन्न होकर वन में चली गई। और वे वीर भी नंगी तलवार लेकर पहले की भांति सावधानी से खड़े होगये ॥ १४ ॥ द्वितीयविघ्न-रेपलेन्द्रवध उसके बाद मध्यरात्रि में बहुत जोरसे गर्जना सुनाई पड़ी, और अन्धतामिस्र नरक के समान घोर अंधेरा छा गया ॥१५॥ जिसके बाद एक सौ शिखरवाला अत्यन्त विशाल पर्वत दिखाई दिया, जो अनेक पत्थर की शिलायें और ऊँचे पेड़ों को गिराने लगा ॥ १६ ॥ तथा अनेक झरनों का शब्द करता हुआ बहुत अधिक खून बरसने लगा। इसप्रकार के उस पर्वत को देखकर भीमपौत्र वर्वरीकजी निर्भय होकर ॥ १७ ॥ उससे दुगुने पर्वत का रूप धारण करके तुरन्त पर्वत के पास

पर्वतो द्विगुणो भूत्वा पर्वतं सहसाप्लुतः।
पदाभिजघ्ने संहृत्य पर्वतं स्वेन भूभृता[1] ॥ १८ ॥
तदा विशीर्णः सोऽभूच्च पर्वतो भूमिमण्डले।
ततो योजनदेहात्मा शतशीर्षः शतोदरः ॥ १९ ॥
वक्त्रैर्मुञ्चन्महाज्वालां रेपलेन्द्रोऽभ्यधावत।
तं धावमानं दृष्ट्वैव बर्बरीको महाबलः ॥ २० ॥
विधाय तादृशं रूपं नदन्तं चाप्यधावत।
ततो मध्यमरात्रौ तौ लघु चित्रं च सुष्ठु च ॥ २१ ॥
युयुधाते बाणजालैर्यथा प्रावृषि तोयदौ।
छिन्नचापौ च खड्गाभ्यां छिन्नखड्गौ च मुष्टिभिः ॥ २२ ॥
पर्वताविव सत्पक्षौ चिरं युयुधतुः स्थिरम्।
ततः कक्षे समुत्पाट्य भ्रामयित्वा मुहूर्तकम् ॥ २३ ॥

आकर अपने पर्वतरूप के नीचे के स्थूलभाग से उस पर्वत को जोर से टकरा दिया ॥ १८ ॥ जिससे वह राक्षसी माया का पर्वत बिखर कर पृथिवी पर गिर गया। और चार कोस के शरीर का सौ सिर, सौ पेटवाले एक महाराक्षस का रूप धर कर ॥ १९ ॥ वह रेपलेन्द्र नामका राक्षस मुँह से अग्नि की लपटों को छोड़ता हुआ भागने लगा। इसे देखकर तुरत महाबली बर्बरीकजी भी ॥ २० ॥ उसीप्रकार का रूप धारण करके गरजते हुए उसकी ओर दौड़े। और इस मध्यरात्रि में दोनों वीर बहुत ही फुर्ती, सफाई और कलापूर्ण ढंग से ॥ २१ ॥ बरसात के बादलों की भाँति बाणों की वर्षा करते हुए लड़ने लगे। जब दोनों का धनुष टूट गया तो तलवार से, तलवार टूट जाने पर मुक्कों से लड़ने लगे ॥ २२ ॥ पंखधारी पर्वतों की भाँति दोनों वीर बड़ी स्थिरतापूर्वक लड़ते रहे। अन्त में वीर बर्बरीकजी ने उसे कांख परसे उठाकर कुछ देर हाथ से आकाश में घुमाकर ॥ २३ ॥

---

१. भूभृता=पर्वतेन।

भूमौ प्रधर्षयामास प्रसृतं च मुमोच ह ।
चिक्षेप चाग्निकोणे तं महीसागररोधसि ॥ २४ ॥
तद्दूरे रेपलेन्द्राख्यं ग्राममद्यापि वर्तते ।
एवं स रेपलो नाम वृत्रतुल्यपराक्रमः ॥ २५ ॥
नाथः श्मशानस्यावन्त्या विघ्नकृन्निहतोऽभवत् ।
तं निहत्य पुनर्वीरो वर्वरीकः स्थितोऽभवत् ॥ २६ ॥
ततस्तृतीययामे च प्रतीच्या दिश आययौ ।
पर्वताभा महानादा पादैः कम्पयतीव भूः ॥ २७ ॥
दुहद्रुहाख्याश्वतरी मेघभ्रष्टा तडिद्यथा ।
तामायान्तीं तथा दृष्ट्वा सूर्यवैश्वानरप्रभाम् ॥ २८ ॥
उपसृत्य जवाद् भैमो रुरोह प्रहसन्निव ।
वेगात्ततः प्रद्रवतीं तुण्डे प्राहत्य मुष्टिभिः ॥ २९ ॥

पृथिवी पर पटक मारा, और चारों खाने फेल जाने पर छोड़ दिया। (इस पछाड़ से जब वह मर गया तब उसे) साधनास्थान के अग्निकोण में महीसागर के तट पर फेंक दिया ॥ २४ ॥ उस दूरी पर आज भी रेपलेन्द्र नामका गांव वर्तमान है। इस प्रकार वृत्रासुर के समान महाबली रेपलेन्द्र नामका ॥ २५ ॥ अवन्तीपुरी के श्मशान का मालिक, विघ्नकर्ता राक्षस मारा गया। इसे मारकर वीर वर्वरीकजी पुनः वैसे ही अपने स्थान पर खड़े हो गये ॥२६॥

❀ तृतीयविघ्नदुहद्रुहा का प्राणवियोग ❀

उसके बाद तीसरे पहर में पश्चिमदिशा से पर्वत के समान विशाल, घोर गर्जना करनेवाली, पैरों की टाप से पृथ्वी को कँपाती सी ॥ २७ ॥ एक बादल से गिरी बिजली की भांति चमकती हुई दुहद्रुहा नामकी (शाकिनी) घोड़ी (बनकर) आई। सूर्य और अग्नि के समान प्रकाशवाली इस घोड़ी को आती हुई देखकर॥२८॥ भीमसेन के पौत्र वीर वर्वरीकजी तुरत उसके पास आकर हँसते हुएसे चढ़ गये। और बहुत तेज दौड़ती हुई उस घोड़ी के मुँह पर मुक्कियों से मारकर उसको रोक दिया ॥ २९ ॥ वह मुक्कियों की मार से अत्यन्त दुःखी

स्थापयामास तत्रैव तस्थौ सा चातिपीडिता।
ततः क्रुद्धा महारावं कृत्वाप्लुत्य दुहद्रहा ॥ ३० ॥
जगत्यामाशु चिक्षेप वर्वरीकं तयेच्छकम्[1]।
ततो नदित्वा चातीव पादघातममुञ्चत ॥ ३१ ॥
पादौ च वीरः संगृह्य चिक्षेप भुवि लोलया।
ततः पुनः समुत्थाय धावन्तीं तां निगृह्य सः ॥ ३२ ॥
मुष्टिना पातयित्वैव दन्तान् कण्ठमपीडयत्।
क्लिन्नं वास इवापीड्य प्राणानस्याजयद् द्रुतम् ॥ ३३ ॥
एवं सोकोत्तरस्थाने श्मशानैकपदोद्भवा।
शाकिनीनामधीशा सा वर्वरीकेण सूदिता ॥ ३४ ॥
हत्वा तां चापि चिक्षेप प्रतीच्यामेव लीलया।
दुहद्रुहाख्यमद्यापि तत्र ग्रामं स्म वर्तते ॥ ३५ ॥

होकर वहीं खड़ी हो गई और बहुत जोर से हिनहिनाकर उछलकर ॥ ३० ॥ अपने को मारने की इच्छा रखनेवाले वर्वरीकजी को झटके से पृथ्वी पर गिरा दिया। और फिर हिनहिनाकर बड़ी तेजी से दुलत्ती (पैरों की मार) चलाने लगी ॥ ३१ ॥ इस समय वीर वर्वरीकजी ने उसके दोनों पैर ठीक से पकड़कर सहज में ही जमीन पर उसे गिरा दिया। और फिर उठकर भागनेवाली उसको पुनः जकड़कर ॥ ३२ ॥ दाँतों को मुक्को से ही तोड़कर गीला कपड़ा निचोड़ने की भाँति उसके कण्ठ को घुमाकर दबा दिया और झटसे उसके प्राण छुड़ा दिये ॥ ३३ ॥ इस प्रकार सोकोत्तर (सीकर के उत्तर) श्मशान में जन्म लेनेवाली शाकिनीगणों की मालकिन दुहद्रुहा वीर वर्वरीक के द्वारा मार दी गई ॥ ३४ ॥ इसे मारकर वीर वर्वरीकजी ने लीला (खेल) से ही पश्चिम की ओर फेंक दिया, जहाँ आज भी दुहद्रुहा (दूधवा) नाम का

---

१. तयेच्छकम्=हननाभिलाषम्।

ततस्तथैव संतस्थौ बर्बरीकोऽभिरक्षणे ।
ततश्चतुर्थे यामे च प्राप्तः क्षपणकोऽद्भुतः ॥ ३६ ॥
मुण्डो नग्नो मयूराणां पिच्छधारी महाव्रतः ।
प्रोवाच चेदं वचनं हा हा कष्टमतीव भोः ! ॥ ३७ ॥
अहिंसा परमो धर्मस्तदग्निर्ज्वाल्यते कुतः ।
हूयमाने यतो वह्नौ सूक्ष्मजीववधो महान् ॥ ३८ ॥
श्रुत्वेदं वचनं तस्य बर्बरीकोऽब्रवीत् स्मयन् ।
वदने सर्वदेवानां हूयमाने स्म पावके ॥ ३९ ॥
अनृतं भाषसे पाप ! शिक्षायोग्योऽसि दुर्मते ! ।
इत्युक्त्वा सहसोत्पत्य कक्षामध्ये स्थिरोऽस्य च ॥ ४० ॥
दन्तान्मुष्टिप्रहारैश्च समाहत्याभ्यपातयत् ।
रुधिराविलवक्त्रं तं मुमोच पतितं भुवि ॥ ४१ ॥

गाँव वर्तमान है ॥ ३५ ॥

❀ चतुर्थ विघ्न—पलाशी को प्राणदण्ड ❀

उसके बाद वीर बर्बरीकजी उसीप्रकार रक्षा के लिए डट गये । तदनन्तर चौथे पहर में एक विचित्र पाखण्डी (जैन की भांति) साधु आया ॥ ३६ ॥ जो सिर मुंडाया हुआ, वस्त्रहीन नंगा, मोर की पाँख का चँवर लिया हुआ, बड़ा नियमधारी-सा था । वह आकर कहने लगा—ओह ! बहुत दुःख की बात है कि ॥ ३७ ॥ 'अहिंसा परम धर्म है' इस सिद्धान्त के स्थिर रहते हुए भी यह अग्नि क्यों जलाई जा रही है । अग्नि में हवन करने से अधिक संख्या में सूक्ष्म जीवों की हत्या होती है ॥ ३८ ॥ उसका यह वचन सुनकर बर्बरीकजी हँसकर कहा—समस्त देवताओं के मुखस्वरूप अग्नि में हवन करने में ॥ ३९ ॥ रे दुष्ट ! तुम इसप्रकार झूठ बोलते हो । अरे दुर्बुद्धे ! तुम शिक्षा (दण्ड) पानेयोग्य हो ।' यह कहकर झट से कूदकर इसके काँख के बगल में खड़े होकर ॥ ४० ॥ मुक्कों की चोट से इसके दाँतों को तोड़कर गिरा दिया । और लोहूलूहान मुँहवाले उसको जमीन पर गिरा दिया ॥ ४१ ॥ कुछ ही समय में वह चेतना पाकर महाभयङ्कर दैत्य का आकार

स क्षणाच्चेतनां प्राप्य घोरदैत्यवपुर्धरः ।
भयाद्भीमेः प्रदुद्राव गुहाविवरमाविशत् ॥ ४२ ॥
बहुप्रभेति नगरी षष्टियोजनमायता ।
तस्यां विवेश सहसा तं चानु बर्बरीककः ॥ ४३ ॥
बर्बरीकं ततो दृष्ट्वा नादोऽभूच्च पलाशिनाम् ।
धावध्वं हन्यतामेष छिद्यतां भिद्यतामिति ॥ ४४ ॥
तच्छ्रुत्वा दैत्यवीराणां कोटयो नव भीषणाः ।
नानायुधधरा वीरं बर्बरीकमुपाद्रवन् ॥ ४५ ॥
दृष्ट्वा तान्कोटिशो दैत्यान् क्रुद्धो भीमात्मजात्मजः ।
निमील्य सहसा नेत्रे तेषां मध्यमधावत ॥ ४६ ॥
पादघातैस्ततः कांश्चित् भुजाघातैस्तथापरान् ।
हृदयस्याभिघातैश्च क्षणान्निन्ये यमक्षयम् ॥ ४७ ॥

धारण करके भीमपौत्र वीर बर्बरीकजी के डर से पाताल की गुफा में घुस गया ॥ ४२ ॥ ६० योजन अर्थात् २४० कोस क्षेत्रफल वाली बहुप्रभा नामक नगरी में वह शीघ्रता से घुस गया और उसके पीछे बर्बरीक जी भी चले गये ॥ ४३ ॥ वहाँ नगरी में घुसने पर बर्बरीकजी को देखकर मांसाशी दैत्यों का कोलाहल होने लगा—दौड़ा ! दौड़ो !! इसे मार डालो ! काट डालो ! टुकड़े-टुकड़े कर डालो ! आदि ॥ ४४ ॥ इस हल्ले को सुनकर नौ कोटि=श्रेणी (ग्रूप) के भयङ्कर अनेक शस्त्रधारी दैत्य निकले। और वीर बर्बरीकजी के ऊपर टूट पड़े ॥ ४५ ॥ इन श्रेणोबद्ध दैत्यों को देखकर भीमपौत्र बर्बरीकजी कुपित होकर झट से आँख बन्दकर (अर्थात् उनकी आँख बचाकर) उनके बीच में दौड़ गये ॥ ४६ ॥ और कुछ को पैरों के झपेटे से, कुछ को हाथों के झपेटे से, कुछ को छाती के झपेटे से, इसप्रकार बहुतथाड़े समय में ही सबको यमराज के लोक में पहुँचा दिया ॥ ४७ ॥ जिसप्रकार क्रोधी हाथी नरकट के

यथा नलवनं क्रुद्धः कुर्याद् भूमिसमं करी ।
नव कोटोस्तथा जघ्ने सह तेन पलाशिना ॥ ४८ ॥

ततो नागाः समागम्य वासुकिप्रमुखास्तदा ।
तुष्टुवुर्विविधैर्वाक्यैरूचुः सुहृदयं च ते ॥ ४९ ॥

नागानां परमं कृत्यं कृतं ते भैमिनन्दन ! ।
पलाशी नाम दैत्योऽयं नीतो यत्सानुगो यमम् ॥ ५० ॥

अनेन हि वयं वीर ! सानुगेन दुरात्मना ।
पीडिता विविधोपायैः पातालादप्यधः कृताः ॥ ५१ ॥

वरं वृणीष्व त्वं तस्मान् नागेभ्योऽभिमतं परम् ।
वरदाः सर्व एव स्म वयं तुभ्यं सुतोषिताः ॥ ५२ ॥

सुहृदय उवाच—

यदि देयो वरो मह्यं तदेनं प्रवृणोम्यहम् ।
सर्वविघ्नविनिर्मुक्तो विजयः सिद्धिमाप्नुयात् ॥ ५३ ॥

जंगल को रौंदकर जमीन बना देता है, उसीप्रकार वीर वर्वरीकजी ने क्रोध में आकर उस विघ्नकारक मांसभक्षी दैत्य के साथ नव कोटि राक्षसों को मार दिया ॥ ४८ ॥ दैत्यों का नाश हो जाने के बाद वासुकी आदि नाग वहाँ आये । और नानाप्रकार के प्रशंसा के शब्दों से वर्वरीकजी को सराहने लगे, तथा सुहृदय को कहने लगे कि ॥ ४९ ॥ हे भोमके पौत्र वर्वरीकजी ! आपने नागयोनि के लिये बहुत बड़ा काम कर दिया, जो कि यह पलाशी नामका दैत्य अपने सहायकों के साथ मार दिया गया ॥ ५० ॥ हे वीर ! इस दुरात्मा ने अपने सहयोगियों के साथ हम सबको अनेक प्रकार से कष्ट दिया है । हम लोगों को इसने पाताल से भी नीचे गिरा दिया हैं ॥ ५१ ॥ आप हम नागों से अपने इच्छानुकूल वर को माँगिये । हमसब आप के कार्य से प्रसन्न होकर वर देने के लिए प्रस्तुत हैं ॥ ५२ ॥ सुहृदय ने कहा—यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो मैं यही माँगता हूँ कि साधना में लगा हुआ विजय ब्राह्मण सब विघ्नों से छुटकारा पाकर कार्य की सिद्धि प्राप्त कर लेवे ॥ ५३ ॥

ततस्तथेति तं प्रोचुः प्रहृष्टा वायुभोजनाः ।
स च तेभ्यः पुरीं दत्वा निवृत्तो नागपूजितः ॥ ५४ ॥

विवरस्य च मध्येन समागच्छन्महाप्रभम् ।
सर्वरत्नमयं लिङ्गं स्थितं कल्पतरोरधः ॥ ५५ ॥

अर्चमानं सुबह्वीभिर्नागकन्याभिरैक्षत ।
ततोऽसौ विस्मयाविष्टो नागकन्या ह्यपृच्छत ॥ ५६ ॥

केनेदं स्थापितं लिङ्गं सूर्यवैश्वानरप्रभम् ।
लिङ्गादपि चतुर्दिक्षु मार्गाश्चेमे तु कीदृशाः ॥ ५७ ॥

इति वीरवचः श्रुत्वा बृहत्कटिपयोधरा ।
सव्रीडं सस्मितापाङ्गनिर्मोक्षमिदमब्रवीत् ॥ ५८ ॥

सर्वपन्नगराजेन शेषेण सुमहात्मना ।
तपस्तप्त्वा महालिङ्गमिदमत्र प्रतिष्ठितम् ॥ ५९ ॥

तब अतिप्रसन्न, वायुमात्र भोजन करनेवाले वे नाग 'ऐसा ही होगा' कहकर वरदान दिये। वे भी नागों के द्वारा सम्मान पाकर, 'बहुप्रभा' पुरी उन्हीं नागों को सँभलाकर लौटने लगे ॥ ५४ ॥

❀ सिद्ध ऐश्वर्य की प्राप्ति ❀

पाताल और भूमि के मध्य सुरंग में आतेहुए वर्वरीकजी ने कल्पवृक्ष के नीचे एक बड़ा तेजस्वी, पूर्णतः रत्नों का शिवलिङ्ग देखा ॥ ५५ ॥ जिसे बहुत-सी नागकन्यायें पूज रही थीं। इसे देखकर आश्चर्यचकित होकर वर्वरीकजी ने उन नागकन्याओं को पूछा ॥ ५६ ॥ इस सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी लिङ्ग को किसने स्थापना की है, और लिङ्ग के चारों ओर ये मार्ग कैसे हैं ॥ ५७ ॥ वीर वर्वरीकजी के इन वचनों को सुनकर एक नागकन्या, जो भारी कटिभाग और ऊँचे स्तनों से युक्त थी, वह लजाती हुई, मन्द मुसकान के साथ तिरछी निगाह छोड़ती हुई बोली कि ॥ ५८ ॥ हे वीर! सम्पूर्ण नागों के राजा, उत्तम आत्मावालों में प्रसिद्ध, शेषनाग ने तपश्चर्या करके इस महालिङ्ग को यहाँ स्थापना की है ॥ ५९ ॥

दर्शनात्स्पर्शनाद् ध्यानादर्चनात्सर्वसिद्धिदम् ।
लिङ्गात्पूर्वेण मार्गोऽयं याति श्रीपर्वतं भुवि ॥ ६० ॥
एलापत्रेण विहितो नागानां तत्र प्राप्तये ।
दक्षिणेन च मार्गोऽयं याति शूर्पारकं भुवि ॥ ६१ ॥
कर्कोटकेन नागेन कृतोऽयं तत्र प्राप्तये ।
पश्चिमेन तु मार्गोऽयं प्रभासं याति सुप्रभम् ॥ ६२ ॥
ऐरावतेन विहितो नागानां गमनाय च ।
उत्तरेण च मार्गोऽयं येन यातुं भवान् स्थितः ॥ ६३ ॥
गुप्तक्षेत्रे सिद्धलिङ्गं याति शक्तिगुहाकृतः ।
विहितस्तक्षकेणासौ यातुं तत्र महात्मना ॥ ६४ ॥
इतीदं वर्णितं वीर ! विज्ञप्तिः श्रूयतां मम ।
को भवानधुनैवेतो दैत्यपृष्ठगतोऽभवत् ॥ ६५ ॥

जो दर्शन, स्पर्श, ध्यान तथा पूजन से सब सिद्धियों को देता है । इस लिङ्ग से यह पूरबवाला मार्ग पृथ्वी पर श्रीपर्वत (तिरुमलय) के लिए जाता है ॥ ६० ॥ जिसे एलापत्र नाम के नागराज ने नागों को वहाँ जाने को सुविधा केलिए बनाया है । और यह दक्षिण का रास्ता पृथ्वी पर शूर्पारक (सुपारा, गुजरात) क्षेत्र में जाता है ॥ ६१ ॥ जो कर्कोटक नामके नाग ने वहाँ पहुँचने के लिए बनाया है । यह पश्चिम का मार्ग सुविख्यात प्रभास (सोमनाथ, सौराष्ट्र) क्षेत्र में जाता है ॥ ६२ ॥ जिसे ऐरावत नागराज ने नागों को वहाँ पहुँचने के लिए बनाया है । और यह उत्तर का मार्ग जिसमें आप जाने के लिए खड़े हैं ॥ ६३ ॥ यह शक्तिगुहा की आकृतिवाला गुप्तक्षेत्र में सिद्धलिङ्ग स्थान पर जाता है । इसे नागराज महात्मा तक्षक ने वहाँ जाने के लिए बनवाया है ॥६४॥ हे वीर ! यह हमने (आपको) सब बात बताई है । अब मेरी बात सुनिये । आप कौन हैं ? जो आप इधर एक दैत्य के पीछे गये थे ॥६५॥

अधुनैव तथैकाकी समायातोऽत्र नो वद ।
वयं च सर्वास्ते दास्यस्त्वां पतिं प्रवृणीमहे ॥
अस्माभिः सहितः क्रीड विविधास्वत्र भूमिषु ॥ ६६ ॥

बर्बरीक उवाच—

अहं कुरुकुलोत्पन्नः पाण्डुपुत्रस्य पौत्रकः ।
बर्बरीक इति ख्यातस्तं दैत्यं हन्तुमागतः ॥ ६७ ॥

स च दैत्यो हतः पापः पुनर्यास्ये महीतलम् ।
भवतीभिश्च मे नास्ति कृत्यं भो भोः कथञ्चन ॥ ६८ ॥

ब्रह्मचारिव्रतं यस्मादहं सततमास्थितः ।
इत्युक्त्वाभ्यर्च्य तल्लिङ्गं प्रणिपत्य च दण्डवत् ॥ ६९ ॥

ऊर्ध्वमाचक्रमे वीरः कातरं ताभिरीक्षितः ।
ततो बहिः समागत्य सप्रकाशं मुखं तदा ॥ ७० ॥

और अब आप अकेले ही आये हैं, यह सब वृत्तान्त कहिये। और हम सब आपकी दासियां हैं। आपको हम पतिरूप से चाहती हैं। आप हमारे साथ यहाँ अनेक स्थानों में आनन्द लीजिये ॥ ६६ ॥ बर्बरीकजी ने कहा—मैं 'कुरु' राजा के वंश में उत्पन्न महाराजा पाण्डु के पुत्र भीमसेन का पौत्र हूँ। 'बर्बरीक' नाम से मैं प्रसिद्ध हूँ। इससमय उस दैत्य को मारने के लिए यहाँ आया था ॥ ६७ ॥ वह दुष्ट दैत्य मार दिया गया। अब मैं पृथ्वी पर जाऊँगा। और हे देवियों! [आपके संबन्ध में मेरा वक्तव्य है कि] आप सबसे मुझे कोई मतलब नहीं है ॥ ६८ ॥ क्योंकि मैं सदा केलिए ब्रह्मचारी के नियमों में स्थित हूँ। यह कहकर उस रत्नलिङ्ग का पूजन (आदर किया) और दण्डवत् प्रणाम करके ॥ ६९ ॥ उन नागकन्याओं द्वारा अभिलाषापूर्ण दृष्टि से देखेजाते हुए वे वीर ऊपर पृथ्वी को ओर चल पड़े और बाहर भूमि पर आकर 'विजय' साधक का हर्ष से विकसित मुख देखा ॥ ७० ॥ मानों दिशा देवो की मुखरूपी

प्रहर्षेणेव पूर्वस्या विजयं ददृशे दिशः ।
तस्मिन् काले च विजयः सर्वं कर्म समाप्तवान् ॥ ७१ ॥
कान्त्या सूर्यसमाभास ऊर्ध्वमाचक्रमे क्षणात् ।
ततो वियद्गतं देवैः पुष्पवर्षमभून्महत् ॥ ७२ ॥
जगुगन्धर्वमुख्याश्च ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
विजयो वर्वरीकं च ततो वचनमब्रवोत् ॥ ७३ ॥
तव प्रसादाद्वीरेश ! सिद्धिः प्राप्ता मयातुला ।
चिरं जीव, चिरं नन्द, चिरं वस, चिरं जय ॥ ७४ ॥
अत एव हि साधूनां सङ्गमिच्छन्ति साधवः ।
औषधं सर्वदोषाणां भवेत्सत्संगमो यतः ॥ ७५ ॥
त्वं च होमस्थितं भस्म सिन्दूरसदृशप्रभम् ।
निःशल्यं सविवरकं पूर्यमाणं गृहाण च ॥ ७६ ॥

पूर्वदिशा में सूर्य का प्रकाश दिखाई पड़ रहा हो। उस समय विजय अपना साधना का सब काम समाप्त कर चुका था ॥ ७१ ॥ उसीसमय वह तेज से सूर्य के समान होकर शीघ्रतासे ऊपर की ओर उठने लगा। तदनन्तर आकाश-मार्गगामी देवताओं के द्वारा उसके ऊपर पुष्पवर्षा की गई ॥ ७२ ॥ प्रसिद्ध गन्धर्व गाने लगे, अप्सरायें नाचने लगीं। उस समय विजय ने वर्वरीकजी को कहा ॥ ७३ ॥ हे वीरेश ! वर्वरीक !! आपकी कृपा से मैंने अतुलनीय सिद्धि पाई है। आप चिरजीवी बने, बहुत दिनों तक आनन्द करें। अनन्त-काल तक रहें, और अधिकरूप से विजय प्राप्त करें ॥ ७४ ॥ सत्पुरुष इसी कारण (कार्य की सफलता के लिए) सज्जन पुरुषों का साथ चाहते हैं। क्योंकि सज्जनों का संग सब दोषों की ओषधि (दवा) है ॥ ७५ ॥

हे वीर आप होम की सिन्दूर जैसी इस भस्म को अपने पोले भोंठे (अग्ररहित) बाण में भरनेलायक ले लीजिये ॥ ७६ ॥ यह भस्म रणभूमि में

अक्षय्यमेतत् संग्रामे प्रथमं ते प्रमुञ्चतः ।
शत्रूणां स्थानकं मृत्योर्देहं ध्वस्तं करिष्यति ॥
एवं सुखेन विजयः शत्रूणां ते भविष्यति ॥ ७७ ॥

बर्बरीक उवाच—

उपकुर्यान्निराकाङ्क्षो यः स साधुरितीर्यते ।
साकाङ्क्षमुपकुर्याद्यः साधुत्वे तस्य को गुणः ॥ ७८ ॥
तद्देहि भस्म चान्यस्मै केनाप्यर्थो न मेऽत्रपि ।
प्रसादसुमुखां दृष्टिं विना नान्यद् वृणोमि ते ॥ ७९ ॥

देवा ऊचुः —

कुरूणां पाण्डवानां च भविष्यति महान् रणः ।
ततो भूमिस्थितं भस्म प्राप्स्यन्ति यदि कौरवाः ॥ ८० ॥
महाननर्थो भविता पाण्डवानां ततः स्फुटम् ।
तस्माद् गृहाण त्वं भस्म सोऽपि चक्रे तथा वचः ॥ ८१ ॥

पहिले छोड़ने पर अक्षय्य होगी। यह शत्रुओं के मृत्यु के मर्मस्थान को बता देगी तथा उनके शरीर को शिथिल बना देगी । इसप्रकार सरलता से शत्रुओं पर आपकी विजय हो जायेगी ॥ ७७ ॥ बर्बरीकजी ने कहा—जो बिना किसी इच्छा के किसी का उपकार करे वह 'साधु' (सत्पुरुष, सज्जन) कहलाता है। और जो किसी इच्छा से किसी का उपकार करे तो उसकी सज्जनता में कौन सी विशेषता है ॥ ७८ ॥ इसलिए इस भस्म को किसी दूसरे को दे दीजिये । मुझे इससे कुछ भी प्रयोजन नहीं है। आपकी कृपादृष्टि के अतिरिक्त मैं कुछ नहीं चाहता हूँ ॥ ७९ ॥ देवताओं ने कहा—आगे कौरव और पाण्डवों का महान् युद्ध होने वाला है। यदि कौरव इस जमीन में इस भस्म को पा जायेंगे तो ॥ ८० ॥ पाण्डवों का महान् अनिष्ट हो जायेगा, यह स्पष्ट है। इसलिए आप इस भस्म को (पाण्डवों के हित के लिए) ले लीजिए। देवताओं के आदेश से बर्बरीकजी ने उसीप्रकार

देवीभिः सहिता देवाः संमान्य विजयं च ते ।
सिद्धेश्वर्यं तदुस्तस्मै सिद्धसेनेति नाम च[1] ॥ ८२ ॥
एवं स विजया विप्रः सिद्धि लेभे सुदुर्लभाम् ।
बर्बरीकश्च कृत्वैतद् देवीभक्तिरतोऽवसत् ॥ ८३ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे कौमारिकाखण्डे श्रीश्यामदेवकथायां
तृतीयोऽध्यायः

काम किया अर्थात् भस्म उठा लो ॥ ८१ ॥ उस समय देवियों के साथ सब पुरुष देवताओं ने उन बर्बरीकजी का तथा विजय का सम्मान करके बर्बरीक जी को स्वाभाविक ऐश्वर्य को सिद्धि का वरदान दिया और 'सिद्धसेन' यह नाम रख दिया ॥ ८२ ॥ इसप्रकार उस मगधदेशीय विजय ब्राह्मण ने बर्बरीकजी की सहायता से अतिदुर्लभ सिद्धि पाई और वीर बर्बरीकजी भी इसप्रकार उसकी सहायता करके देवी की भक्ति में निरत होकर वहीं रहने लगे ॥ ८३ ॥

❀ स्कन्दपुराण कौमारिकाखण्ड की श्रीश्यामदेवकथा में
तृतीय अध्याय समाप्त हुआ ❀

—:❀:—

१. सिद्धा सेना यस्यासौ सिद्धसेनः (अपने ही महान् बल के कारण बनी-बनायी सेनावाला).

अथ चतुर्थोऽध्यायः

सूत उवाच—

एवं तत्र स्थिते तीरे देव्याराधनतत्परे ।
सप्तलिङ्गार्चनरते भीमनन्दननन्दने ॥ १ ॥

ततः कालेन केनापि पाण्डवा द्यूतनिर्जिताः ।
तत्राजग्मुश्च क्रमतस्तीर्थस्नानकृते भुवम् ॥ २ ॥

प्रागेव चण्डिकां देवीं क्षेत्रादीशानतः स्थिताम् ।
आसेदुर्मार्गखिन्नास्ते द्रौपदीपञ्चमास्तदा ॥ ३ ॥

तत्रैव चोपविष्टोऽभूत्तदानीं चण्डिकागणः ।
वर्वरीकश्च तान् वीरान् समायातानपश्यत ॥ ४ ॥

परं नासौ वेद पाण्डून् पाण्डवास्तं च नो विदुः ।
आजन्म यस्मान्नेवाभूत् पाण्डूनां चास्य संगमः ॥ ५ ॥

❀ चतुर्थ अध्याय का आरम्भ ❀

सूतजी ने कहा—इसप्रकार गुप्तक्षेत्र में देवी की आराधना और सात लिङ्गों की पूजा में तत्पर भीमपौत्र वीर वर्वरीकजी वहीं रहते थे ॥ १ ॥

❀ भीमसेनपराजय ❀

कुछ समय के बाद जुआ में हारे हुए पाण्डव तीर्थों में स्नान करने के प्रसंग से वहाँ आये ॥ २ ॥ उस समय ये चारों पाण्डव और द्रौपदी, (क्योंकि अर्जुन इस समय तपस्या करने चला गया था) चलने से थके हुए थे, इसलिए पहिले वे उस क्षेत्र के ईशानकोण में वर्तमान चण्डिकादेवी के पास आये ॥ ३ ॥ उस समय चण्डिकादेवी के सभी गण (भक्त) वहीं बैठे हुए थे (उनमें वर्वरीकजी भी वहीं बैठे थे) । वर्वरीकजी ने उन वीरों को आते हुए देखा ॥ ४ ॥ परन्तु वे पाण्डवों को नहीं जान पाये और पाण्डव लोग भी उनको न जान पाये, क्योंकि वर्वरीकजी का तथा पाण्डवों का जन्म से

ततः प्रविश्य वै तस्मिन् देवीमासाद्य पाण्डवाः ।
पिण्डकाद्यं[1] तत्र मुक्त्वा तृषा प्रैक्षि जलं तदा ॥ ६ ॥

ततो भीमः कुण्डमध्यं जलं पातुं विवेश ह ।
प्रविशन्तं च तं प्राह युधिष्ठिर इदं वचः ॥ ७ ॥

उद्धृत्य भीम ! तोयं त्वं पादौ प्रक्ष्याल्य भो ! बहिः ।
ततः पिबान्यथा दोषो महांस्त्वामुपपत्स्यते ॥ ८ ॥
एतद्राज्ञो वचो भीमस्तृषा व्याकुललोचनः ।
अश्रुत्वेव विवेशासौ कुण्डमध्ये जलेच्छया ॥ ९ ॥

स च दृष्ट्वा जलं पातुं तत्रैव कृतनिश्चयः ।
मुखं हस्तौ च चरणौ क्षालयामास शुद्धये ॥ १० ॥
यतः पीतं जलं पुंसामप्राक्षाल्य च यद्भवेत् ।
प्रेताः पिशाचास्तद्रूपं सङ्क्रम्य प्रपिबन्ति तत् ॥ ११ ॥

आजतक कभी समागम (देखा-देखी) नहीं हुई थी ॥ ५ ॥ कुछ देर में पाण्डव मन्दिर में आये और देवीजी का दर्शन पाकर, लोहवान् धूप वहाँ छोड़कर, प्यास से उस समय इधर-उधर जल देखने लगे ॥ ६ ॥ बाद में भीमसेन मन्दिर के बगल में स्थित कुण्ड में जल पीने के लिए उतरने लगे। उतरते हुए उस भीमसेन को युधिष्ठिर ने यह कहा कि ॥ ७ ॥ हे भीमसेन ! तुम पानी निकालकर, बाहर पैर धोकर, तब पीओ। ऐसा न करने पर तुमको बहुत दोष लगेगा ॥ ८ ॥ प्यास से व्याकुलनेत्र भीमसेन राजा युधिष्ठिर के इस वचन को विना सुने ही जल के लिए कुण्ड में उतरने लगा ॥ ९ ॥

भीमसेन पानी देखकर, पीने के विचार से सफाई के लिए वहीं पर मुँह, हाथ, पैर धोने लगा ॥ १० ॥ क्योंकि (रास्ता चलने के बाद) मुँह, हाथ, पैर बिना धोये यदि जल पी लिया जाता है तो उस व्यक्ति के स्वरूप में प्रेत-पिशाचगण (रोग के कीटाणु) प्रविष्ट होकर उस जल को पी जाते हैं ॥ ११ ॥

---

१. पिण्डका=लोहबामधूप ।

एवं प्रक्षालयाने च पादौ तत्र वृकोदरे।
उपरिस्थस्तदा प्राह सत्यं सुहृदयो वचः॥ १२॥
दुर्मते! भोः! किमेतत्त्वं कुरुषे पापनिश्चयः।
देवीकुण्डे क्षालयसि मुखं पादौ करौ च यत्॥ १३॥
यतो देवी सदानेन जलेन स्नाप्यते मया।
तदत्र प्रक्षिपँस्तोयं मलपापान्न बिभ्यसि॥ १४॥
मलाक्ततोयं यन्नाम अस्पृश्यं तन्नरैरपि।
कुतो देवैश्च तत्पापं स्पृश्यते तत्त्वतो वद॥ १५॥
शीघ्रं च त्वं निःसरास्मात् कुण्डाद् भूत्वा बहिः पिब।
यद्येवं पाप! मूढोऽसि तीर्थेषु भ्रमसे कुतः॥ १६॥

भीम उवाच—

किमेतद् भाषसे क्रूर! परुषं राक्षसाधम!।
यतस्तोयानि जन्तूनामुपभोगार्थमेव हि॥ १७॥

जब इसप्रकार भीमसेन वहाँ पैर धो रहा था, उस समय ऊपर बैठे हुए सुहृदय ने उचित वचन कहा—॥ १२॥ हे दुष्टबुद्धे! अनुचित कार्य करने की जिद करने वाले तुम यह क्या कर रहे हो? जो कि देवीजी के कुण्ड में मुँह, हाथ, पैर धो रहे हो॥ १३॥ क्योंकि मैं प्रतिदिन इसी जल से देवीजी को स्नान कराता हूँ। इसलिए तुम इसी स्थान पर हाथ पैर धोने का पानी गिराकर गन्दगी के पाप से नहीं डरते हो? ॥१४॥ गन्दा पानी तो मनुष्य के भी छूने लायक नहीं रहता, तो देवताओं के काम में कैसे स्पर्श करनेयोग्य होगा। तुम ही ठीक से बताओ? ॥ १५॥ तुम शीघ्रता से इस कुण्ड से बाहर निकल जाओ और कुण्ड से बाहर होकर पानी पीओ। (इतने पर भी भीमसेन ने नहीं सुना तब कहा—) अरे पापी! यदि तुम ऐसे ही मूर्ख हो, तो तीर्थों में क्यों भ्रमण करते हो? ॥ १६॥ भीम ने कहा—अरे क्रूर! अधम राक्षस! तुम यह कठोर क्या बोल रहे हो। अरे! पानी तो प्राणियों के उपभोग) काम

तीर्थेषु कार्यं स्नानं चेत्युक्तं मुनिवरैरपि।
अङ्गप्रक्षालनं स्नानमुक्तं मां निन्दसे कुतः॥ १८॥
यदि न क्रियते पानमङ्गप्रक्षालनं तथा।
तत्किमर्थं पूर्तधर्माः क्रियन्ते धर्मशालिभिः॥ १९॥

सुहृदय उवाच—

स्नातव्यं तीर्थमुख्येषु सत्यमेतन्न संशयः।
चरेषु किन्तु संविश्य, स्थावरेषु बहिः स्थितः॥ २०॥
स्थावरेष्वपि संविश्य तत्र स्नानं विधीयते।
न यत्र देवस्नानार्थं भक्तैः संगृह्यते जलम्॥ २१॥
यच्च हस्तशतादूर्ध्वं सरस्तत्र विधीयते।
संवेशोऽपि क्रमश्चायं पादौ प्रक्षाल्य यद् बहिः॥ २२॥

में लेने) के लिए ही है॥ १७॥ और तीर्थों में स्नान करना चाहिये, यह श्रेष्ठ मुनियों ने भी कहा है। स्नान (का अर्थ) शरीर के अङ्गों को धोना ही तो हैं ? फिर तुम मेरी क्यों निन्दा करते हो ?॥ १८॥ यदि कुण्ड में पानी पीना और हाथ-पैर (अङ्ग) धोना भी नहीं किया जा सकता तो धर्मात्मा लोग पूर्तधर्म (तालाब, कुआँ, बावली, बगीचा, नदियों के घाट, नहर, पुल, पानी के हौद, झरना, धर्मशाला आदि बनाना) क्यों करते हैं ? ॥ १९॥

सुहृदय ने कहा—मुख्य तीर्थों में स्नान करना चाहिये यह बिलकुल सच है। किन्तु बहते पानी में भीतर घुसकर और बन्द (स्थिर) पानी में बाहर रहकर (पानी निकालकर) स्नान करना चाहिये॥ २०॥ (तथापि) वहाँ बन्द पानी में घुसकर स्नान किया जाता है, जहाँ भक्तगण देवताओं के स्नान (आदि) के लिए जल नहीं लेते हैं॥ २१॥ और जो तालाब (पोखरा, कुण्ड) १०० हाथ से अधिक बड़ा है। वहाँ (भी) इस नियम से काम किया जाता है (कि) पैठकर नहाने में भी यह नियम है कि पैर बाहर धोकर॥ २२॥

ततः स्नानं प्रकर्तव्यमन्यथा दोष उच्यते।
किं न श्रुतस्त्वया प्रोक्तः श्लोकः पद्मभुवा पुरा ॥ २३ ॥

मलं मूत्रं पुरीषं च श्लेष्मनिष्ठीवनाश्रु च।
गण्डूषांश्चैव मुञ्चन्ति ये ते ब्रह्महणैः समाः ॥ २४ ॥

तस्मान्निःसर शीघ्रं त्वं यद्येवमजितेन्द्रियः।
तत् किमर्थं दुराचार! तीर्थेष्वटसि बालिश! ॥ २५ ॥

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
निर्विकाराः क्रियाः सर्वाः स हि तीर्थफलं लभेत् ॥ २६ ॥

भीम उवाच—

अधर्मो वापि धर्मोऽस्तु निर्गन्तुं नैव शक्नुयाम्।
क्षुधा तृषा मया नित्यं वारितुं नैव शक्यते ॥ २७ ॥

सुहृदय उवाच—

जीवितार्थे भवान् कस्मात्पापं प्रकुरुते वद।
किं न श्रुतस्त्वया श्लोकः शिविना यः समीरितः ॥ २८ ॥

तब स्नान करना चाहिये, ऐसा न करने से दोष लगता है। क्या तुमने ब्रह्माजी ने जो पहिले श्लोक कहा था वह नहीं सुना है? ॥ २३ ॥

जो जलाशय में शरीर का मैल, मल, मूत्र, थूक, कफ, आँसू और मुँह में पानी भरकर कुल्ला गिराते हैं, वे ब्रह्मघाती के समान है ॥ २४ ॥ इसलिए तुम जल्दी निकल जाओ। यदि तुम इसप्रकार से (प्यासे होने के कारण) अपने इन्द्रियों के वशीभूत हो तो हे दुष्ट! (बदमाश) मूर्ख! क्यों तीर्थों में चक्कर लगाते हो? ॥ २५ ॥ जिसके हाथ, पैर ओर मन ठीक वश में हों, सभी काम छल-कपट से रहित हों, वही तीर्थ के फल को पाता है ॥ २६ ॥

भीम ने कहा—चाहे अधर्म हो या धर्म, मैं निकल नहीं सकता। क्योंकि मैं कभी भी भूख, प्यास को दबा नहीं सकता हूँ ॥ २७ ॥ सुहृदय ने (उसकी लाचारी समझकर नरम होकर) कहा—आप जीने के लिए क्यों पाप कर रहे हैं? कहिये! क्या आपने शिवि राजा के द्वारा कहा गया श्लोक

मुहूर्तमपि जीवेत नरः शुक्लेन कर्मणा ।
न कल्पमपि जीवेत लोकद्वयविरोधिना ॥ २९ ॥

भीम उवाच—

काकारवेण ते मह्यं कर्णौ बधिरतां गतौ ।
पास्याम्येव जलं चात्र कामं विलप शुष्य वा ॥ ३० ॥

सुहृदय उवाच—

क्षत्रियाणां कुले जातस्त्वहं धर्माभिरक्षिणाम् ।
तस्मात्ते पातकं कर्तुं न दास्यामि कथञ्चन ॥ ३१ ॥

तद्वराकाथ शीघ्रं त्वमस्मात् कुण्डाद्विनिःसर ।
इष्टकाशकलैः शीघ्र चूर्णयिष्येऽन्यथा शिरः ॥ ३२ ॥

इत्युक्त्वा चेष्टकां गृह्य मुमोच शिरसः प्रति ।
भीमश्च वञ्चयित्वा तामुत्प्लुत्य बहिराव्रजत् ॥ ३३ ॥

भर्त्सयन्तौ ततश्चोभावन्योन्यं भीमविक्रमौ ।
ययुधाते प्रलम्बाभ्यां बाहुभ्यां युद्धपारगौ ॥ ३४ ॥

नहीं सुना है ? ॥ २८ ॥ मनुष्य दो घड़ी भी जीये तो अच्छे काम से जीये। इस लोक और परलोक के बिगाड़नेवाले काम से एक कल्प भी नहीं जीना चाहिये ॥ २९ ॥ भीम ने कहा—तुम्हारी काँव-काँव से तो मेरे कान बहरे हो गये। मैं तो यहाँ पानी अवश्य पीऊँगा। तुम चाहे जितना विलाप करो, या (चिन्ता से) सूख जाओ ॥ ३० ॥ सुहृदय ने कहा—मैंने धर्मरक्षा करने वाले क्षत्रियों के कुल में जन्म लिया है। इसलिये मैं तुम्हें किसी भांति पाप नहीं करने दूंगा ॥ ३१ ॥ इसलिए भैया ! इस कुण्ड से जल्दी निकल जाओ। नहीं तो मैं ईंट के टुकड़ों से तुम्हारा सिर चकनाचूर कर दूँगा ॥ ३२ ॥ यह कहकर सुहृदय ने एक ईंट लेकर उसके सिर की ओर फेंकी। भीम भी उसे बचाकर, उछल कर बाहर आ गया ॥ ३३ ॥ और फिर दोनों महाबली, युद्ध विद्या में पारंगत वीर आपस में अपशब्द कहते हुए लम्बे-लम्बे हाथों से

व्यूढोरस्कौ दीर्घभुजौ नियुद्धकुशलावुभौ।
मुष्टिभिः पार्ष्णिघातैश्च जानुभिश्चाभिजघ्नतुः॥ ३५॥
ततो मुहूर्तात् कौरव्यः पर्यहीयत पाण्डवः।
हीयमानस्ततो भीम उद्यतोऽभूत्पुनः पुनः॥ ३६॥
अहीयत ततोऽप्यङ्ग ! ववृधे बर्बरीककः।
ततो भीमं समुत्पाट्य बर्बरीको बलादिव॥ ३७॥
निष्पिपेष ततः क्रुद्धस्तदद्भुतमिवाभवत्।
मूर्च्छितं चैवमादाय विस्फुरन्तं पुनः पुनः॥ ३८॥
सागराय प्रचलितः क्षेप्तुं तत्र महाम्भसि।
ददृशुः पाण्डवा नैतद्देव्या नयनयन्त्रिताः॥ ३९॥
तथा गृहीते कुरुवीरमुख्ये वीरेण तेनाद्भुतविक्रमेण।
आश्चर्यमासीद्दिवि देवतानां देवीभिराकाशतले निरीक्ष्य तम्॥४०॥

लड़ने लगे॥ ३४॥ पुष्ट छातीवाले, दीर्घबाहु, युद्धकुशल, दोनों वीर मुक्कों तथा हाथ-पैर के प्रहारों से मार करने लगे॥ ३५॥ तब थोड़ी देर में कुरुकुलज्ञात पाण्डुपुत्र भीमसेन नरम पड़ गये। और भीमसेन शिथिल होने पर भी बार-बार जोर लगाने लगे॥ ३६॥ ओ! हो! इसके बाद भीमसेन कमजोर पड़ने लगे, और बर्बरीकजी बढ़ने लगे (भारी पड़ने लगे)। अन्त में बर्बरीकजी ने जोर-सा लगाकर भीम को उखाड़ दिया॥ ३७॥ और क्रोध करके दबा दिया। यह आश्चर्य की भांति हुआ, इससे मूछित और बार-बार साँस भरते हुए उस भीम को बर्बरीकजी लेकर॥ ३८॥ समुद्र के अगाध जल में छोड़ने के लिए चल पड़े। देवीजी की माया से दृष्टि बँध जाने के कारण अन्य पाण्डव लोग इस कार्य को नहीं देख पाये॥ ३९॥ इस भांति अद्भुत पराक्रमी वीर बर्बरीकजी के द्वारा कुरुवंशी भीमसेन को पकड़ लेने पर द्युलोक में देवताओं को और आकाश में देवियोंको देखकर आश्चर्य हो रहा था॥४०॥

सागरस्य ततस्तीरे वर्वरीकं गतं तदा ।
निरीक्ष्य भगवान् रुद्रो वियत्स्थः समभाषत ॥ ४१ ॥
भो ! भो ! राक्षसशार्दूल ! वर्वरीक ! महाबल ! ।
मुञ्चैनं भरतश्रेष्ठं भीमं तव पितामहम् ॥ ४२ ॥
अयं हि तीर्थयात्रायां विचरन् भ्रातृभिर्युतः ।
कृष्णया चाप्यदस्तीर्थं स्नातुमेवाभ्युपाययौ ॥ ४३ ॥
सम्मानं सर्वथा तस्मादर्हः कौरवनन्दनः ।
अपापो वा सपापो वा पूज्य एव पितामहः ॥ ४४ ॥

सूत उवाच—

इति रुद्रवचः श्रुत्वा सहसा तं विमुच्य सः ।
न्यपतत्पादयोर्हा धिक् कष्टं कष्टं च प्राह सः ॥ ४५ ॥
क्षम्यतां क्षम्यतां चेति पुनः पुनरवोचत ।
शिरश्च ताडयन्स्वीयं रुरोद च मुहुर्मुहुः ॥ ४६ ॥

तदनन्तर भीमसेन को लेकर वर्वरीकजी समुद्र के किनारे पहुँचे। तब आकाशवर्ती भगवान् रुद्र ने देखकर कहा—॥ ४१ ॥ हे रक्षसूराज ! हे महाबली वर्वरीक ! भरतवंशियों में श्रेष्ठपुरुष तुम्हारे इस पितामह (बाबा) भीमसेन को छोड़ दो ! ॥ ४२ ॥ यह अपने भाइयों तथा द्रौपदी के साथ तीर्थ-यात्रा में घूमता हुआ इस तीर्थ में स्नान करने के लिए ही आया है ॥ ४३ ॥ इसलिये यह कुरुकुल-हर्षवर्धन भीमसेन तुम्हारे द्वारा सर्वथा सम्मान के ही योग्य है। पितामह निष्पाप हो या पापी, सर्वथा पूज्य ही होता है ॥ ४४ ॥

सूतजी ने कहा—भगवान् रुद्रदेव के इस वचन को सुनकर ये तत्काल उसको छोड़कर उसके पैरों में गिर पड़े, और 'हाय हाय ! मुझे धिक्कार है ! बड़ा दुःख है !' आदि कहने लगे ॥४५॥ और बार-बार क्षमा करो, क्षमा करो ! कहते रहे तथा अपना सिर पीट कर बार-बार रोने लगे ॥ ४६ ॥ इसप्रकार

तं तथा परिशोचन्तं मुह्यमानं मुहुर्मुहुः ।
भीमसेनः समालिङ्ग्य आघ्राय च वचोऽब्रवीत् ॥ ४७ ॥
वयं त्वां नैव जानीमस्त्वं चास्माञ्जन्मकालतः ।
अत्र वासश्च ते पुत्र ! भैमेः कृष्णाच्च संश्रुतः ॥ ४८ ॥
परं नो विस्मृतं सर्वं नानादुःखैः प्रमुह्यताम् ।
दुःखितानां यतः सर्वा स्मृतिर्लुप्ता भवेत्स्फुटम् ॥ ४९ ॥
तदस्माकमिदं दुःखं सर्वं कालविधानतः ।
मा शोचस्त्वं च तनय ! न ते दोषोऽस्ति चाण्वपि ॥ ५० ॥
यतः सर्वः क्षत्रियस्य दण्ड्यो विपथसंस्थितः ।
आत्मापि दण्ड्यः साधूनां प्रवृत्तः कुपथाद्यदि ॥ ५१ ॥
पितृ-मातृ-सुहृद्-भ्रातृ-पुत्रादीनां किमुच्यते ।
अतीव मम हर्षोऽयं धन्योऽहं पूर्वजाश्च मे ॥ ५२ ॥

उनको शोक करते हुए और बार-बार बेचैन होते हुए बर्बरीकजी को भीमसेन हृदय से लगाकर और प्रेम से मस्तक सूंघकर कहने लगा ॥ ४७ ॥ बेटा ! हम तुमको नहीं जानते हैं, और तुम हमको जन्म से ही नहीं जानते हो । हाँ, घटोत्कच तथा कृष्णजी से तुम्हारा यहाँ रहना हमने सुना था ॥ ४८ ॥ पर हमलोग अनेक दुःखों से व्याकुल होने के कारण सब भूल गये । क्योंकि दुःखी मनुष्यों की स्मरणशक्ति बिलकुल नष्ट हो जाती है ॥ ४९ ॥ हमलोगों को यह सब दुःख समय के प्रभाव से है । इसलिए बेटा ! तुम चिन्ता मत करो । तुम्हारा इसमें थोड़ा भी दोष नहीं है ॥ ५० ॥ क्योंकि क्षत्रिय के लिए उलटा रास्ता चलनेवाला सभी व्यक्ति दण्डनीय है । और तो क्या यदि स्वयं भी कुमार्ग पर चले तो सज्जन लोग अपनी आत्मा को भी दण्ड देते हैं ॥ ५१ ॥ तो फिर पिता-माता, मित्र, भाई, पुत्र आदि की तो बात ही क्या कही जाय ? मुझे अत्यन्त हर्ष है और मैं धन्य हूँ तथा मेरे पूर्वज (पीढ़ी) भी

यस्य त्वीदृशकः पौत्रो धर्मज्ञो धर्मपालकः।
वरार्हस्त्वं प्रशंसार्हो भवान्येषां सतां तथा॥
तस्माच्छोकं विहायेमं स्वस्थो भवितुमर्हसि ॥ ५३ ॥

बर्बरीक उवाच—

पापं मां ताततात ! त्वं ब्रह्मघ्नादपि कुत्सितम् ।
अप्रशस्यं नार्हसीह द्रष्टुं स्प्रष्टुमपि प्रभो ! ॥ ५४ ॥
सर्वेषामेव पापानां निष्कृतिः प्रोच्यते बुधैः ।
पित्रोरभक्तस्य पुनर्निष्कृतिर्नैव विद्यते ॥ ५५ ॥
तद्येन देहेन मया तातताताऽभिपीडितः ।
तत्स्वमेव समुत्स्रक्ष्ये महीसागरसंगमे ॥ ५६ ॥
मैवं भवेयमन्येषु अपि जन्मसु पातकी ।
न मामस्मादभिप्रायादर्हः कोऽपि निवर्तितुम् ॥ ५७ ॥
यतोंऽशेन विलिप्येत प्रायश्चित्तान्निवारकः ।
एवमुक्त्वा समुत्प्लुत्य ययौ चैवार्णवं बली ॥ ५८ ॥

धन्य है ॥ ५२ ॥ जिसके तुम्हारा जैसा धर्म का जानकार और धर्मपालन करनेवाला पौत्र (नाती) है। तुम बड़ाई के योग्य हो तथा दूसरे भी सत्पुरुषों से प्रशंसा पाओ। इसलिए इस शोक को छोड़कर तुमको स्वस्थ हो जाना चाहिये ॥ ५३ ॥ बर्बरीकजी ने कहा—हे पितामह ! ब्रह्महत्यारे से भी घृणित, निन्दनीय मुझ पापी को आपको देखना क्या, छूना भी नहीं चाहिये ॥ ५४ ॥ विद्वानों ने सभी पापों का प्रायश्चित बताया है, पर माता-पिता (अपने पूर्वजों) के अभक्त का कोई प्रायश्चित नहीं कहा है ॥ ५५ ॥ इसलिए जिस शरीर से मैंने अपने दादा के शरीर को कष्ट पहुँचाया है, उस अपने शरीर को ही मैं महीसागर के संगममें छोड़ दूँगा ॥ ५६ ॥ जिससे मैं अन्य जन्मों में पापी न बनूं ! और मुझे इस निश्चय से किसी को भी नहीं टालना चाहिये ॥ ५७ ॥ क्योंकि जो इस प्रायश्चित्त से मुझे हटायेगा, वह इस पाप के हिस्से से लिप्त हो जायेगा। यह कहकर उछलकर वीर बर्बरीकजी

समुद्रोऽपि चकम्पे च कथमेनं निहन्म्यहम् ।
ततः सिद्धाम्बिका याश्च देव्यस्तत्र चतुर्दश ॥ ५९ ॥
समालिङ्ग्य च संस्थाप्य रुद्रेण सहिता जगुः ।
अज्ञातविहिते पापे नास्ति वीरेन्द्र ! कल्मषम् ॥ ६० ॥
शास्त्रेषूक्तमिदं वाक्यं नान्यथा कर्तुमर्हसि ।
अमुं च पृष्ठलग्नं त्वं पश्य भोः ! स्वं पितामहम् ॥ ६१ ॥
पुत्र ! पुत्रेति भाषन्तमनु त्वां मरणोन्मुखम् ।
अधुना चेत्स्वकं देहं वीर ! त्वं परित्यक्ष्यसि ॥ ६२ ॥
ततस्त्यक्ष्यति भीमोऽपि पातकं तन्महत्तव ।
एवं ज्ञात्वा धारय त्वं स्वशरीरं महामते ! ॥ ६३ ॥
अथ चेत्त्यक्तुकामस्त्वं तत्रापि वचनं शृणु ।
स्वल्पेनैव च कालेन कृष्णाद्देवकिनन्दनात् ॥ ६४ ॥

समुद्र की ओर चल दिये ॥ ५८ ॥ उस समय समुद्र भी कम्पित हो गया कि इन्हें मैं कैसे मारूँ ? इसी समय सिद्धाम्बिका आदि चौदह देवियाँ, जो वहाँ निवास करती हैं, वे सब आयीं और ॥ ५९ ॥ स्नेहपूर्वक उसको गले लगाकर, कुछ देर रोककर, रुद्र को आगे करके कहने लगीं—हे वीरेन्द्र ! अनजान में किये हुए पाप से पातक नहीं होता है ॥ ६० ॥ यह बात शास्त्रों में कही गयी है, इसे उलटना नहीं चाहिये । और हे वीर ! तुम पीछा करते हुए अपने इस बाबा को देखो ॥ ६१ ॥ जो मौत के मुँह में जानेवाले तुमको 'बेटा ! बेटा !' कहता आ रहा हैं । हे वीर ! यदि तुम इस समय अपना शरीर छोड़ोगे ॥६२॥ तो भीमसेन भी शरीर छोड़ देगा, जिससे तुमको महान् पाप होगा । हे महाबुद्धे ! यह समझकर तुम अपने शरीर को धारण करो ॥ ६३ ॥ और यदि तुम शरीर छोड़ना ही चाहते हो तो इसमें भी हमारी बात सुनो—देवकीनन्दन भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा थोड़े ही समय के बाद ॥ ६४ ॥

देहपातस्तव प्रोक्तस्तं प्रतीक्ष यदीच्छसि।
यतो विष्णुकराद् वत्स ! देहपातो विशिष्यते ॥ ६५ ॥

तस्मात्प्रतीक्ष तं कालमस्माकं प्रार्थितेन च।
एवमुक्तो निववृते वर्वरीकोऽपि दुर्मनाः ॥ ६६ ॥

रुद्रं देवीश्च चामुण्डां सोपालम्भं वचोऽब्रवीत्।
त्वमेव देवि ! जानासि रक्ष्यन्ते शार्ङ्गधन्विना ॥ ६७ ॥

पाण्डवा भूमिलाभार्थे तत्ते कस्मादुपेक्षितम्।
त्वया च समुपागत्य रक्षितोऽयं वृकोदरः ॥ ६८ ॥

देव्युवाच—

अहं च रक्षयिष्यामि स्वभक्तं कृष्णमृत्युतः।
यस्माच्च चण्डिकाकृत्ये कृतोऽनेन महारणः॥
तस्माच्चण्डिलनाम्नायं विश्वपूज्यो भविष्यति ॥ ६९ ॥

तुम्हारा शरीर गिरना बताया गया है। इसलिए यदि तुम्हारी इच्छा हो तो उस समय की प्रतीक्षा करो। क्योंकि हे पुत्र ! भगवान् विष्णु के हाथ से शरीर का गिरना महत्त्व रखता है।। ६५ ॥ इसलिए गम्भीरता से विचार करके और हमारी प्रार्थना से उस समय की प्रतीक्षा करो। इसप्रकार पूज्य देवियों के कहने पर वर्वरीकजी भी उदास होकर उस समय अपने शरीर-त्याग के निश्चय से हट गये ॥ ६६ ॥ और भगवान् शङ्कर तथा चामुण्डा आदि देवियों को उलहना (उपालम्भ) देते हुए बोले—हे देवीजी ! आप भी जानती हैं कि राज्यभूमि दिलाने के लिए पाण्डवों की रक्षा 'शार्ङ्ग' धनुषधारी भगवान् श्रीकृष्णजी के द्वारा की जाती है ॥ ६७ ॥ इसकी उपेक्षा आपने भी क्यों कर दी ? (अर्थात् ऐसा काण्ड ही क्यों होने दिया ?) [रुद्र की ओर संबोधन करके कहा—] और आपने भी [मेरे मार देने के निश्चय के बाद में] आकर भीमसेन की रक्षा की ॥ ६८ ॥ देवीजी ने (भक्त के उलहन को ठीक समझकर, उस बात को टालकर, भक्त पर स्नेह करते हुए) कहा—मैं अपने भक्त को श्रीकृष्णजी से होने वाली मृत्यु से रक्षा करूँगी। क्योंकि इसने चण्डिका

एवमुक्त्वा गताः सर्वे देवा देव्यस्त्वदृश्यताम् ।
भीमोऽपि तं समादाय पाण्डुभ्यः सर्वमूचिवान् ॥ ७० ॥

विस्मिताः पाण्डवास्तं च पूजयित्वा पुनः पुनः ।
यथोक्तविधिना चक्रुस्तीर्थस्नानमतन्द्रिताः ॥ ७१ ॥

भीमोऽपि यत्र रुद्रेण मोक्षितस्तत्र सुप्रभम् ।
लिङ्गं संस्थापयामास भीमेश्वरमिति श्रुतम् ॥ ७२ ॥

ज्येष्ठमासे कृष्णपक्षे चतुर्दश्यामुपोषितः ।
रात्रौ संपूज्य भीमेशं जन्मपापाद्विमुच्यते ॥ ७३ ॥

यथैव लिङ्गानि सुपूजितानि सप्तात्र मुख्यानि महाफलानि ।
भीमेश्वरं लिङ्गमिदं तथैव समस्तपापापहरं सुपूज्यम् ॥ ७४ ॥

(देवो) के कार्य के लिए बड़ा युद्ध किया है। इसलिए यह 'चण्डिल' के नाम से विश्व का पूज्य होगा ॥ ६९ ॥ यह कहकर सभी देवी-देवता अदृश्य (अन्तर्धान) हो गये। और भीमसेन ने भी उन्हें साथ ले जाकर भाई पाण्डवों से सब समाचार कहा ॥ ७० ॥ पाण्डव भी आश्चर्य करके बार-बार सराहना करने लगे, और आलस्यरहित होकर विधिपूर्वक तीर्थों में स्नान किये ॥७१ ॥ भीमसेन ने भी, जहाँ पर वह रुद्र के द्वारा बर्बरीक से छुड़ाया गया था, वहाँ तेजस्वी भीमेश्वर नाम से प्रसिद्ध शिवलिङ्ग की स्थापना की ॥ ७२ ॥ जहाँ जेष्ठमास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन उपवास करके रात्रि में भीमेश्वर भगवान् का पूजन करके जन्म के पापों से छूट जाता है ॥ ७३ ॥

जिस प्रकार यहाँ पूजा से उत्पन्न फल देनेवाले सात मुख्य शिवलिङ्ग हैं, उसी प्रकार यह भीमेश्वर नाम का शिवलिङ्ग भी सभी पापों को नाश करनेवाला और भली-भाँति पूजनीय है ॥ ७४ ॥

सूत उवाच—

उषित्वा सप्तरात्राणि तीर्थेऽस्मिन्भ्रातृभिः सह ।
युधिष्ठिरो महातेजा गमनायोपचक्रमे ॥ ७५ ॥
ततस्ते वर्बरीकं च संस्थाप्यात्रैव निष्ठितम् ।
आगच्छ योगे चोक्त्वेदं चक्रुस्तीर्थानि मुख्यशः ॥ ७६ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे कौमारिकाखण्डे श्रीश्यामदेवकथायां
चतुर्थोऽध्यायः ।

सूतजी ने कहा—राजा युधिष्ठिर भाइयों के साथ इस तीर्थ में सात दिन तक रहकर आगे जाने की तैयारी करने लगे ॥ ७५ ॥ उस समय वे इसी स्थान पर विश्वास रखनेवाले वीर वर्वरीकजी को वहीं छोड़कर तथा 'समय पर आना' यह कहकर मुख्य-मुख्य तीर्थ करने (चले) गये ॥ ७६ ॥

❀ श्रीस्कन्दपुराण कौमारिकाखण्ड की श्रीश्यामदेवकथा में
चतुर्थ अध्याय समाप्त हुआ । ❀

—:❀:—

अथ पञ्चमोऽध्यायः

सूत उवाच—

ततस्त्रयोदशे वर्षे व्यतीते समये तदा ।
उपप्लवे संगतेषु सर्वराजसु पाण्डवाः ॥ १ ॥
योद्धुमागत्य सन्तस्थुः कुरुक्षेत्रे महारथाः ।
कौरवाश्चापि सन्तस्थुर्दुर्योधनपुरोगमाः ॥ २ ॥
ततो भीष्मेण प्रोक्तां च नरैः श्रुत्वा युधिष्ठिरः ।
रथातिरथसंख्यां तु राज्ञां मध्ये वचोऽब्रवीत् ॥ ३ ॥
भीष्मेण विहिता कृष्ण ! रथातिरथवर्णना ।
ततो दुर्योधनोऽपृच्छदिदं स्वीयान्महारथान् ॥ ४ ॥
ससैन्यान् पाण्डवानेतान् हन्यात् कालेन केन कः ।
मासेन तु प्रतिज्ञातं भीष्मेण च कृपेण च ॥ ५ ॥

❀ पञ्चम अध्याय का आरम्भ ❀

सूतजीने कहा—तदनन्तर तेरह वर्ष का समय बीतने के बाद महायुद्ध में सब राजाओं के इकट्ठे होने पर महारथी पाण्डव लोग ॥ १ ॥ युद्ध के लिए आकर कुरुक्षेत्र में सन्नद्ध हो गये और दुर्योधन आदि कौरव भी वहीं तैयार हो गये ॥ २ ॥

❀ बलप्रदर्शन तथा शीर्षदान ❀

उस समय भीष्म के द्वारा कही गई रथी, अतिरथी योद्धाओं की गिनती अपने आदमियों से सुनकर युधिष्ठिर ने राजाओंके बीच में कहा ॥ ३ ॥ हे श्रीकृष्णजी ! पितामह भीष्म ने अपने पक्ष के रथी, अतिरथियों की गणना कर ली है, और वहाँ (शत्रुपक्ष में) दुर्योधन ने अपने महारथियों को यह पूछा है कि ॥ ४ ॥ सेनासहित पाण्डवों को कौन वीर कितने समय में मार सकता है ? उस समय भीष्म और

पक्षं द्रोणेन, चाह्नां च दशभिर्द्रौणिना रणे ।
षड्भिः कर्णेन च तथा सदा मम भयंकृता ॥ ६ ॥
तदहं स्वांश्च पृच्छामि केन कालेन हन्ति कः ।
एतच्छ्रुत्वा वचो राज्ञः फाल्गुनो वाक्यमब्रवीत् ॥ ७ ॥
अयुक्तमेतद् भीष्माद्यैः प्रतिज्ञातं युधिष्ठिर ! ।
यतो जये च विजये निश्चयो हि मृषैव तत् ॥ ८ ॥
तवापि ये सन्ति नृपाः सन्नद्धा रणसंस्थिताः ।
पश्यैतान् पुरुषव्याघ्रान् कालकल्पान् दुरासदान् ॥ ९ ॥
द्रुपदं च विराटं च धृष्टकेतुं च कैकयम् ।
सहदेवं सात्यकिं च चेकितानं च दुर्जयम् ॥ १० ॥
धृष्टद्युम्नं, सपुत्रं च महावीर्यं घटोत्कचम् ।
भीमादींश्च महेष्वासान् केशवं चापराजितम् ॥ ११ ॥

कृपाचार्य ने एक महीने में मारने की प्रतिज्ञा की ॥ ५ ॥ द्रोणाचार्य ने १५ दिन, अश्वत्थामा ने दस दिन के युद्ध में, और मुझे सदा सशंक (भय) करनेवाले कर्ण ने छः दिन में शत्रुसेना का नाश करने की प्रतिज्ञा की है ॥ ६ ॥ इसलिए मैं भी अपने योद्धाओं से पूछता हूँ कि कौन व्यक्ति कितने दिन में कौरवसेना को मार सकता है। राजा की यह बात सुनकर अर्जुन ने कहा ॥ ७ ॥ महाराज युधिष्ठिर ! भीष्म आदि वीरों ने यह प्रतिज्ञा अनुचित की है। क्योंकि युद्ध में हार-जीत का निश्चय करना झूठ ही है ॥ ८ ॥ आपके पक्ष में भी जो राजा युद्ध में उद्यत हुए तैयार हैं, इन पुरुषसिंह, काल के समान, कठिनता से प्राप्त किये जा सकने वाले वीरों को देखो ॥ ९ ॥ राजा द्रुपद, विराट, धृष्टकेतु, कैकय, सहदेव, सात्यकि, दुर्जय, चेकितान, ॥ १० ॥ धृष्टद्युम्न, पुत्रसहित महाबली घटोत्कच, महाधनुर्धर भीम आदि वीरों को देखो ! और अब तक न हारने वाले भगवान् वासुदेव श्रीकृष्णजी को देखो ! ॥ ११ ॥ मैं समझता हूँ कि इनमें से एक-एक व्यक्ति

मन्येऽहमेकस्त्वेतेषां हन्यात् कौरववाहिनीम् ।
सन्नद्धाः प्रतिदृश्यन्ते भीष्माद्या बहवो रथाः ॥ १२ ॥
तेभ्यो भयं न कार्यं ते फल्गवोऽमी मृगा इव ।
अस्माकं धनुषां घोषैरिदानीमेव भारत ! ॥ १३ ॥
कौरवा विद्रविष्यन्ति सिंहत्रस्ता मृगा इव ।
वृद्धाद् भीष्माद् द्विजाद् वृद्धाद् द्रोणादपि कृपादपि ॥ १४ ॥
बालिशात् किं भयं द्रौणेः सूतपुत्राच्च दुर्मतेः ।
अथवा चित्तनिर्वृत्यै ज्ञातुमिच्छसि भारत ! ॥ १५ ॥
शत्रूणां प्रत्यनीकेषु सन्धावच्छृणु मे वचः ।
एकोऽहमेव संग्रामे सर्वे तिष्ठन्तु ते रथाः ॥ १६ ॥
एकाह्ना क्षपये सर्वान् कौरवान् सैन्यसंयुतान् ।
इत्यर्जुनवचः श्रुत्वा स्मयन् दामोदरोऽब्रवीत् ॥ १७ ॥

कौरवों की सेना को मार सकता है। शत्रुपक्ष के जो बहुत से भीष्म इत्यादि महारथी योद्धा तैयार दिखलाई पड़ते हैं ॥१२॥ इनसे डर नहीं करना चाहिये। ये छोटे-छोटे हरिणों की भांति हैं। हे भरतवंशीय राजन्! इसी समय हमारे धनुषों के शब्दों से ॥ १३ ॥ सिंह से डरे हुए हरिणों की भांति ये कौरव भाग जायँगे। बुड्ढे भीष्म, बुड्ढे ब्राह्मण द्रोण और कृपाचार्यसे ॥ १४ ॥ और नासमझ अश्वत्थामा से या विपरीत-मतिवाले कर्ण से क्या डर है? अथवा हे भारत! यदि आप अपने मन के सन्तोष के लिए जानना चाहते हों तो ॥ १५ ॥ शत्रुओं की ओर से डटनेवाले वीरों के उत्तर में प्रतिज्ञापूर्ण मेरा वचन सुनिये, मैं अकेला ही युद्ध में रहूँ और वे सब वीर योद्धा रहें ॥ १६ ॥ (फिर भी) मैं एक दिन में सेनासहित सब कौरवों को खपा दूँगा। अर्जुन की इस बात को सुनकर हँसकर भगवान् दामोदर

एवमेतद् यथा प्राह फाल्गुनोऽयं मृषा न तत् ।
ततश्च शंखान् भेरीश्च शतशश्चैव पुष्करान् ॥ १८ ॥
निवार्य राजमध्यस्थो बर्बरीको वचोऽब्रवीत् ।
येन तप्तं गुप्तक्षेत्रे येन देव्यः सुतोषिताः ॥ १९ ॥
यस्यातुलं बाहुबलं तेन चोक्तं निशम्यताम् ।
यद् ब्रवीमि वचः सत्यं श्रृणुध्वं तन्नराधिपाः ! ॥ २० ॥
आत्मनो वीर्यसदृशं केवलं न तु दर्पतः ।
यदार्येण प्रतिज्ञातमर्जुनेन महात्मना ॥ २१ ॥
न मर्षयामि तद् वाक्यं कालक्षेपो महानयम् ।
सर्वे भवन्तस्तिष्ठन्तु सार्जुनाः सहकेशवाः ॥ २२ ॥
एको मुहूर्ताद् भीष्मादीन् सर्वान्नेष्ये यमक्षयम् ।
मयि तिष्ठति केनापि शस्त्रं ग्राह्यं न क्षत्रियैः ॥ २३ ॥

(श्रीकृष्णजी) बोले ॥ १७ ॥ यह ठीक है ! अर्जुन ने जो कहा है वह झूठ नहीं है। उसके बाद शंख, भेरी और अनेकों नगाड़ों को ॥ १८ ॥ रोककर राजाओं के मध्य में खड़े होकर बर्बरीकजी ने यह बात कही कि, जिसने गुप्तक्षेत्र में तपस्याकी है, जिसने देवियोंको भलीभाँति प्रसन्न किया है ॥१९॥ जिसका अतुलित बाहुबल है, वह जो कहता है उसे सुनिये—हे राजागण ! जो मैं सच्ची बात बोलता हूँ उसे सुनिए ॥ २० ॥ मैं अपने बल के भरोसे बोलता हूँ, केवल घमण्ड से नहीं बोलता हूँ। पूज्य महात्मा अर्जुन ने जो प्रतिज्ञा की है ॥ २१ ॥ उस बात को मैं नहीं सह सकता हूँ, क्योंकि यह अधिक समय बरबाद करना है। आप सब अर्जुन-श्रीकृष्णसहित सभी वीर खड़े रहें ॥ २२ ॥ मैं अकेला ही दो घड़ी (४८ मिनट) में भीष्म आदि सबको यमराज के स्थान में पहुँचा दूँगा। मेरे जीवित रहते किसी भी क्षत्रिय को शस्त्रग्रहण नहीं करना चाहिये ॥ २३ ॥ आपको अपने धर्म की सौगन्ध

स्वधर्मशपथो वोऽस्तु मृते ग्राह्यं ततो मयि।
पश्यध्वं मे बलं बाह्वोर्देव्याराधनसंभवम् ॥ २४ ॥

माहात्म्यं गुप्तक्षेत्रस्य तथा भक्ति च पाण्डुषु।
पश्यध्वं मे धनुर्घोरं तूणीरावक्षयौ तथा ॥ २५ ॥

खड्गं च देव्या यद्दत्तं ततो वच्मि वचस्त्विदम्।
इति तस्य वचः श्रुत्वा क्षत्रिया विस्मयं ययुः ॥ २६ ॥

अर्जुनश्च कटाक्षेपे लज्जितः कृष्णमैक्षत।
तमाह ललितं कृष्णः फाल्गुनं परमं वचः ॥ २७ ॥

आत्मोपयिकमेवेदं भैमिपुत्रोऽभ्यभाषत।
नवकोटियुतोऽनेन पलाशी निहतः पुरा ॥ २८ ॥

क्षणादेव च पाताले श्रूयते महदद्भुतम्।
पुनः प्रक्ष्यामहे त्वेनं केनोपायेन कौरवान् ॥ २९ ॥

(कसम) है। मेरे मर जाने के बाद आपलोग शस्त्रग्रहण करें। देवियों की आराधना से होनेवाले मेरे बाहुबल को देखिये ॥ २४ ॥ गुप्तक्षेत्र की महिमा को, मेरी पाण्डवों में बनी हुई भक्ति को, तथा मेरे भयङ्कर धनुष को और अटूट तरकस को देखिए ॥ २५ ॥ देवीजी ने जो मुझे खड्ग दिया है उसे देखिए, इसीलिए मैं यह बात कह रहा हूँ। उसको यह बात सुनकर क्षत्रियगण आश्चर्य में हो गये ॥ २६ ॥ अर्जुन इस कटाक्ष से लज्जित होकर श्रीकृष्णजी को देखने लगा। उस समय श्रीकृष्णजी ने अर्जुन को मधुर और उत्तम बात कही कि ॥ २७ ॥ इस भीमपौत्र ने अपने अनुकूल यह बात कही है। पहिले इसने नौ कोटि राक्षसोंके सहित पलाशी दैत्य को मारा हैं ॥ २८ ॥ इसमें बड़े आश्चर्य की बात यह सुनी जाती है कि पाताल में जाकर थोड़ी ही देर में यह राक्षसों का संहार हुआ था, तो भी इससे पूछेंगे

मुहूर्तार्द्धंसि ब्रूहीति पृच्छयतां चाह तं जयः।
ततः स्मयन् ! यादवेन्द्रो भैमिपुत्रमभाषत ॥ ३० ॥
भीष्म-द्रोण-कृप-द्रौणि-कर्ण-दुर्योधनादिभिः ।
गुप्तां त्र्यम्बकदुर्जेयां सेनां हंसि कथं क्षणात् ॥ ३१ ॥
अयं महान् विस्मयस्ते वचसा भैमिनन्दन ! ।
सम्भूतः सर्वराज्ञां च फाल्गुनस्य च धीमतः ॥ ३२ ॥
तद् ब्रूहि केनोपायेन मुहूर्तार्द्धंसि कौरवान् ।
उपायवीर्यं ते ज्ञात्वा मंस्यामो वयमप्युत ॥ ३३ ॥

सूत उवाच—

इत्युक्तो वासुदेवेन सर्वभूतेश्वरेण च ।
सिंहवक्षाः पर्वताभो नानाभूषणभूषितः ॥ ३४ ॥

कि—'किस उपाय से ॥ २९ ॥ कौरवों को दो घड़ी में मारोगे, बताओ'। अर्जुन ने भी पूछने के लिए कहा। तब यादवेन्द्र श्रीकृष्णजी ने हँसते हुए भीमपौत्र को कहा—॥ ३० ॥ भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, दुर्योधन आदि से सुरक्षित, रुद्र के द्वारा भी कष्ट से जीतनेयोग्य कौरव-सेना को तुम कैसे थोड़ी देर में मार सकते हो ॥ ३१ ॥ हे भीमपौत्र ! तुम्हारे इस वचन से यह महान् आश्चर्य सब राजाओं को तथा बुद्धिमान् अर्जुन को हो रहा है ॥ ३२ ॥ इसलिए तुम बताओ कि किस उपाय से कौरवों की सेना को दो घड़ी में मार सकते हो ?। तुम्हारे उपाय के बल को जानकर हमलोग भी मान जायेंगे ॥ ३३ ॥

सूतजी ने कहा—सब प्राणियों के स्वामी वासुदेव श्रीकृष्णजी के यह कहने पर सिंह के समान वक्षःस्थल, पर्वत के समान महान् शरीर, अनेक आभूषणों से भूषित ॥ ३४ ॥ गोल मुँह, गम्भीर हँसी

घटास्यो घटह्रासश्च ऊर्ध्वकेशोऽतिदीप्तिमान् ।
विद्युदक्षो वायुजवो यश्चेच्छेन्नाशयेज्जगत् ।। ३५ ।।
देवीदत्तातुलबलो वर्वरीकोऽभ्यभाषत ।
यदि वो मानसं वीरा! उपायस्य प्रदर्शने ।। ३६ ।।
तदहं दर्शयाम्यद्य पश्यध्वं सहकेशवाः ।
इत्युक्त्वा धनुरारोप्य सन्दधे विशिखं त्वरन् ।।
निःशल्यं[1] चापि संपूर्णं सिन्दूराभेण भस्मना ।। ३७ ।।
आकर्णमाकृष्य च तं मुमोच मुखादथोद्भूतमभूच्च भस्म ।
सेनाद्वये तच्च पपात शीघ्रं यस्यैव यत्रास्ति च मृत्युमर्म ।।३८।।
सर्वरोमसु भीष्मस्य कण्ठे राधेय-द्रोणयोः ।
ऊरौ दुर्योधनस्यापि शल्यस्यापि च वक्षसि ।। ३९ ।।

और घुंघराले, ऊँचे बालवाले अत्यन्त तेजस्वी, बिजली के समान चमकीली आँख और हवा के समान वेगवान् फुर्तीवाले, तथा जो चाहने पर समस्त जगत् का नाश करने की शक्ति रखते हैं ।। ३५ ।। ऐसे देवियों के द्वारा अतुलित बल पाये हुए वीर वर्वरीकजी ने कहा—हे वीरों! यदि आप-लोगों को उपाय देखने को इच्छा है ।। ३६ ।। तो मैं आज दिखाता हूँ, आप सब श्रीकृष्णजी के साथ देखिये। यह कहकर फुर्ती से धनुष चढ़ाकर बाण तान लिया, और सिन्दूर के समान लाल भस्म से भरे हुए उस भोंटे बाण को ।। ३७ ।। कान तक खींचकर छोड़ दिया। तब उस बाण के मुँह से भस्म उड़ी, और वह जल्दी ही दोनों सेनाओं में जिसके जहाँ, मृत्यु का मर्मस्थान था, वहाँ गिर गई ।। ३८ ।। भीष्म के रोम-रोम में, कर्ण और द्रोणाचार्य के कण्ठ में, दुर्योधन के जांघ में, शल्य के छाती में ।। ३९ ।। शकुनि और भगदत्त

---

१. निःशल्यम् - निरग्रमिति भावः ।

कण्ठे च शकुनेर्दीप्तं भगदत्तस्प चापतत् ।
कृष्णस्य पादतलके कण्ठे द्रुपद-मत्स्ययोः ॥ ४० ॥
शिखण्डिनस्तथा कट्यां कण्ठे सेनापतेस्तथा ।
पपात रक्तं तद् भस्म यत्र येषां च मर्म च ॥ ४१ ॥
केवलं चैव पाण्डूनां कृपद्रौण्योश्च नास्पृशत् ।
इति कृत्वा ततो भूयो वर्बरीकोऽभ्यभाषत ॥ ४२ ॥
दृष्टं भवद्भिरेवं यन्मया मर्म निरीक्षितम् ।
अधुना पातयिष्यामि मर्मस्वेषां शिताञ्छरान् ॥ ४३ ॥
देवीदत्तानमोघाख्यान् यैर्मरिष्यन्त्यमी क्षणात् ।
शपथा वः स्वधर्मस्य शस्त्रं ग्राह्यं न वः क्वचित् ॥ ४४ ॥
मुहूर्तात्पातयिष्यामि शत्रूनेताञ्छितैः शरैः ।
ततो विस्मितचित्तानां युधिष्ठिरपुरोगिणाम् ॥ ४५ ॥

के कण्ठ में चमकता हुआ भस्म गिर गया। श्रीकृष्णजी के पैर के तलुआ में, द्रुपद और मत्स्यराज के कण्ठ में ॥ ४० ॥ शिखण्डी के कमर में, सेनापति धृष्टद्युम्न के कण्ठ में, वह लाल भस्म जिसका जहाँ मर्मस्थान था, वहाँ गिर गया ॥ ४१ ॥ केवल पाँचों पाण्डव, कृपाचार्य और अश्वत्थामा का उस भस्म ने स्पर्श नहीं किया (क्योंकि इनकी शस्त्र से मृत्यु नहीं होनी थी) यह काम करके पुनः वर्बरीकजी कहने लगे ॥ ४२ ॥ आप लोगों ने देख लिया होगा कि मैंने इसप्रकार सबका मर्मस्थान देख लिया है, अब मैं इन्हीं मर्मस्थानों में तीखे बाण छोड़ूँगा ॥ ४३ ॥ देवीजी के दिए हुए जिन अचूक बाणों से ये तत्काल मर जायेंगे। आप सबको अपने धर्म की सौगन्ध (कसम) है। आपको (इस महासमर में) मेरे जीवित रहते कहीं भी शस्त्र नहीं लेना चाहिये ॥४४॥ इन शत्रुओं को तीखे बाणों से दो घड़ी में गिरा दूंगा। इससमय आश्चर्य-चकित युधिष्ठिर आदि राजाओं का ॥ ४५ ॥ 'बहुत अच्छा ! बहुत अच्छा !!'

आसीन्निनादः सुमहान् साधु साध्विति शंसताम् ।
वासुदेवश्च संक्रुद्धश्चक्रेण निशितेन च ॥ ४६ ॥

एवं ब्रुवत एवास्य शिरश्छित्वा न्यपातयत ।
ततः क्षणात्सर्वमासीदाविग्नं राजमण्डलम् ॥ ४७ ॥

व्यलोकयन् केशवं ते विस्मिताश्चाभवन् भृशम् ।
किमेतदिति प्राहुश्च वर्वरीकः कुतो हतः ॥ ४८ ॥

पाण्डवाश्चापि मुमुचुरश्रूणि सहपार्थिवाः ।
हा हा पुत्रेति च गृणन् प्रस्खलँश्च पदे पदे ॥ ४९ ॥

घटोत्कचोऽपतद्दीनः पुत्रोपरि विमूर्च्छितः ।
एतस्मिन्नन्तरे देव्यश्चतुर्दश समाययुः ॥ ५० ॥

सिद्धाम्बिका क्रोडमाता कपाली तारा सुवर्णा च त्रिलोकजेत्रा ।
भाणेश्वरी चर्चिका चैकवीरा योगेश्वरी चण्डिका त्रैपुरा च ॥५१॥

कहने का बहुत जोर से कोलाहल हुआ । पर इसी समय वासुदेव श्रीकृष्णजी ने क्रोध करके तीखे चक्र से ॥ ४६ ॥ शत्रुओं के मारने की बात कहते हुए वीर वर्वरीकजी के शिर को काटकर गिरा दिया । तब तो उसी क्षण समस्त राज-मण्डल घबड़ा गया ॥ ४७ ॥ वे श्रीकृष्ण को देखने लगे, बहुत आश्चर्य में पड़ गये, और 'यह क्या हुआ ? वर्वरीक को क्यों मारा गया ?' आदि कहने लगे ॥ ४८ ॥ राजाओं के साथ पाण्डव भी रोने लगे । 'हा पुत्र ! हा पुत्र ! कहता हुआ, पग पग पर लड़खड़ाता हुआ ॥ ४९ ॥ बेचारा घटोत्कच पुत्र के ऊपर मूर्छा खाकर गिर पड़ा । इसी बीच में चौदह देवियाँ आयीं ॥ ५० ॥

जो सिद्धाम्बिका, क्रोडमाता, कपाली, तारा, सुवर्णा, त्रिलोकजेत्री, भाणेश्वरी, चर्चिका, एकवीरा, योगेश्वरी, चण्डिका, त्रैपुरा ॥ ५१ ॥

भूताम्बिका हरसिद्धिस्तथामूः संप्राप्य तस्थुर्नृपविस्मयंकराः ।
श्रीचण्डिकाश्वास्य ततो घटोत्कचं प्रोवाच वाक्यं महता स्वरेण ।५२।
शृणुध्वं पार्थिवाः! सर्वे कृष्णेन विदितात्मना ।
हेतुना येन निहतो बर्बरीको महाबलः ॥ ५३ ॥
मेरुमूर्ध्नि पुरा पृथ्वी समवेतान् दिवौकसः ।
भाराक्रान्ता जगादैतान् भारोऽपह्रियतां हि मे ॥ ५४ ॥
ततो ब्रह्मा प्राह विष्णुं भगवँस्त्वमिदं शृणु ।
देवास्त्वानुगमिष्यन्ति भारं हर भुवः प्रभो! ॥ ५५ ॥
ततस्तथेति तन्मेने वचनं विष्णुरव्ययः ।
एतस्मिन्नन्तरे बाहुमुद्धृत्योच्चैरभाषत ॥ ५६ ॥
सूर्यवर्चेति यक्षेन्द्रश्चतुराशीतिकोटिपः ।
किमर्थं मानुषे लोके भवद्भिर्जन्म कार्यते ॥ ५७ ॥

भूताम्बिका तथा हरसिद्धि नाम की थीं। ये सब आईं, और राजाओं को आश्चर्य-चकित करती हुई खडी हो गयीं। तब श्रीचण्डिकादेवी ने घटोत्कच को विश्वास दिलाकर ऊँचे स्वर से यह बात कही कि ॥ ५२ ॥ हे राजा-गण! आप सब सुनिये कि सब बातों का मर्म समझनेवाले श्रीकृष्णजी ने जिस कारण से महाबली बर्बरीक को मारा हैं ॥ ५३ ॥ पहले मेरुपर्वत के शिखर पर इकट्ठे हुए देवताओं को भार से पीड़ित पृथ्वी ने कहा था कि मेरा भार हटाइये ॥ ५४ ॥

उस समय ब्रह्माजी ने विष्णुजी से कहा था कि हे भगवन्! आप इस बात को सुनिये। हे प्रभो! आप पृथ्वी के भार को हटाइये, देवता आपके पीछे चलेंगे ॥ ५५ ॥ कभी भी विकारी न होने वाले विष्णुदेव ने 'अच्छा' कहकर उस बात को मान लिया। इसी बीच में चौरासी कोटि यक्षों का मालिक सूर्यवर्चा नामका यक्षराज हाथ ऊँचा उठाकर कहने लगा ॥ ५६ ॥

अनेक दोषों के भण्डार-स्वरूप मेरे जीते हुए आपलोग मनुष्यलोक

मयि तिष्ठति दोषाणामनेकानां महास्पदे।
सर्वे भवन्तो मोदन्तु स्वर्गेषु सह विष्णुना ॥ ५८ ॥
अहमेकोऽवतीर्यैतान् हनिष्यामि भुवो भरान्।
स्वधर्मशपथा वो वै सन्ति चेज्जन्म प्राप्स्यथ ॥ ५९ ॥
इत्युक्तवचने ब्रह्मा क्रुद्धस्तं समभाषत।
दुर्मते ! सर्वदेवानामविषह्यं महाभरम् ॥ ६० ॥
स्वसाध्यं ब्रूषे मोहात्त्वं शापयोग्योऽसि बालिश !।
देशकालोचितं स्वीयं परस्य च बलं हृदा ॥ ६१ ॥
अविचार्यैव प्रभुषु वक्ति सोऽर्हति दण्डनम्।
तस्माद् भूभारहरणे युद्धस्योपक्रमे सति ॥ ६२ ॥
शरीरनाशं कृष्णात्त्वमवाप्स्यसि न संशयः।
एवं शप्तो ब्रह्मणाऽसौ विष्णुमेतदयाचत ॥ ६३ ॥

में क्यों जन्म लेते हैं ? आप सब विष्णुजी के साथ में स्वर्ग में आनन्द कीजिए ॥ ५७-५८ ॥ मैं अकेला ही पृथ्वी पर उतरकर इन पृथ्वी के भारभूतों को मार दूंगा। यदि आपलोग पृथ्वी में जन्म लेंगे तो आप सबको अपने धर्म की कसम है ॥ ५९ ॥ ऐसी बात कहने पर ब्रह्माजी क्रोध करके उससे कहने लगे कि 'अरे दुर्बुद्धे ! सब देवताओं के लिए भी सामर्थ्य से बाहर के बड़े बोझ को ॥ ६० ॥ तुम नासमझी से अपने वश का ही कहते हो। हे नासमझ ! तुम शाप के योग्य हो। स्थान और समय के औचित्य का, तथा अपना और दूसरे का बल ॥ ६१॥ हृदय से बिना विचार किये ही जो बड़ों (के बीच) में बात बोलता है वह दण्ड पानेयोग्य होता है। इसलिए पृथ्वी के भार हटाने के उपयोगी युद्ध की तैयारी होने पर ॥ ६२ ॥ (इसी प्रकार गर्वित वचन बोलने के कारण) तुम श्रीकृष्णजी के द्वारा निश्चय ही शरीरनाश पावोगे' इस प्रकार ब्रह्माजी से शाप दिए जाने पर यह भगवान् विष्णु से याचना करने लगा कि ॥ ६३ ॥ हे देव ! यदि मेरे शरीर

यद्येवं भविता नाशस्तदेकं देव ! प्रार्थये।
जन्मप्रभृति मे देहि यतिं सर्वार्थसाधिनीम् ॥ ६४ ॥

ततस्तथेति तं प्राह केशवो देवसंसदि।
शिरस्ते पूजयिष्यन्ति श्यामो नाम्ना भविष्यसि ॥ ६५ ॥

इत्युक्त्वा चावतीर्णोऽसौ सह देवैर्हरिस्तदा।
हरिर्नाम स कृष्णोऽसौ भवन्तस्ते तथा सुराः ॥ ६६ ॥

सूर्यवर्चाः स चायं हि निहतो भैमिपुत्रकः।
प्राक्छापं ब्रह्मणः स्मृत्वा हतोऽनेन महात्मना ॥ ६७ ॥

तस्माद् दोषो न कृष्णेऽस्मिन् द्रष्टव्यः सर्वभूमिपैः ॥ ६८ ॥

श्रीकृष्ण उवाच—

यदुक्तं भूमिपा ! देव्या तत्तथैव न संशय. ।
यद्येवमधुना नैव हन्यां ब्रह्मवचोऽन्यथा ॥ ६९ ॥

का नाश ऐसे ही होगा तो मैं एक प्रार्थना करता हूँ कि मुझे जन्म से ही सब कार्यों के साधनेवाली अर्थात् अच्छी बुद्धि दीजिए ॥ ६४ ॥ उस समय देवताओं की साधारण सभा में श्रीकृष्णजी ने उससे कहा—ठीक है [और अपने उचित दण्ड को सहर्ष स्वीकार करने के आत्मबल से प्रसन्न होकर वरदान दिया कि—तुमने अच्छी बुद्धि माँगी है। बुद्धि का सम्बन्ध साधारणतः मस्तिष्क से समझा जाता है इसलिए] तुम्हारे शीर्ष की पूजा होगी, और श्याम के नाम से प्रसिद्ध होओगे ॥ ६५ ॥ यह कहकर देवताओं के साथ विष्णु भगवान् ने पृथ्वी पर अवतार लिया। वही विष्णु भगवान् ये श्रीकृष्ण जी हैं, और आपलोग वे सब देवता हैं ॥ ६६ ॥ यह भीम का पौत्र जो मारा गया है, वह सूर्यवर्चा यक्षराज है। ब्रह्माजी के पुराने शाप को याद करके इन महात्मा श्रीकृष्णजी ने इसे मारा है ॥ ६७ ॥ इसलिए समस्त राजाओं को श्रीकृष्णजी का दोष नहीं देखना चाहिये ॥ ६८ ॥

[❀ इसके अतिरिक्त शीर्षदान लेने का कोई प्रकाशनीय अभिप्राय श्रीकृष्णजी का नहीं है। वस्तुतः श्रीश्यामदेव जी अपने पूर्वजन्म की प्रतिज्ञाके अनुसार

ततो भवेदिति स्मृत्वा मयासौ विनिपातितः।
गुप्तक्षेत्रे मयैवासौ नियुक्तो देव्यनुस्मृतौ ॥ ७० ॥
पूर्वं दत्तं वरं स्वीयं स्मरता देवसंसदि।
इत्युक्ते चण्डिका देवी तदा भक्तशिरस्त्विदम् ॥ ७१ ॥
अभ्युक्ष्य सुधया शीघ्रमजरं चामरं व्यधात्।
यथा राहुशिरस्तद्वत् तच्छिरः प्रणनाम तान् ॥ ७२ ॥

कौरवपक्ष की ग्यारह अक्षौहिणी सेना का नाश अकेले ही कर देते जिससे पाण्डवपक्ष की सात अक्षौहिणी सेना का भार पृथ्वी से नहीं हट सकता, इस गुप्त अभिप्राय से यह लीला की गयी[1] ❀]

श्रीकृष्णजी ने कहा—हे राजागण! देवीजी ने जो बात कही है, वह ठीक है। इनमें कोई सन्देह नहीं। यदि इस समय मैं इसे नहीं मारता तो ब्रह्माजी को बात झूठी हो जाती ॥ ६९ ॥ इसलिए मैंने याद करके इसे मारा है। देवताओं को सभा में पहले मैंने अच्छी बुद्धि रहने का वर दिया है, इस अपने वर को याद करके ही मैंने इसे गुप्तक्षेत्र में देवियों की आराधना के लिए लगाया था ॥ ७० ॥

❀ पूजनीयता का वरदान ❀

ऐसा कहने के बाद चण्डिका देवी ने इस भक्त के शीर्ष को ॥ ७१ ॥ तत्काल अमृत से अभ्युक्षण (छिड़क) करके राहु के शीर्ष को भांति अजर और अमर (देवता) बना दिया। इस नवीन जाग्रत् शिर ने उन सबको प्रणाम किया ॥ ७२ ॥ और कहा कि—मैं

---

१. अक्षौहिणी सेना का परिमाण महाभारत में यह बताया गया है —

अक्षौहिण्याः प्रमाणं तु खाङ्गाष्टैकद्विकैर्गजैः।
रथैरेतैर्हयैस्त्रिघ्नैः पञ्चघ्नैश्च पदातिभिः ॥

अर्थात् एक अक्षौहिणी सेना में २१८७० हाथी, २१८७० रथ, ६५६१० घोड़े तथा १०९३५० पैदल सैनिक होते हैं। इस प्रकार चतुरङ्गिणी एक अक्षौहिणी सेना का कुल परिमाण २१८७०० है।

उवाच च दिदृक्षामि युद्धं तदनुमन्यताम् ।
ततः कृष्णो वचः प्राह मेघगम्भीरवाक् प्रभुः ॥ ७३ ॥

यावन्मही सनक्षत्रा यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।
तावत्त्वं सर्वलोकानां श्याम ! पूज्यो भविष्यसि ॥ ७४ ॥

स्तुतो भविष्यसि सदा मच्चरित्रैस्तु पावनैः ।
देवीलोकेषु सर्वेषु देवीवद् विचरिष्यसि ॥ ७५ ॥

स्वभक्तानां च लोकेषु देवीनां दास्यसे स्थितिम् ।
बालानां ये भविष्यन्ति वातपित्तकफोद्भवाः ॥ ७६ ॥

पिटकास्ताः सुखेनैव शमयिष्यसि पूजनात् ।
इदं च शृङ्गमारुह्य पश्य युद्धं यथा भवेत् ॥ ७७ ॥

इत्युक्ते वासुदेवेन देव्योऽथाम्बरमाविशन् ।
बर्बरीकशिरश्चैव गिरिशृङ्गमवाप तत् ॥ ७८ ॥

युद्ध देखना चाहता हूँ, आप लोग इसकी स्वीकृति दीजिए। तब मेघ के समान गम्भीरभाषी प्रभु श्रीकृष्णजी ने कहा ॥ ७३ ॥ हे श्याम ! जब तक यह नक्षत्रसहित पृथिवी है और जबतक सूर्य और चन्द्रमा हैं, तब तक तुम सब लोगों के पूजनीय होओगे ॥ ७४ ॥ सर्वदा तुम मेरे पवित्र चरितों से स्तुति किये जाओगे, और देवियों के स्थानों में देवियों के समान विचरते रहोगे ॥ ७५ ॥ और अपने भक्तगणों के समुदाय में [श्रद्धा, मैत्री (मिलनसारता), दया, शान्ति, तुष्टि (प्रसन्नता , पुष्टि (बल), क्रियोन्नति (काम की लगन), बुद्धि, मेधा (धारणाशक्ति), तितिक्षा (सहनशीलता), ह्री (बड़ों से एव कुकर्म से लज्जा), कान्ति (प्रभाव), लक्ष्मी आदि] देवियों (शक्तियों) का वासस्थान देवोगे। (कुलदेवियों की मर्यादा जैसी है, वैसी ही बनाई रखोगे), तुम्हारे बालरूपी भक्तों के जो वात-पित्त-कफ से पिटकरोग होंगे ॥ ७६ ॥ उनको पूजा पाकर बड़ी सरलता से मिटाओगे ॥ ७७॥ और इस पर्वत की चोटी पर आरूढ़ होकर जैसे युद्ध होता है, उसे देखो। इस भाँति वासुदेव श्रीकृष्ण के कहने पर सब

देहस्य भूमिसंस्काराश्चाभवञ्छिरसो नहि ।
ततो युद्धं महदभूत् कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ७९ ॥
अष्टादशाहेन हता ये च द्रोण-वृषादयः ।
दुर्योधने हते क्रूरे अष्टादशदिनात्यये ॥ ८० ॥
युधिष्ठिरो ज्ञातिमध्ये गाविन्दं समभाषत ।
पुरुषात्तम ! संग्राममम‌ुं सन्तारिता वयम् ॥ ८१ ॥
त्वयैव नाथेन हरे ! नमस्ते पुरुषोत्तम ! ।
श्रुत्वा तस्यापि सासूयमिदं भीमो वचोऽब्रवोत् ॥ ८२ ॥
येन ध्वस्ता धातराष्ट्रास्तं निराकृत्य मां नृप ! ।
पुरुषोत्तमं कृष्णमिति ब्रवोषि किमु मूढवत् ॥ ८३ ॥
धृष्टद्युम्नं फाल्गुनं च सात्यकिं मां च पाण्डव ।
निराकृत्य ब्रवीष्येवं सूतं धिक्त्वां युधिष्ठिर ! ॥ ८४ ॥

देवियाँ आकाश में अन्तर्धान कर गईं। और ववंरीकजो का शीर्ष पर्वत को चोटी पर पहुँच गया ॥७८॥ ववंरीकजो के शेष शरोरके तो शास्त्रोय विधि से अन्तिम संस्कार कर दिये गये, पर शीर्षस्वरूपके नहीं किये गये (क्योंकि वह देवरूप में परिणत हो गया था) उसके बाद कौरव और पाण्डव सेना में भयङ्कर युद्ध हुआ ॥ ७९ ॥ युद्ध में जो द्रोण-वृषसेन आदि सभी वीर योद्धा थे, वे १८ दिन में मार दिये गये। दुष्ट दुर्योधन के भो मारे जाने पर १८ दिनों के बाद ॥ ८० ॥ अपने भाइयों के मध्य में राजा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णजी को कहा – हे पुरुषोत्तम ! हमको आपने हो अपनी कृपा से इस महायुद्ध से पार कर दिया ॥ ८१ ॥ हे हरे ! हे पुरुषोत्तम ! आपको नमस्कार है। राजा की इस बात को सुनकर कुछ जलते हुए भीमसेन ने कहा ॥ ८२ ॥ जिसने धृतराष्ट्र के सब पुत्रों का नाश किया, उसे (मुझको) छोड़कर हे राजन् ! नासमझ की भाँति श्रीकृष्णजी का पुरुषोत्तम क्या कहते हो ? ॥ ८३ ॥

हे पाण्डुपुत्र ! धृष्टद्युम्न, अर्जुन, सात्यकि और मुझे छोड़कर आप ऐसा

अर्जुन उवाच—

मैवं मैवं ब्रूहि भीम ! न त्वं वेत्सि जनार्दनम् ।
न मया न त्वया पार्थ ! नान्येनाप्यरयो हताः ॥ ८५ ॥
अहं हि सर्वदाग्रस्थं नरं पश्यामि संयुगे ।
निघ्नन्तं शात्रवाँस्तत्र न जाने कोऽप्यसाविति ॥ ८६ ॥

भीम उवाच—

विभ्रान्तोऽसि ध्रुवं पार्थ नात्र हन्ता नरोऽपरः ।
अथ चेदस्ति त्वत्पौत्रमुच्चस्थं वच्मि हन्त कः ॥ ८७ ॥
उपसृत्य ततो भीमो वर्वरीकमपृच्छत ।
ब्रूह्यते केन निहता धार्तराष्ट्रा हि शत्रवः ॥ ८८ ॥

बर्बरीक उवाच—

एको मया पुमान् दृष्टो युध्यमानः परैः सह ।
सव्यतः पञ्चवक्त्रः स दक्षिणे चैकवक्त्रकः ॥ ८९ ॥

कहते हैं ? । युधिष्ठिर ! (आप जैसे सत्यवादी के लिए) झूठी प्रशंसा करना (सूतकार्य) अनुचित है ॥ ८४ ॥ अर्जुन ने कहा—भीमसेन ! नहीं नहीं ऐसा मत कहो । तुम जनार्दन श्रीकृष्णजी को नहीं जानते हो । हे कुन्ती-पुत्र ! न तो मैंने और न तुमने और न अन्य किसीने इन शत्रुओं को मारा है ॥ ८५॥ मैंने युद्ध में सदा अपने आगे शत्रुओं के योद्धाओं को मारते हुए एक पुरुष को देखा है, न जाने वह कौन था ? ॥ ८६ ॥ भीम ने कहा—हे कुन्ती-पुत्र ! तुम सचमुच भ्रम में हो रहे हो । यहाँ कोई भी दूसरा मारने वाला नहीं था । और यदि कोई था तो मैं ऊँचे में बैठे हुए तुम्हारे पौत्र (श्रीश्यामजी) को पूछता हूँ कि वह कौन था ? ॥ ८७ ॥

❀ वरदान की पुनरावृत्ति ❀

तब भीमसेन ने श्रीश्याम (वर्वरीक) जी के पास आकर पूछा कि—बताओ, इन धृतराष्ट्रपक्ष के हमारे शत्रुओं को किसने मारा है ? ॥ ८८ ॥ बर्बरीकजी ने कहा—मैंने शत्रुओं के साथ लड़ता हुआ एक पुरुष देखा है, जो बाँयी ओर पांच मुख का और दाहिनी ओर एक मुख का था ॥ ८९ ॥

सव्यतो दशहस्तश्च धृतशूलाद्युदायुधः ।
दक्षिणे च चतुर्हस्तो धृतचक्राद्युदायुधः ॥ ९० ॥

सव्यतश्च जटाधारी दक्षिणे मुकुटोच्चयः ।
सव्यतो भस्मधारी च दक्षिणे धृतचन्दनः ॥ ९१ ॥

सव्यतश्चन्द्रधारी च दक्षिणे कौस्तुभद्युतिः ।
ममापि तद्दर्शनतो महद्भयमजायत ॥ ९२ ॥

ईदृशो मे नरो दृष्टो न चान्यो यो जघान तान् ।
इत्युक्ते पुष्पवर्षं तु खादासोत् सुमहाप्रभम् ॥ ९३ ॥

सस्वनुर्देववाद्यानि साधु साध्विति वै जगुः ।
विस्मिताः पाण्डवाश्चासन् प्रणेमुः पुरुषोत्तमम् ॥ ९४ ॥

विलक्षश्चाभवद् भीमा निःश्वासांश्चाप्यमुञ्चत ।
तं ततः केशवः स्वामी समादाय करे दृढे ॥ ९५ ॥

उसके बाँयें भाग में दस हाथ थे, जिनमें उसने शूल आदि शस्त्र ऊँचे उठा रखे थे। दाहिनी ओर चार हाथ थे, जिनमें चक्र आदि शस्त्र उठा रखे थे ॥ ९० ॥ बाँयी ओर जटा धारण किये हुए था, दाहिनी ओर मुकुट से सुशोभित था। बाँयें भाग में भस्म लगी हुई थी, दाहिनी ओर चन्दन लगा हुआ था ॥ ९१ ॥ बाँयी ओर चन्द्रमा विराजमान था, एवं दाहिनी ओर कौस्तुभमणिकी ज्योति थी। (दोनों सेनाओं के मध्य स्थित इस हरिहरात्मक देव का पाण्डवसेना की ओर मनोहर शान्त विष्णुस्वरूप था एवं कौरवसेना की ओर भयानक संहारकर्ता महारुद्रस्वरूप था) मुझे भी उसे देखकर बहुत डर हुआ था ॥ ९२ ॥ मैंने ऐसा ही पुरुष देखा। और किसी को नहीं देखा, जो उन शत्रुओं को मारता। यह कहते ही आकाश से बहुत सुन्दर प्रकाशयुक्त पुष्पों की वर्षा हुई ॥ ९३ ॥ देवताओं के बाजे बजने लगे। बहुत अच्छा ! बहुत अच्छा !! ये ध्वनियाँ आने लगीं। पाण्डव भी आश्चर्यचकित हो गये और श्रीकृष्ण जी को प्रणाम करने लगे ॥ ९४ ॥ भीमसेन का मुँह उतर गया, और वह साँस छोड़ने

कुरुशार्दूल ! एहीति प्रोच्य सस्मार काश्यपिम् ।
आरुह्य गरुडं पश्चात् स्मृतमात्रमुपस्थितम् ॥ ९६ ॥

भीमेन सहितो व्योम्नि प्रयातो दक्षिणां दिशम् ।
ततोऽर्णवमतीत्यैव सुवेलं च महागिरिम् ॥ ९७ ॥

लङ्कासमीपे दृष्ट्वैव सरः कृष्णोऽब्रवीद् वचः ।
कुरुशार्दूल ! पश्येदं सरो द्वादशयोजनम्* ॥ ९८ ॥

यदि शूरोऽसि तच्छीघ्रमानयास्य तलान्मृदम् ।
इत्युक्तो गरुडाच्छीघ्रं न्यपतत्तज्जले बली ॥ ९९ ॥

योजनं वायुजवाद् गच्छन्नधो नान्तमपश्यत ।
ततो भीमो विनिःसृत्य भग्नवीर्योऽभ्यभाषत ॥ १०० ॥

अगाधमेतत् सुमहत्सरः कैश्चिन्महाबलैः ।
अहं खादितुमारब्धः कथं चिच्चापि निर्गतः ॥ १०१ ॥

लगा। तब महाप्रभु श्रीकृष्णजी ने अपने बलवान् हाथों में उसे उठाकर कहा ॥९५॥ कुरुकुलसिंह भीमसेन ! आओ। यह कहकर गरुड़जी का स्मरण किया। और स्मरण के साथ ही उपस्थित गरुड़जी के ऊपर चढ़कर ॥ ९६ ॥ भीमसेन के साथ आकाश में दक्षिण दिशा की ओर चले गये। और समुद्र पार करके महापर्वत सुवेल को लाँघ करके ॥ ९७ ॥ लङ्का के समीप में एक तालाब देखकर श्रीकृष्णजी ने कहा—हे कुरुकुलसिंह ! इस १२ योजन (अर्थात् ४८ कोस) के तालाब को देखो ॥ ९८ ॥ यदि तुम वीर हो तो इसकी जमीन (पेंदी) से मिट्टी जल्दी ले आओ। यह कहते ही महाबली भीम गरुड़ पर से तुरत जल में कूद पड़ा ॥ ९९ ॥ वायु के समान तेजी से ४ कोस पानी में नीचे जाकर भी उसने उसका अन्त नहीं देखा, तब भीम बाहर निकलकर बल समाप्त होजाने से कहने लगा ॥ १०० ॥ यह सरोबर अथाह है। कई बलवान् जन्तुगण मुझे खाने लग गये, किसी तरह से निकला हूँ ॥ १०१ ॥

---

* भारतसारे वनपर्वणि १९ अध्याये कुम्भकर्णमस्तकभागस्य सरो भीमाय हनुमता दर्शितम् ।

एवमुक्तो हसन् कृष्ण उच्चिक्षेप महत्सरः।
स्वेनाङ्गुष्टेन तेजस्वी तदर्धार्धमजायत।
तद् दृष्ट्वा विस्मितः प्राह किमिदं कृष्ण! ब्रूहि मे ॥ १०२॥

श्रीकृष्ण उवाच—

कुम्भकर्ण इति ख्यातः पूर्वमासीन्निशाचरः।
रामबाणहतस्याभूच्छिरश्छिन्नं सुदुर्मतेः ॥ १०३॥
शिरसस्तस्य तालुक्यखण्डमेतद् वृकोदर!।
योजनद्वादशायामं मृदु क्षिप्तं विचूर्णितम् ॥ १०४॥
विधृतस्त्वं च यैस्ते तु सरोगेयाभिधाः सुराः।
त्रिकूटस्य शिलाभिश्च चूर्णिता ये च कोटिशः ॥ १०५॥
एते हि विश्वरिपवो निहताः स्युरुपायतः।
गच्छामः पाण्डवान् भीम! द्रौणिर्हि त्वरते दृढम् ॥ १०६॥

ऐसा कहने पर हँसते हुए महाप्रतापी श्रीकृष्णजी ने उस बड़े तालाब को अपने पैर के अंगूठे से फेंक दिया, और वह टुकड़ा-टुकड़ा हो गया। यह देखकर भीमसेन आश्चर्य में भरकर कहने लगा—हे कृष्ण! यह क्या है? कृपया मुझे बताइये ॥ १०२॥ श्रीकृष्णजी ने कहा—पुराने युग में कुम्भकर्ण नाम का एक राक्षस था। उस दुर्बुद्धिका रामजी के बाण से शिर कट गया था ॥ १०३॥ हे भीमसेन! उस कुम्भकर्ण के शिर का यह तालु का भाग है। १२ योजन अर्थात् ४८ कोस का चौड़ा लम्बा यह हिस्सा है। इसको मैंने हलकी चोट से फेंक दिया है और चूर-चूर कर दिया है ॥ १०४॥ जिन्होंने तुमको पकड़ लिया था, वे 'सरोगेय' नाम के पूर्वदेवता थे। जो त्रिकूट पर्वत को शिलाओं से टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये थे ॥ १०५॥ ये संसार के शत्रु हैं, उपाय से ही मारे जा सकते हैं। हे भीमसेन! अब पाण्डवों के पास चलो—अश्वत्थामा सचमुच जल्दी कर रहा है ॥ १०६॥ तब भीमसेन, मन वाणी,

ततो भीमः प्रणम्याह मनोवाक्कायबुद्धिभिः ।
कृतमाजन्मतः सर्वं कुकृतं क्षम केशव ! ॥ १०७ ॥
पुरुषोत्तम ! जगन्नाथ ! बालिशस्य प्रसीद मे ।
ततः क्षान्तमिति प्रोच्य भीमेन सहितो हरिः ॥ १०८ ॥
रणाजिरं भूय एत्य बर्बरीकं वचोऽब्रवीत् ।
चरन्नेवं सुहृदय ! सर्वलोकेषु नित्यशः ॥ १०९ ॥
पूजितः सर्वलोकैस्त्वं यच्छँस्तेषां वरान्वृतान् ।
गुप्तक्षेत्रं च न त्याज्यं सर्वक्षेत्रोत्तमोत्तमम् ॥ ११० ॥
दग्धस्थल्यां तथा वासी क्षमस्व दुष्कृतं च यत् ।
इत्युक्तस्तान् नमस्कृत्य भैमिः स्वैरं ययौ मुदा ॥ १११ ॥

शरीर और बुद्धि से भगवान् को प्रणाम करके कहने लगा—हे भगवन् ! मैंने जन्म से ही (आपके प्रति) सब अनुचित कार्य किया है, क्षमा कीजिए ! ॥१०७॥ हे पुरुषोत्तम ! हे जगत् के स्वामी ! मुझ नासमझ पर प्रसन्न होइये ! (इत्यादि भीम की प्रार्थना से) प्रसन्न होकर भगवान् ने 'क्षमा किया' यह कहा और भीम के साथ ॥ १०८ ॥ फिर युद्धस्थल पर आकर बर्बरीकजी को वचन कहा—हे सुहृदय ! (अच्छे कोमल हृदय वाले) श्रीश्याम ! ऐसे ही (शीर्षशिस्वरूप मात्रसे ही पूर्ण देवतारूप होकर) तुम सर्वदा सब लोकोंमें विचरण करते हुए ॥ १०९ ॥ सबके द्वारा पूजित होकर भक्तों को उनकी मनचाही कामना पूरण करते हुए विचरते रहो । सब क्षेत्रों में अत्यन्त उत्तम इस गुप्तक्षेत्र के सम्बन्ध को मत छोड़ना ॥ ११० ॥ और स्थायी रूप से दग्धस्थली (ढुण्ढार)[1] भूमिमें ही रहना । भक्तों का जो कोई अपराध हो उसे प्रार्थना करने पर क्षमा कर देना । इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण के कहने पर भीमपौत्र बर्बरीकजी उन सबको नमस्कार करके प्रसन्नतापूर्वक चले गये ॥ १११ ॥ श्रीकृष्णजी ने

१. भाषावैज्ञानिक परिवर्तन इस प्रकार है—
दग्धस्थल > दग्थल > ढण्ढर > ढण्ढार > ढुण्ढार ।

वासुदेवोऽपि कार्याणि सर्वाण्यूर्ध्वमकारयत् ।
इति वा वर्णितोत्पत्तिर्वर्वरोकस्य वाडवा: ! ॥ ११२ ॥
स्तवं चास्य प्रवक्ष्यामि येन तुष्यति यक्षराट् ॥ ११३ ॥

जय जय चतुरशीतिकोटिपरिवार सूर्यवर्चाभिधान यक्षराज, जय भूभारहरणप्रवृत्त लघुशापप्राप्तनैऋंतयोनिसम्भव, जय कामकटङ्कटाकुक्षिराजहंस, जय घटोत्कचानन्दवर्धन वर्वरीकाभिधान, जय कृष्णोपदिष्टश्रीगुप्तक्षेत्रदेवीसमाराधनप्राप्तातुलवीर्य, जय विजयसिद्धिदायक, जय पिङ्गला-रेपलेन्द्र-दुहद्रुहा-नवकोटीश्वरपलाशिदावानल, जय भूपालान्तराले नागकन्यापरिहारक, जय

भी उसके बाद पाण्डवों के सब काम कराये । हे ब्राह्मणों ! इस प्रकार मैंने आपको वर्वरीकजी की उत्पत्ति का इतिहास कहा है ॥ ११२ ॥ अब मैं श्रीश्यामजी महाराजका एक स्तोत्र कहता हूँ, जिससे धन के मालिक, (पूर्वजन्म के यक्षों के स्वामी) भगवान् श्यामजी महाराज प्रसन्न होते हैं ॥ ११३ ॥ [इस स्तोत्र में भगवान् के पूर्वजन्म के इतिहास का सङ्केत है जिसका पूरा विवरण पहिले आ चुका है] हे चौरासी कोटि परिवारवाले सूर्यवर्चस् नाम के धनाध्यक्ष भगवान् ! आपकी जय हो ! जय हो !, पृथ्वीके भार हटाने में उत्साही, तथा थोड़े से शाप पाने के कारण रक्षस् नाम की देवयोनि में जन्म लेने वाले भगवान् ! आपकी जय हो !, हे कामकटङ्कटा माता की कोख के राजहंस भगवान् ! आपकी जय हो !; हे घटोत्कच पिता के आनन्द बढ़ाने वाले वर्वरीकजी के नाम से सुप्रसिद्ध देव ! आपकी जय हो !; श्रीकृष्णजी के उपदेश से श्रीगुप्तक्षेत्र में देवी की आराधना से अतुलित बल पानेवाले भगवन् ! आपकी जय हो !; हे विजय को सिद्धि दिलाने वाले वीर ! आपकी जय हो !, हे पिङ्गला-रेपलेन्द्र-दुहद्रुहा तथा नौ कोटि मांसभक्षी पलाशिराक्षसों के जंगलरूपी समूह को अग्नि की भाँति भस्म करने वाले भगवन् ! आपकी जय हो !; पृथ्वी और पाताल के बीच रास्ते में नागकन्याओं

भीममानमर्दन, जय सकलकौरवसेनावधमुहूर्तप्रवृत्त, जय श्रीकृष्णवरलब्धसर्ववर-प्रदानसामर्थ्यं, जय जय कलिकालवन्दित नमो नमस्ते पाहि पाहीति ॥ ११४ ॥

अनेन यः सुहृदयं श्रावणेऽभ्यर्च्य दर्शके।
वैशाखे च त्रयोदश्यां कृष्णपक्षे द्विजोत्तमाः ! ॥
शतदीपैः पूरिकाभिः संस्तवेत्तस्य तुष्यति ❀ ॥ ११५ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणे कौमारिकाखण्डे श्रीश्यामदेवकथायां
पञ्चमोऽध्यायः ।

को छोड़ देने वाले महात्मन् ! आपकी जय हो !; हे भीमसेन के अहङ्कार को नष्ट करनेवाले योद्धा ! आपको जय हो !; हे कौरवों की सेना दो घड़ी (४८ मिनट) में नाश कर देने में उत्साही वीर ! आपको जय हो !; हे श्रीकृष्ण के वरदान के द्वारा सब कामनाओं के पूरण करने का सामर्थ्य पाने वाले वीर ! आपकी जय हो !, हे कलियुग के समय में पूजनीय देवराज ! आपकी जय हो ! जय हो !, आपको बार-बार नमस्कार है। हमारी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये ॥ ११४ ॥ ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ऋषियों ! कृष्णपक्ष की श्रवणनक्षत्रयुक्त अमावास्या (जो प्रायः फाल्गुन में होती है) के तेरहवें दिन अर्थात् फाल्गुन सुदी द्वादशी के दिन, तथा विशाखानक्षत्रयुक्त अमावास्या (जो प्रायः कार्तिक में होती है) के तेरहवें दिन अर्थात् कार्तिक सुदी द्वादशी के दिन जो भक्त अनेक तपे हुए अंगारों में बनाई हुई पूरिकाओं के चूरमों से पूजा करके इस उपर्युक्त स्तोत्र से स्तुति करता है, उसके ऊपर भगवान् श्रीश्यामदेव प्रसन्न होते हैं ॥ ११५ ॥

❀ श्रीस्कन्दपुराण कौमारिकाखण्ड की श्रीश्यामदेवकथा में
पञ्चम अध्याय समाप्त हुआ। ❀

❀ हे द्विजोत्तमाः ! अनेन = उपरितनस्तोत्रेण यः = पुरुषः सुहृदयं = श्रीश्यामदेवं कृष्णपक्षे = कृष्णपक्षसंबन्धिनि श्रावणे = श्रवणनक्षत्रयुते, वैशाखे = विशाखानक्षत्र-युते च दर्शके = अमावास्यायां तस्याः परायां त्रयोदश्यां = तिथौ शुक्लपक्षद्वादश्या-मित्यर्थः, शतदीपैः = अनेकदीपैः, अनेकदीप्ताङ्गारैः पूरिकाभिः = पूरिताभिः पाचिताभिः चूर्णलिमाभिः अङ्गारकर्कटीभिः बाटा का चूरमा) इति यावत्, अभ्यर्च्य संस्तवेत्, तस्य = तस्मै श्रीश्यामदेवः तुष्यति वराभिमुखो भवतीत्यर्थः ।

कथाश्रवणविधौ उत्तराङ्गानि

कथाश्रवणान्ते—यजमानः अन्ये च श्रोतारः यथासम्पादितैरुपचारैः वस्त्रमुद्रादिभिः पुस्तकपूजनं व्यासपूजनं च श्रद्धया कुर्युः। ततो यजमानः आवाहितदेवतानां भगवतः श्रीश्यामदेवस्य च उत्तरपूजनं विधाय नानावर्तीः प्रज्वलय्य उत्थाय वाद्यघोषं कारयन् देवस्य सर्वावयवनिरीक्षणं भावयन् नीराजनं कुर्यात्।

दीपनीराजनम्—(घण्टानादेन) [ॐ इदᳬ हविः०]

तवेयं हि महामूर्तिस्तस्यां त्वां सर्वगं प्रभो !।
भक्तस्नेहसमाकृष्टं दीपवत्स्थितमीमहे ॥

कर्पूरनीराजनम्—(घण्टानादेन) [ॐ आरात्रि०]

कदलीगर्भसंभूतं कर्पूरं तु प्रदीपितम्।
नीराजनमहं कुर्वे पश्य मां वरदो भव ॥ (प्रा०)

शङ्खभ्रामणम्—(घण्टानादेन) [ॐ अग्निर्ऋषिः०]

पुरायं सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे।
निर्मितः सर्वदेवैश्च तेनार्चापि परं विभुम् ॥

आरतीगायनम्—भगवन्तं श्रीश्यामदेवं ध्यायन् शब्दस्यार्थमनुस्मरन् भक्तिद्रुतचेताः आरतिं स्तोत्रम् उपस्थितजनैः सह गायेत्—

ॐ जय श्रीश्याम हरे !, प्रभु जय श्रीश्याम हरे !!
निजभक्तन के तुमने पूरण काम करे ॥
ॐ जय श्रीश्याम हरे ! ॥

गल पुष्पों की माला सिर पर मुकुट धरे।
पीतवसन पीताम्बर कुण्डल कर्ण परे ॥
ॐ जय श्रीश्याम हरे ! ॥

रतन सिंहासन राजत सेवक भक्त खड़े।
खेवत धूप अग्नि पर दीपक ज्योति जरे ॥
ॐ जय श्रीश्याम हरे ! ॥

मोदक खीर चूरमा सुवरण थाल भरे।
सेवक भोग लगावत सिर पर छत्र ढुरे॥
ॐ जय श्रीश्याम हरे ! ॥

झाँझँ नगार घड़ावल शंख मृदङ्ग घुरे।
भक्त आरती गावत नौबत द्वार झरे॥
ॐ जय श्रीश्याम हरे ! ॥

जो ध्यावे फल पावे सब दुख से उबरे।
सेवकजन नित मुख से श्याम श्याम उचरे॥
ॐ जय श्रीश्याम हरे ! ॥

तदनन्तरं प्रार्थनां कुर्यात् ।

प्रार्थना—

अविनयमपनय विष्णो ! दमय मनः, शमय मृगतृष्णाम् ।
भूतदयां विस्तारय, तारय संसारसागरतः ॥ १ ॥

दिव्यधुनीमकरन्दे परिमलपरिभोगसच्चिदानन्दे ।
श्रीपतिपदारविन्दे भयभयखेदच्छिदे वन्दे ॥ २ ॥

सत्यपि भेदापगमे नाथ ! तवाहं न मामकीनस्त्वम् ।
सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो न तारङ्गः ॥ ३ ॥

उद्धृतनग ! नगभिदनुज ! दनुजकुलामित्र ! मित्रशशिदृष्टे !
दृष्टे भवति प्रभवति न भवति किं भवतिरस्कारः ॥ ४ ॥

मत्स्यादिभिरवतारैरवताऽवता सदा वसुधाम् ।
परमेश्वर ! परिपाल्यो भवता भवतापभीताऽहम् ॥ ५ ॥

दामोदर ! गुणमन्दिर ! सुन्दरवदनारविन्द ! गोविन्द !
भवजलधिमथनमन्दर ! परमं दरमपनय त्वं मे ॥ ६ ॥

नारायण ! करुणामय ! शरणं करवाणि तावकौ चरणौ ।
इति षट्पदी मदीये वदनसरोजे सदा वसतु ॥ ७ ॥
(षट्पदीस्तोत्रम्)

श्याम धजाबन्धधारी, जगत जोत तिहारी।
सांवला बिहारो, मैं आयो शरण तुम्हारी॥
खबर लीज्यो मुरारी, राखो लाज हमारी।
धन खाटू धन सांवला, धन धोलो धजा।
पुष्कर मेलो पांच दिन, श्याम को सदा॥

श्याम को ध्यावे, सदा सुख पावे।
श्याम धणी, उनके काहे को कमी॥

जो जाके शरणे बसे, ताको वाकी लाज।
उलटे जल मछली चढे, बहे जात गजराज॥

नामसङ्कीर्तनम्—(यथाशक्ति कुर्यात्)—

जय श्रीश्याम जय श्रीश्याम, जय श्रीश्याम जय जय घनश्याम।
जय श्रीश्याम जय श्रीश्याम खाटूवाले जय श्रीश्याम॥

जयघोषम्—(भक्तैः सह कुर्यात्)

अटल छत्र बाबा को जय। श्यामदातार को जय।
लखदातार की जय। इष्टदेव की जय।
कुलदेव की जय। खट्वा नगरी की जय।
श्यामकुण्ड की जय। श्याम का देवालय की जय।
सांवला जी महाराज को जय॥

(प्राचीन शरणागतिपाठ)

साष्टाङ्गप्रणामम्—(हस्त-पाद-जानु-वक्षः-शिरो-मनो-वाणी-भक्ति-रूपाष्टाङ्गानि देवस्य पुरतो दण्डवत् प्रणिपातयन् कुर्यात्)—

[ॐ विष्णो रराटमसि०]

नमः समस्तभूतानामादिभूताय भूभृते।
अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे॥ (वि० स०)

प्रदक्षिणाम्—(चतुर्वारं कुर्यात्[1])—[ॐ सप्तास्यासन्०]

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतान्यपि ।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति प्रदक्षिणपदे पदे ॥ (प्रा०)

क्षमापनम्—[ॐ यो देवेभ्य आतपति०]

यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात् ।
विमुच्यते नमस्तस्यै विष्णवे प्रभविष्णवे ॥ (वि० स०)
अज्ञानाद्वा प्रमादाद्वा वैकल्यात् साधनस्य च ।
यन्न्यूनमतिरिक्तं वा तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥
द्रव्यहीनं क्रियाहीनं मन्त्रहीनं मयान्यथा ।
कृतं यत्तत् क्षमस्वेश ! कृपया त्वं दयानिधे ! ॥
यन्मया क्रियते कर्म जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।
तत्सर्वं तावकी पूजा भूयाद् भूत्यै च मे प्रभो ! ॥
भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम् ।
त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं प्रभो ! ॥
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम ।
तस्मात् कारुण्यभावेन क्षमस्व परमेश्वर ! ॥
अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व जगतां पते ! ॥
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।
पूजां चैव न जानामि त्वं गतिः परमेश्वर ! ॥

---

१. एकप्रदक्षिणेनापि सामान्यप्रदक्षिणास्वरूपक्लृप्तिराचारेन्दौ (पृ० १७०) तृचभास्करोक्तेर्यथा—

प्रसार्य दक्षिणं हस्तं स्वयं नम्रशिराः पुनः ।
दर्शयन् दक्षिणं पार्श्वं मनसापि च दक्षिणः ।
सकृत् त्रिर्वा वेष्टयेद् यत्तत्प्रदक्षिणमुच्यते ॥ इति ॥

ततो विष्णुं स्मरन् कर्म ईश्वरार्पणं कुर्यात्—

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं संपूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥
प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।
स्मरणादेव तद् विष्णोः संपूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥

हस्ते जलं गृहीत्वा समर्पयेत्—

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्धयात्मना वानुसृतिस्वभावात् ।
करोमि यद्यत्सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पये तत् ॥
कृतेनानेन सपूजन-कथाश्रवणकर्मणा भगवान् श्रीश्यामदेवः प्रीयताम् । अभीष्टसिद्धिर्भवतु । ॐ तत्सत् श्रीश्यामदेवार्पणमस्तु ।
ततः समागतानां श्रोतॄणां यथोचितं सत्कारं प्रसादवितरणं च कुर्यात् ।

ततः प्रसादग्रहणम् । तत्र तुलसीग्रहणम्—

पूजनानन्तरं विष्णोरर्पितं तुलसीदलम् ।
भक्षयामि विशुद्धयर्थं चान्द्रायणशताधिकम् ॥

चरणामृतग्रहणम्—अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम् ।
विष्णोः पादोदकं पीत्वा शिरसा धारयाम्यहम् ॥

पञ्चामृतग्रहणम्—दुःखदौर्भाग्यनाशाय सर्वपापक्षयाय च ।
विष्णोः पञ्चामृतं स्वादु गृह्णामि शुभदं नृणाम् ।

नैवेद्यग्रहणम्—

नैवेद्यमेतत्तुलसीविमिश्रं विशेषतः पादजलेन विष्णोः ।
प्राश्नामि, मे स्यादचला च भक्तिर्यस्माद्धि यज्ञायुतकोटिपुण्यम् ॥

गमनम्—ततः सर्वेऽपि श्रोतारः श्रीश्यामदेवस्य प्रसन्नतां भावयन्तो यशःकथां प्रचारयन्तो यथासुखं विहरेयुः ।

विसर्जनम् —यजमानश्च विदुषामाज्ञया यथासमयमावाहितदेवताविसर्जनं कुर्यात् ।
तत्र अक्षतान् गृहीत्वा—[ॐ उत्तिष्ठ०]

यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय पार्थिवीम् ।
इष्टकामसमृद्धयर्थं पुनरागमनाय च ॥
विष्णवे नमः । विष्णवे नमः । विष्णवे नमः ।

ततो यथानियममेकं दिनमतिवाहयन् यथासुखं विहरेत् ।

इति कथाश्रवणविधिः

परिशिष्ट–१

श्रीश्यामदेवकथा केलिये आवश्यक वस्तु सूची

रोली	चन्दन	पंचामृत
मोली	सुपारी	दूध
जनेऊ	लवंग	दही
धूप	इलायची	शहद
कपूर	अक्षत (के लिए	चीनी
केसर	सफेद तिल या जौ)	घृत
अबीर (गुलाल)	पंचमेवा	रूई, सलाई
अभ्रक (बुक्का)	पुष्प	सिंहासन
इत्र	माला	पूजापात्र
सुगन्ध-तैल	दूर्वा	दीपक पात्र
पान	तुलसी	आसन
ऋतुफल	दक्षिणा	कथा बाँचनेवाले विद्वान्
मण्डप शोभा, स्तम्भ	नैवेद्य प्रसाद	शालग्राम शिला
पत्ते की बन्दनवार	दोना (प्रसाद देनेके लिए)	
शमीपत्र	भगवान् के लिए वस्त्र २ रेशमी या सूती	

कथा पर भेट करने के लिए नारियल, वस्त्र, दक्षिणा आदि

विशेष—१. यदि विधि से पञ्चाङ्ग (गणपति, मातृका, वसोर्धारा, पुण्याहवाचन, ग्रह, वरणादि) पूजन सहित भगवान् का पूजन करने का उत्साह हो तो अपने पूज्य आचार्य जी से सामान पूछ लेना चाहिये। हवन करने का विचार हो ता उसका सामान भी अलग समझ लेना चाहिये।

२. सर्वसाधारण की सुलभता की दृष्टि से यह सामान को लिस्ट है। स्वरूप, श्रद्धा, उत्साह और आचार्य जी (पण्डित) की आज्ञा के अनुसार अन्य सामान श्रद्धेय सज्जनों से जान लेना चाहिये।

३. उपर्युक्त सामग्री के अतिरिक्त जात, जडूला को आवश्यक सामग्री विधि में उल्लिखित है।

परिशिष्ट–२

चूडा (झडूला) विधि के उपयोगी मन्त्र

१. उष्णेन वाय उदकेनेहि अदिते केशान् वप (पा० गृ० २।१।६)
२. सवित्रा प्रसूता दैव्या आप उन्दन्तु ते तनूं दीर्घायुत्वाय वर्चसे (पा० गृ० २।१।९)
३. ओषधे त्रायस्व (मा० सं० ५।४२)
४. शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्ते अस्तु मा मा हिंसीः (मा० सं० ३।६३)
५. निवर्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्याय (मा० सं० ३।६३)
६. येनावपत् सविता क्षुरेण सोमस्य राज्ञो वरुणस्य विद्वान्। तेन ब्रह्माणो वपतेदमस्यायुष्यञ्जरदष्टिर्यथा सत् (पा० गृ० २।१।११)
७. त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम् । यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम् ॥ (मा० सं० ३।६२)
८. येन भूरिश्चरा दिवं ज्योक्च पश्चाद्धि सूर्यम् । तेन ते वपामि ब्रह्मणा जीवातवे जीवनाय सुश्लोक्याय स्वस्तये (पा० गृ० २।१।१६)
९. यत्क्षुरेण मज्जयता सुपेशसा वप्त्वा वा वपति केशाञ्छिन्धि शिरो मास्यायुः प्रमोषीः (पा० गृ० २।१।१८)

परिशिष्ट–३

स्कन्दपुराणान्तर्गत-श्रीश्यामदेवकथा से उद्धृत सुभाषित और धर्मोपदेश

१. सतां चरित्रश्रवणे कौतुकं कस्य नो भवेत् ? । १।४
२. तुष्टेषु देवेषु बलं धनं च कीर्तिश्च पुत्राः सुभगाश्च दाराः ।
स्वर्गस्तथा मुक्तिपदं च सत्सुखं न दुर्लभं सत्यमेतत्तवोक्तम् ॥ २।३१
३. औषधं सर्वदोषाणां भवेत्सत्सङ्गमो यतः । ३।७५
४. उपकुर्यान्निराकाङ्क्षो यः स साधुरितीर्यते ।
साकाङ्क्षमुपकुर्याद्यः साधुत्वे तस्य का गुणः ? ॥ ३।७८
५. यतः पीतं जलं पुंसामप्रक्षाल्य च यद् भवेत् ।
प्रेताः पिशाचास्तद्रूपं सङ्क्रम्य प्रपिबन्ति तत् ॥ ४।११

६. मलाक्ततोयं यन्नाम अस्पृश्यं तन्नरैरपि ॥ ४।१५

७. स्नातव्यं तीर्थमुख्येषु सत्यमेतन्न संशयः।
चरेषु किन्तु संविश्य स्थावरेषु बहिः स्थितः ॥ ४।२०

८. स्थावरेष्वपि संविश्य, तत्र स्नानं विधीयते।
न यत्र देवस्नानार्थं भक्तैः संगृह्यते जलम् ॥
यच्च हस्तशतादूर्ध्वं सरस्तत्र विधीयते। ४।२१-२२

९. संवेशेऽपि क्रमश्चायं पादौ प्रक्षाल्य यद् बहिः।
ततः स्नानं प्रकर्तव्यमन्यथा दोष उच्यते। ४।२३

१०. मलं मूत्रं पुरीषं च श्लेष्मनिष्ठीवनाश्रु च।
गण्डूषांश्चैव मुञ्चन्ति ये ते ब्रह्महणैः समाः ॥ ४।२४

११. यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।
निर्विकाराः क्रियाः सर्वाः स हि तीर्थफलं लभेत् ॥ ४।२६

१२. मुहूर्तमपि जीवेत नरः शुक्लेन कर्मणा।
न कल्पमपि जीवेत लोकद्वयविरोधिना ॥ ४।२९

१३. दुःखितानां यतः सर्वा स्मृतिर्लुप्ता भवेद् ध्रुवम्। ४।४९

१४. यतः सर्वः क्षत्रियस्य दण्ड्यो विपथसंस्थितः। ४।५१

१५. आत्मापि दण्ड्यः साधूनां प्रवृत्तः कुपथाद्यदि।
पितृमातृसुहृद्भ्रातृपुत्रादीनां किमुच्यते ॥ ४।५२

१६. सर्वेषामेव पापानां निष्कृतिः प्रोच्यते बुधैः।
पित्रोरभक्तस्य पुनर्निष्कृतिर्नैव विद्यते ॥ ४।५५

१७. यतोंऽशेन विलिप्येत प्रायश्चित्तान्निवारकः। ४।५८

१८. अज्ञातविहिते पापे नास्ति वीरेन्द्र कल्मषम्। ४।६०

१९. यतो जये च विजये निश्चयो हि मृषैव तत्। ५।८

२०. देशकालोचितं स्वीयं परस्य च बलं हृदा।
अविचार्यैव प्रभुषु वक्ति सोऽर्हति दण्डनम्। ५।६२

२१. .... जातस्य पितरौ गुरू।
भवतोर्हि प्रियं कृत्वा अनृणः स्यां सदा ह्यहम् ॥ १।१२

२२. वर्णधर्मः—२।१८-२२।

परिशिष्ट–४

श्रीश्यामदेवकथा में आये हुए विशेष पदों की सूची

देवता—

सिद्धमाता १।३	दिग्देवी (४) २।२९	नवदुर्गा २।२९
वटयक्षिणी २।५६	चामुण्डा ४।६७	सिद्धाम्बिका ५।५१
गरुड ५।९६	क्रोडमाता ५।५१	एकः पुमान् ५।८९
कपाली ५।५१	तारा ,,	सुवर्णा ५।५१
त्रिलोकजेत्री ,,	भाणेश्वरी ,,	चर्चिका ,,
एकवोरा ,,	योगेश्वरी ,,	चण्डिका ,,
त्रैपुरा ,,	भूताम्बिका ५।५२	हरसिद्धि ५।५२
ब्रह्मा ५।५५	विष्णु ५।५५	गणेश्वर २।५४
सिद्धिविनायक २।५५	क्षेत्रपाल २।५५	महालिङ्ग ३।५९
रुद्र ४।४१	भीमेश्वर ४।७२	पृथ्वी ५।५४
गुहेश्वरादि सप्तलिङ्ग २।४२		

देश, पर्वत—

हिडिम्बवन १।६	द्वारकापुरी १।१५	गुप्तक्षेत्र २।२७
महीसागर संगम २।२७	काशीश्मशान ३।११	दग्धस्थली २।३६
महीसागर रोधस् ३।२४	सीकोत्तरस्थान ३।३४	मगध २।४१
काशी २।४२	श्रीपर्वत ३।६०	रेपलेन्द्र ग्राम ३।२५
अवन्तीश्मशान ३।२६	त्रिकूट ५।१०	दुहद्रुहाग्राम ३।३५
बहुप्रभा नगरी ३।४३	लङ्का ५।९८	शूर्पारक ३।६१
प्रभास ३।६२	सुवेल ५।९७	मेरु ५।५४

व्यक्ति—

शौनक १।९	उग्रश्रवस् १।५	द्वैपायन १।५
नारद २।२८	शिवि ४।२८	उग्रसेन २।९
वसुदेव २।९	अक्रूर २।९	राम ,,
कृष्ण ,,	दामोदर २।२७	सात्यकि ५।८४
युधिष्ठिर ४।७	धर्म १।६	भीमसेन ४।८

अर्जुन ५।८५	फाल्गुन ५।८४	घटोत्कच २।४
हैडिम्बि १।६	कामकटङ्कटा २।१	बर्बरीक १।१४
सुहृदय २।३३	सिद्धसेन २।३३	चण्डिल १।३
मौर्वेय २।१४	भैमि ३।२९	सूर्यवर्चा ५।६७
विजय २।४१	दुर्योधन ५।८०	द्रोण ५।८०
वृष ५।८०	धृष्टद्युम्न ५।८४	द्रौणि ५।१०८
राम ५।१०३	रावण १।८	मन्दोदरी १।८
कुम्भकर्ण ५।१०३	पलाशी ३।५०	दुहद्रुहा ३।२८
रेपलेन्द्र ३।२०	महाजिह्वा ३।१०	शेष ३।५९
राहु ५।७२	वासुकि ३।४९	ऐरावत ३।६३
एलापत्र ३।६१	कर्कोटक ३।६२	नागकन्या ३।५६
तक्षक ३।६४		

जाति—

नाग ३।४९	राक्षस १।९	शाकिनी ३।३४
सरोगेयाः सुराः ५।१०५	सुर ५।२४	पलाशिनः ३।४४

साहित्योपयोगी पद—

काश्यम् १।७	बर्बरः १।१४	क्रीडाशैलाः २।८
त्यागभोजनम् २।१६	कर्तिका ३।७	पिण्डकः ४।६
काकारवः ४।३०	चरतीर्थः ४।२०	स्थावरतीर्थः ४।२०
आत्मोपयिकम् ५।२८	निःशल्यम् ५।३७	आविग्रम् ५।४७
पिटकाः ५।७७		शतदीपपूरिका ५।११५

विशेष क्रिया एवं पदार्थ—

भगाकारमण्डल २।४९		अष्टदिक्षु ससूत्राष्टकील
मन्त्रतेजित खादिर खड्ग २।५१		निखनन २।४९
कृष्णाजिनधारण २।४९	शोषण २।५३	दाह २।५३
प्लावन २।५३	सुखासन २।५४	वेध तिलक २।५४
दशांशगुटिका होम २।५५		अपराजिता विद्या ३।१
वैष्णवी विद्या ३।१		अश्वत्थलाक्षावह्नि ३।२
केसरप्लुतसर्षपहोम ३।२		बलातिबलमन्त्र ३।२

—:※:—

२५

ीक

ा१

ा२

आचार्यगोपालचन्द्रमिश्रग्रन्थमालायां

प्रकाशितग्रन्थाः

१. वेदशाखापर्यालोचनम्
२. मधुपर्कपर्यालोचनम्
३. मूल्याध्यायपरिशिष्टम् (भाष्यचतुष्टयसमन्वितम्)
४. कात्यायनीयच्छन्दःसूत्रम् (भाष्यद्वयसहितम्)
५. प्राचीनभारतीयसमाजिकधर्मः
६. याज्ञिकन्यायमाला (सविस्तरा)
७. कौशिकगृह्यसूत्रम् (सवृत्तिकम्) परिभाषाध्यायः
८. श्रुतिप्रयोगसङ्ग्रहः
९. श्रीश्यामदेवोपासना